

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180385

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—23—4-4-69—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. *H83/853 Ba* Accession No. *H2800*

Author *चतुर्सेन, आचार्य .*

Title *बहुते औसू . N.D.*

This book should be returned on or before the date last marked below.

बहते आँसू

आचार्य चतुरसेन

तृतीय संस्करण

प्रकाशकः—

चौधरी रुण्ड भन्स वनारस ?

मूल्य चार रुपये पचास नये पैसे

मुद्रकः—

हनुमान मुद्रण यन्त्र,
पियरी कलाँ, वाराणसी ।

छोटा-सा गाँव, रात का सन्नाटा, ग्रीष्म की रात, मच्छर और पिस्सुओं ने लोगों को रात-भर सोने नहीं दिया था। गर्मी भी कम न थी। हवा बन्द थी। टूटती-रात में उन्हें कुछ झपकी आई थी, कि एक हृदयवेधी चीत्कार से उनकी नींद टूट गई। चापाल पर जो दो-चार व्यक्ति सो रहे थे, वे उठकर बैठ गए। एक ने कहा—“मालूम होता है, रमाकान्त का लड़का चल बसा ! गजब हो गया, पहाड़ टूट पड़ा ! आसार तो कल ही से अच्छे न थे, रमाकान्त अब न जोएगा। चचा, तुम क्या अभी सो ही रहे हो ?” दूसरे व्यक्ति ने करवट बदली, और फिर उठकर बैठ गया। उसने कहा—“आज सोना मिला कहाँ ? चलो, फिर उसके घर चलें—हमसे तो देखा भी नहीं जायगा। अभी तो ब्याह का कँगन भी नहीं खुला—ईश्वर की मर्जी है।”

सभी उठ खड़े हुए। और भी दो-चार व्यक्ति घरों से निकल आए। इसी बीच में कई स्वर क्रन्दन कर रहे थे। लोगों ने देखा, घर की खियाँ पछाड़ खा-खाकर चीख रही हैं, रमाकान्त धरती में पड़ा, आँखें फाड़-फाड़कर आगन्तुकों को देख रहा है। मालूम होता था, अभी इसके प्राण निकल जायगें। लड़के की माता वेहोश धरती पर पड़ी थी, कुछ खियाँ उसपर पानी के छींटे दे रही थीं। सात वर्ष की निरीह बालिका, अब विधवा, पत्थर की मूर्ति की भाँति चुपचाप दीवार से चपकी खड़ी थी, वह कुछ समझ रही थी, कुछ नहीं। वह न रो रही थी, न उसकी आँखों में आँसू थे। भाई-भावज ‘हाय-हाय’ कर रहे थे—यह सब देख कर उसका कलेजा भी मुँह को आ रहा था।

लोग-बाग में आकर रमाकान्त को घेरकर बैठ गए। पर कोई कुछ बोल न सका, दर्द ने सबका मुँह बन्द कर रखा था, गृहिणी होश में आई, और पागल की भाँति वह मृतक की ओर लपकी। बीच में बालिका भयभीत नेत्रों से खड़ी देख रही थी। गृहिणी ने उसका हाथ पकड़कर खींच लिया। वह कटे वृक्ष की भाँति धरती पर आ-गिरी। पास ही एक पत्थर पड़ा था। उसे उठा कर गृहिणी ने उसके हाथ में दे मारा, चूड़ियाँ चूर-चूर हो गईं। साथ ही खून की धारा भी वह चली। वह निरपराधिनी बालिका 'मैया-मैया' कहकर चिल्ला उठी। उसका वस्त्र उड़ गया, बाल बिखर गए। गृहिणी ने वही पत्थर अपने 'सर पर दे मारा, और बेहोश होकर गिर गई।

घर की स्त्रियों के रुदन का क्रम बदला। वे अब चीत्कार के स्थान पर सिसकियाँ लेकर, बालिका को लक्ष्य करके गालियाँ बकने लगीं। 'राँड़, अभागिनी, हत्यारी, मायाविनी, असैनी'—आदि उपाधियाँ उसपर बरसने लगीं। बालिका भी अब फूट-फूटकर रोने लगी। रोते-रोते ही वह धरती पर फिर गिर गई। पर किसी ने भी न उससे कोई सहानुभूति प्रकट की, न उसे सम्हाला ही। स्त्रियों की गाली-वर्षा भी उसी भाँति जारी रही।

धीरे-धीरे और भी स्त्री-पुरुष इकट्ठे होने लगे। प्रत्येक स्त्री के आने पर क्रन्दन बढ़ता जाता था, पुरुषों में भी भाँति-भाँति की चर्चा होने लगी। कुछ देर मानव-जीवन की क्षण-भंगुरता पर भिन्न-भिन्न उक्तियाँ और वाक्य कहे गए। फिर संसार की असारता की व्याख्या हुई। जिसकी जैसी भापा थी, और शिक्षा थी, सबने इस अगम्य विषय पर कुछ-न-कुछ अपनी राय प्रगट की।

इनकी बातें सुनकर रमाकान्त जोर-जोर से रोने और चिल्लाने लगा। कुछ लोगों ने जोर-से साँसें भरी, कुछ ने आँसू

पोंछने का अभिनय किया। एक ने कहा—

“भाई ! इस बूढ़े पर गजब का पहाड़ टूट पड़ा। लड़ा लड़का कहे में नहीं, यह यों गया।”

दूसरा बोला—“भगवान् की माया है, क्या करें—बेचारे के धन नहीं था, जन भी छिन गया।”

तीसरा बोला—“और लड़का कैसा होनहार था ! पढ़ने लिखने में होशियार—चतुर। हम तो तभी कह दिया करते थे, कि यह क्या इस घर के लायक है ?”

जयनारायण (लड़की का पिता) बोला—“मैंने तो लड़के की विद्या-बुद्धि को ही देखकर लड़की ब्याह दी थी—घर-आर कुछ नहीं देखा। पर हाय ! मुझे क्या मालूम था, कि बुढ़ापे में मुझपर यह आपत्ति आएगी ! अभी एक साल भी नहीं हुआ, वही लड़की की चोट सह चुका हूँ, अब फिर चोट पर चोट कैसे सहूँ ?” यह कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगा। इसपर एक पड़ोसी बोले—“देखो, कैसी धूम का विवाह हुआ था—आज की-सी बात है—अगले आषाढ़ में एक बरस होगा। अभागिनी एक बरस भी सुहागिन न रही।”

“फेरा की गुनाहगार” कहकर जयनारायण छाती कूटकर रोने लगा। रमाकान्त ने काँपते स्वर से कहा—“मैं तो हर तरह से लुट गया बाबूजी ! ७००) रुपये कर्ज किये, घिरादरी में नाक रक्खी, अब तक पैसा भी नहीं पटा। मुझे तो माया मिली, न राम !!”

एक पड़ोसी बोला—“अब इन बातों में क्या है, जो चला गया, वह कहाँ से आवेगा ! पत्थर की छाती करके सन्तोष करो, लड़की है, इसे ही पालो—अब तो यही बेटा और यही बहू।”

इसपर सब बोल उठे—“हाँ साहब ! अब तो यही बात है।”

इसके बाद कुछ देर तक सन्नाटा रहा। सभी चुपचाप मुँह लटकाये बैठे रहे। कुछ ठहरकर जयनारायण रो उठे, बोले—
“मेरी दुलारी कैसे रहेगी ? उसने कौन-सा पाप किया है ?”

इसपर पुरोहितजी बोले—“जिजमान ! उसके भाग्य में सुख बदा होता, तो क्या इतनी दवा-दारु व्यर्थ जाती ? यह लड़की बड़ी अभागिनी है। होनहार नहीं टल सकती—किसी के भाग्य में दूसरे का भाग्य कहाँ-से चिपकाया जा सकता है ?”

जयनारायण ने झुँझलाकर कर कहा—“पुरोहितजी, सब पूछो, तो इस पाप के सब से बड़े भागी तुम ही हो। अब दिखाओ ना—वह देवा और पत्नी कहाँ है ? तुम्हारी ही बातों में आकर मैंने यह विवाह किया था !”

पुरोहितजी हाथ हिलाकर, और आँखें मटकाकर बोले—
“हरे राम ! शास्त्र-वचन पर भी अविश्वास ! हम किसकी सु-घड़ी लाकर किसीकी कु-घड़ी में जोड़ दें ? शास्त्र में जो दीखा, सो कहा—भगवान् के माया की शास्त्र क्या करे ?”

“जब भगवान् की माया में शास्त्रों की नहीं चलती, तो इस लग्न-कुण्डली के पाखण्ड में ही क्या रक्खा है ?”

“नहीं रक्खा है, तो योंही सनातन से मर्यादा चली आती है ? तुम्हारे, ऐसे नास्तिक विचार हैं—जो-है-सो, तभी तो भगवान् का तुमपर कोप हुआ है।” इतना कहकर पुरोहित बाबा ने उपस्थित-मण्डली को लक्ष्य करके कहा—“श्रद्धा और विश्वास के बिना भी कहीं फल मिला है ?” फिर आँख मीचकर और एक लम्बी साँस लेकर कहने लगे—“हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण !! तुम देख रहे हो।”

इस बगुला-भगत को देखकर, और उसकी बात को सुनकर, जयनारायण की दुखी-आत्मा जल गई। उसने कड़ककर कहा—

“भगवान् का ऐसा कोप इन नास्तिक-विचारों के कारण नहीं है, परन्तु तुम्हारे बताये हुए इन अन्ध-विश्वासों को मानने से दुःखा है। मैंने तुम्हारी बातों में आकर भगवती को नौ वर्ष की उम्र में विधवा बनाया—और नारायण को सात वर्ष की उम्र में...। तुम मुझे नास्तिक कहकर कोसते हो—पर यदि मैं सचमुच नास्तिक होता, तो आज मेरी दुलारी बेटियाँ—जब इनके खेलने-खाने के दिन थे—ऐसी अनाथिनी न बनतीं। मेरी इन दुधमुँही बेटियों को कोई अभागिनी कहता—तो मैं उसकी जीभ खींच लेता, उसका खून पी जाता। पर आज पिशाच बाप ही उन्हें अनाथिनी विधवा कह रहा है। अभी पूरे दस मास भी नहीं बीते, जब उसकी माता ने सुहाग गाते-गाते मङ्गल-कृत्यों के साथ, उसे हरी-हरी चूड़ियाँ पहनाइ थीं। आज उसीने उन्हें पत्थरों से चूर-चूर कर दिया है। तुम अपने पोथी-पत्रे और उस सुहाग के अमर-पत्रे को लाओ तो सही, मैं उन्हें भी बेटों के सुहाग की तरह आग लगाकर फूँक दूँ, जिससे और किसी का भाग्य न फूटे ! जब वे भगवान् की माया में दखल दे ही नहीं सकते, तो इन भूटे ढको-सलों की जरूरत ही क्या है ? इतना कहकर, वे धरती पर लोट कर रोने लगे। आँसुओं से उनकी दाढ़ी भोंगकर तर होगई।

सब चुप। अन्त में एक बड़े-बूढ़े सज्जन ने उनका हाथ पकड़कर कहा—“बाबूजी, अब इन बातों से क्या लड़का जी-उठेगा ? क्यों जी भारी करते हो ? इसमें तुम्हारा क्या चारा था—लड़की के भाग्य में यही लिखा था।”

जयनारायण उठ-बैठे। उन्होंने तीव्र स्वर से कहा—“क्या लिखा था ?—कि वह सात वर्ष की उम्र में विधवा होगी ? कभी नहीं—मैं पापी हूँ, एक लड़की को विधवा होते देख चुका था। इसका अभी क्याही न करता, तो भाग्य कहाँ जाता ?”

“करते कैसे नहीं ? होनहार सब करा लेती है ।” पुरोहितजी ने तेज स्वर में कहा ।

“क्या कहा—होनहार सब करा लेती है ? तो फिर हर-एक काम को समझने-बूझने की जरूरत ही क्या है ! जो होना होगा—होकर रहेगा । ईश्वर ने अक्ल, समझ, विचार और बुद्धि, सब क्यों दिये हैं ? पशुओं की तरह आँख मीचकर कुँए में कूद पड़ना चाहिए ।” जयनारायण एक ही साँस में कह गए ।

“अजी, यों तो किससे कूदा जाता है । पर सोच-विचार करने पर भी काम बिगड़े, तो क्या किया जाय ?”

“पर वैसा होता, तो सन्तोष तो रहता । मैंने तो क्रूर हत्यारे की तरह कन्या के गले में फाँसी डाली थी ।”

“अब ओ हो गया, वह तो किसी तरह लौट नहीं सकता !” दो-चार आदमी बोल उठे ।

“लौट सकता, तो मैं अपने प्राण देकर भी लौटा लाता । केवल आज ही नहीं, सारे जन्म भर मुझे यह बिच्छू की तरह डँसता रहेगा । मेरे मरने के बाद मेरी कन्या क्या जाने, किस घर भीख मांगेगी—किस घर गुलामी करेगी !” इतना कहकर जयनारायण दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर रोने लगे ।

समय बहुत हो गया था । मृतक के संस्कार की अब तैयारियाँ होने लगीं । पुरुष इसमें व्यस्त हुए, क्रन्दन और चीत्कार को भेदन करके, स्त्रियों के हाथों से बलपूर्वक मृतक-शरीर को छीनकर ‘राम-नाम सत्य’ का घोष करते चले दिए ।

उस शून्य-पट पर उस सुन्दर युवा बालक की, जिसने केवल जगत को भौंका ही था—अब स्मृति-मात्र रह गई । उसका अस्तित्व नष्ट हो गया । अब उसका पार्थिव शरीर भस्मीभूत होने को चला गया । मनुष्य के जीवन का, कर्तव्य का, दृढ़ता, धैर्य

और ममता का यह अद्भुत आश्चर्यजनक और न समझा जानेवाला दृश्य था ।

२

“क्या कहें वहिन, सब कर्मों की लीला है !” यह कहकर शिवचरणदास की स्त्री ने अपनी गहरी सहानुभूति दिखाकर एक लम्बी साँस ली ! पास ही हरगोविन्द की वृद्धा-मौसी बैठी थी । उसने कहा—“तीस वर्ष से तो मैं देखती आ रही हूँ—इस निपूले घर में कोई नहीं फला-फूला । पहले यह घर छज्जू मिस्सर का था—पर प्लेग में १५ ही दिन में उसका सब चौपट हो गया । उसकी विधवा ने इसे लाला माधोराम को बेच दिया । साल के भीतर उसका जवान बेटा समा गया । तब वे इसे छोड़कर दूसरे घर में चले गये । इसके बाद आगरे के बाबू आकर रहें । दूसरे ही महीने में उनकी घरवाली मर गई । अब यह देखो—पूरे दो वर्ष भी नहीं हुए—ब्याहा-ठाया जवान बेटा चल बसा ।”

वृद्धा की बात पर सबको श्रद्धा हो गई—सबने मुँह लटकाकर कहा—“हाँजी ! ऐसे जले घर में कौन फले-फूले ?” एक स्त्री अत्यन्त सावधानी से बोली—“चम्पा के चाचा कहा करते हैं कि मकान पर धम-धम की आवाज और आग की-सी लपट रात को उन्होंने खुद देखी-सुनी है ।”

इसपर सब स्त्रियाँ भयभीत हो गईं । हरगोविन्द की बूढ़ी मौसी गम्भीरता से बोली—“पास ही पीपल का पेड़ है न ! प्लेग में मुर्दों का क्रिया-कर्म तो होता नहीं था, बस, वे सब यहीं प्रेत बनकर रहते हैं ।” इसपर एक नवोढ़ा बोली—“क्यों मौसीजी ! ये प्रेत तो जल गये, आदमी को क्यों सताते हैं ?”

मौसी ने बड़े इत्मीनान से कहा—“दूध, दही, मक्खन, मलाई

खाकर जो बालक उनके स्थान पर से निकले, उसे वे नहीं छोड़ते—क्योंकि यह उनके भोग की प्यारी वस्तु हैं। कोई स्त्री इत्र फूल लगाकर उधर से निकले, तो वे उसे भी मार डलाते हैं।”

यह बात सुनते ही मिश्रीलाल की बहू डर से काँप गई ! उसके कान में इत्र का फाया लग रहा था—सो उठकर उसने चुपके से उसे फेंक दिया।

अब तक रमाकान्त की स्त्री चुपचाप बैठी थी—अब बोली—“यह लड़का तो कहे-का था ही नहीं। उस दिन रामचन्द्र के यहाँ से खोर-पूरी का न्योता जीमकर आया था—मैंने बहुतोरा कहा के सो जा, दुपहरी में कहीं मत जा। पर वह किसकी सुनता था ? एक न मानी—चला ही गया। वह सत्यानाशी पोपल भी तो रास्ते ही में है ?”

इसपर सब बोल उठीं—“बस, तो वहीं से आफत लग गई !”

शिवचरणदास की स्त्री ने कहा—“तो मौसी ! इससे बचने का कोई उपाय नहीं है ?”

मौसीजी ने बड़े बड़प्पन से सिर हिलाकर कहा—“ओहो ! इस काम में तो भोला काब्रि को जैसा देखा, वैसा त्रिलोक में कोई न होगा।”

इसपर गृहिणी बोली—“तो तुमने यह बात पहले क्यों न कही, मैं उसी को बुलाती !”

“उसे बुलाती तो क्या तुम्हारा बच्चा मर जाता ? पर भाई मैंने देखा, वैद्य-डाक्टरों का इलाज हो रहा है—उसमें न बोलना ही अच्छा है।”

“वैद्य-डॉक्टरों से तो कुछ न हुआ।”

“होता कैसे ? वे इस बात को बेचारे क्या समझें ? कोई बीमारी होती, तो आराम होता।”

अब गृहिणी रोकर बोली—“हाय, मैं कैसी अभागिनी हूँ—
मुझे यह बात कभी नहीं सुझी।”

इसी बीच मृतक बालक की विधवा-बालिका ने आकर
सास से कहा—“चलो अम्मा, भोजन बना लो—समय हांगया है।”

गृहिणी ने मुँह झुकाकर कहा—“आग में भोजन में, मेरा तो
बहुतेरा पेट भर रहा है। अभागिनी, तू मेरे सामने से टल जा।”

इसपर सारी स्त्रियों ने अचरज से कहा—“ऐ! देखो तो
सही, इसे कुछ भी शोक नहीं। इसका सुहागा फूट गया है, फिर
भी ऐसी फिर रही है? ऐसा तो कहीं देखा-सुना नहीं।”

गृहिणी बोली—“यह अभागिनी जब से आई है, मेरे घर
की सारी श्री उड़ गई। बड़े की नौकरी छूट गई, चोरी हुई
और अब मेरा लाल भी चल बसा। यह डायन आते ही उसे
खा गई। अब इसे काहे-का शोक होगा! मेरा तो सोने का घर
मिट्टी होगया। सातसौ का कर्ज अलग छाती पर रक्खा है।
निगोड़े बापने छल्ला तक नहीं दिया। मेरा लाल तो खागई, अब
मेरी छाती पर मूँग दलेगी। इस हथिनी को जन्म-भर कहाँ से
खिलाऊँगी?”

मौसी बोली—“हमें तो इसके कुलच्छन तभी दीख गये थे,
जब ब्याह कर आई थी। पर वहन, यह बात क्या कहने की
होती है? कुछ कहती, तो उल्टे हमीं को कोसती, कि हमारी बहू
को ऐसा कहता है। चपटे पैर के तलुए और भारी कमर जिस
लुगाई की होगी, वह कभी सुहागन रहेगी ही नहीं। लाखों
में इस बात को आजमाकर देख लो, और इसके तो माथे पर
झाँपन भी है। ऐसी लुगाई डायन का अवतार होती है।”

शिवचरणदास की स्त्री बोली—“ऐसी खसम खानीका क्या मुँह
लेकर फूँके? रामजी न दे किसीको ऐसी बहू, क्वारा भले ही रखें।”

गृहिणी बोली—“जब से आई, मैंने इसे हँसते-बोलते न देखा। सदा रोती रही। सदा माथा सिकुड़ा रहा। गोपाल घर आता, तो सिकुड़कर कोने में घुस जाती—क्या मजाल, जो कभी पानी तो पिला दे ! उससे इसे ऐसी नफरत थी, कि जैसी किसी जन्म के दुश्मन से होती है। अन्त में इसको माया फल ही गई—उसे निगल ही गई। अब देखा; छिनाल कैसी मटकती फिर रही है ! पेट में आग लग रही है।” यह कहकर गृहिणी ने कटकटाकर एक लात उसके जमाई। हतभागी बालिका तिल-मलाकर धरती पर गिर गई। अभी अपने दुःख पर रोने का भी उसे अच्छा ज्ञान नहीं हुआ था !!

२

संसार सो रहा था। आधी रात जा चुकी थी। सब तरफ सन्नाटा था, परन्तु एक दूटे हुए मकान के दूसरे खण्ड में, एक छोटी-सी कोठरी में चटाई पर बैठी हुई युवती, दीये के धुंधले प्रकाश में एक-मन होकर, कुछ सी रही है। तेल-बत्ती की कमी से जध-जध दीये को लौ कम हो जाती है, तब तब वह उसे तिनके से उकसाकर फिर सुई चलाने लगती है। युवती की अवस्था मुश्किल-से १८ वर्ष की होगी। इसे अपूर्व सुन्दरी कह सकते हैं। परन्तु इसका सुनहरा शरीर बिल्कुल पुराने और मामूली वस्त्रों से ढका है। कोठरी में भी कुछ सामान है। एक मिट्टी का घड़ा, दो-तीन पीतल के बर्तन और एक छोटी सी कपड़ों की पोटली। चारपाड़े और बिछौना घर में नहीं है। यह चटाई ही उसका बिछौना-ओढ़ना है।

यह सब तो युवती के अत्यन्त दरिद्र और अनाथ होने के लक्षण हैं। परन्तु जो दस्तु वह सी रही है, वह बहुमूल्य रेशमी

बनारसी साड़ी का कपड़ा है। उसपर बहुत बढ़िया सलमे की बेल टाँक रही है। दो बजने से प्रथम ही उसने अपना काम पूरा किया। परिश्रम और सर्दी के कारण हड्डियाँ अकड़ गई थीं। उसने एक लम्बी साँस ली, और वस्त्र को सावधानी से लपेटकर एक ओर धर दिया, और तब उस चटाई पर पड़ रही।

प्रातःकाल हो गया। पर कोहरा छा रहा था। युवती के पास कोई गर्म वस्त्र न था। कोयला-लकड़ी भी न थी। सर्दी से उसके होंठ और मुख नीले हो रहे थे। वह शीघ्र उठ गई। हाथ-मुँह धोकर, और रात को तैयार किये हुये वस्त्र की पोटली को बगल में दबाकर घर से बाहर चली। ज्यादा दूर नहीं जाना पड़ा। निकट ही के एक पक्के घर में घुसकर, उसने देखा—मालकिन अभी पलङ्ग पर गर्माई में पड़ी हैं। युवती को देखते ही उसने कहा—“ले आई? मैं तो फिकर में पड़ गई थी, कि शायद बायदा पूरा न करे। यह अच्छा हुआ—नहीं तो एक कौड़ी भी मजदूरी न मिलती। ला दिखा, कैसा सिया है?” युवती ने डरते-डरते पोटली खोलकर सामने रख दी। कुछ देर उलट-फलट कर देख, और मन का भाव दबाकर उसने वस्त्र में कुछ दोष निकाले। तब कहा—“वैर, रख जा! २॥=) मजदूरी हुई न?”

युवती ने सूखे कंठ से कहा—“सिर्फ दो रुपये दस आने?”

गृहिणी ने ओं चढ़ाकर कहा—“और नहीं तो क्या?”

“मैंने आठ दिन-रात मिहनत की है।”

“मैं भी तो मजदूरी देती हूँ। कोई बेगार में तो नहीं सिलवाती? शाम को मजदूरी ले जाना।”

युवती ने भयभीत नेत्रों से देखते हुये कहा—“अगर अभी दे देती, तो बड़ी कृपा होती। घर में कुछ भी नहीं है।”

इसपर कुछ रुष्ट होकर गृहिणी बोली—“वह तो मैं जानती

हूँ, तुम लोग बड़ी ओछी हो—बड़ो-भर भी धीरज नहीं होता । सबेरे-सबेरे भी कहीं देन-लेन होता है ?”

युवती कुछ बोली नहीं । वह धीरे-धीरे चल दी । बाहर आकर उसने आँचल से आँसू पाल्ल लिये ।

वह दूटे हृदय से नीची नजर किये सीढ़ी से उतर रही थी । पीछे से किसान ने उसके कन्धे पर हाथ रखा । लौटकर देखा एक युवती है—क्षण-भर खड़ी होकर उसने आँख मिलाई । मानों मन-ही-मन पूछा—तुम कौन हो ?

युवती ने पूछा—सर्दी में बिना गर्म कपड़ा पहने कहाँ निकली थीं—इतना सबेरे इस दुष्टा के पास क्यों आई थीं ?”

बालिका ने लज्जा और संकोच-भरे नेत्रों से युवती की ओर देखा । मन का दुख और निराशा छिपाकर बोली—“कुछ काम था ।” और आगे बढ़ी ।

युवती ने रोककर कहा—मैं इसी घर में रहती हूँ—आओ, जरा भीतर बैठो । आग जल रही है—ताप लो । तुम्हारे होठ नीले हो रहे हैं ।” बालिका क्षण-भर रुककर उसके पीछे चल दी । देखा—कमरे में खूब सजावट है । बढ़िया तस्वीरें और पर्द लगे हैं । पलंग बिछा है, उस पर गद्दा और भक्का-भक्क सफेद चादर बिछी है । जमीन में दरो का फर्श है । बालिका ने खड़े ही खड़े कमरे की सुख-सामग्री को ललचाई नजर से देखा । एक ठण्ठी साँस ली, और फिर वह आग के पास जा-खड़ी हुई । गृह-स्वामिनी युवती ने प्रेम से उसका हाथ पकड़कर कहा—“मैं भी तुम्हारी ही तरह दुखिया और अकेली हूँ ।”

“परन्तु देखती हूँ, तुम बड़े सुख में हो ।”

“कुछ दिन से एक सज्जन की कृपा से यह सुख नसीब हुए हैं । पहले मैं बड़े कष्ट उठा चुकी हूँ । पर तुम तो बड़ी ही दुखिया

मालूम होती हो। कैसा सुन्दर तुम्हारा रूप है ! कैसी आँखें और रस-भरे होठ हैं ! पर यह सब सूख गये हैं। क्या तुम भूखी हो ?”

बालिका दो दिन से भूखी थी। पानी को छोड़, अन्न उसके मुख में न गया था। फिर भी उसने कहा—“नहीं, भूखी तो नहीं हूँ।” परन्तु उसके क्षीण स्वर ने हृदय का भेद खोल दिया। युवती ने बड़े प्रेम और आग्रह से उसे कुछ खाने को कहा, परन्तु उसने किसी तरह स्वीकार नहीं किया।

युवती ने कहा—“मैंने भी बड़े कष्ट भोगे हैं। मैं ७ वर्ष की आयु में विधवा होगई थी। तीन वर्ष बाद माँ-बाप मर गये। भाई-भावज के घर दिन न कट सके। लाचार, भाग आई। ओफ् ! कितने दिन भूखो-प्यासी रही ! कितने दिन भीख माँगी ! कितनी तकलीफ, कितनी मुसीबत ! बहिन, तुम शायद अब वैसी ही मुसीबत उठा रही हो ?”

बालिका ने दयार्द्र स्वर में कहा—शायद वैसी नहीं। मैं वैसे तो जन्म की दुखिया हूँ, पर विपत्ति का पहाड़ केवल छः महीने से मेरे ऊपर टूटा है।”

“मेरे पिता मुझे छः महीने की छोड़ मरे थे। माता ने मुझे देखकर जीवन के दिन काटे। मैं अभागिनी पूरी उम्र होने से प्रथम ही सुहागन बना दी गई, और उसके १५ दिन बाद ही विधवा। एक बार सुसराल गई। ३ दिन रही, और चली आई। उस बात को आज ११ वर्ष हो गये। अब तो उसकी कुछ याद ही नहीं आती। तब से माता की गोद में पलती रही। धीरे-धीरे हमारा सर्वस्व नष्ट होगया। कपड़े-वर्तन भी पेट में गये। पर परमेश्वर को धन्यवाद है, कि भीख माँगने की नौबत नहीं आई। हम दोनों माँ-बेटी सिलाई करके पेट पालती रहीं, पर ईश्वर ने

अब की मार गहरी मारी। मेरी माता चल बसीं। मैं अकेली ही अब दुनियाँ में हूँ, और जैसे-तैसे पेट का कुछ उपाय कर लेती हूँ।” इतना कहते-कहते उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े। युवती ने अत्यन्त सहानुभूति से कहा—“पर बहन, इतना कष्ट क्यों पाती हो? तुम चाहो, तो मेरी तरह रह सकती हो—वे सज्जन, जो मेरी परवरिश करते हैं, तुम्हारी खबर रखेंगे। वे बड़े धनी, बड़े सुन्दर, बड़े सज्जन और बड़े प्रेमी हैं।”

बालिका शङ्कित हुई। उसने भयभीत और अकुलाई दृष्टि से युवती को देखकर कहा—“वे क्या मुझे सिलाई का काम दे सकेंगे?”

युवती ने कुटिल-भ्रूक्षेप कर, तेज स्वर में कहा—“सिलाई में आँखें फोड़ोगी?”

बालिका ने लाचारी के स्वर में कहा—“तब, और तो कोई काम मुझको आता ही नहीं।”

युवती क्षण-भर को विचलित हुई। उसके मन में जो-कुछ था—वह किसी तरह नहीं कह सकी। उसने उसके कन्धे पर हाथ धरकर कहा—“तुम बड़ी भोली हो, परन्तु दुनियाँ में इतनी भोली, और इतनी भली बनने से काम नहीं चलता। मैं तुम्हारे ऊपर तरस खाती हूँ। तुम्हारा दुःख मुझसे देखा नहीं जाता, पर सचमुच क्या मेरा मतलब नहीं समझती?”

“तुम कौन-से मतलब की बात कहती हो?”

“मेरे इस ठाठ और आराम को देखकर, क्या तुम्हें इस तरह रहने की इच्छा नहीं होती?”

“होती है, पर इच्छा करने से ही क्या सुख मिल जाता है?”

“बहिन! भाग्य भी तो कुछ चीज है?”

“पर तुम क्या मेरे भाग्य पर डाह नहीं खाती?”

“मैं डाह क्यों खाऊँगी?”

“अच्छा, तुम्हें भी यदि यह सब मिले तो ?”

“कैसे ?”

“जैसे मुझे मिले हैं ।”

“किस तरह तुम्हें मिले हैं ?”

युवती रुकी । उसके होठ कांपे । उसने कहा—“रूप बेचकर ।”

बालिका को मानो जोर-से चाबुक लगा । वह क्षण-भरको मानो बेहोश हो गई । पर फिर, तत्काल सम्भल कर उठी, और पागल की तरह भागी । युवती ने उसे रोकना चाहा, पर वह न रुकी ।



जब बालिका उस युवती के घर से भागी, तब सीधी अपनी कोठरी में आकर साँस ली । घर में आकर, जल्दी-से द्वार का कुण्डा भीतर से बन्द कर लिया, और चटाई पर पड़कर हाँफने लगी । उसके सर में चक्कर, और आँखों में अंधेरा छा रहा था ।

दिल की धड़कन बढ़ गई थी, और वह हाँफ रही थी । वह सोचने लगी—“हे भगवान् ! यह क्या सुना ? क्या दुनिया ऐसी है ? हाय ! यह चमक और ठाठ इस तरह मिलते हैं ?” उसे अब अपनी माता का स्मरण हो आया—और वह फूट-फूटकर रोने लगी । उसके रोम-रोम में भय और चिन्ता भर रही थी ।

वह विपत्ति की मारी बालिका, इस अथाह समुद्र में डूब-उतरा रही थी कि किसी ने द्वार खटखटाया । खोलकर देखा, तो किराये के लिये, मकान मालिकिन खड़ी है । जैसे हिरनी बाघ को देखकर सहम जाती है, उसी तरह सहमकर अनाथा ने वृद्धा को देखा ।

वृद्धा ने कर्कश स्वर में हाथ आगे बढ़ाकर कहा— ‘दे ला, किराया दे, आज ही का तेरा वायदा है ?’

बालिका ने बिल्कुल दबे स्वर से कहा—“चाची ! आज मैं जरूर दे दूँगी, ही अभी तो दिन निकला है । मैं काम पूरा करके दे आई हूँ, पर अभी मजदूरी मिली नहीं है ।”

डाइन की तरह एक-दम सिर पर गर्जकर बुढ़िया बोली—
“मजदूरी का क्या मैंने ठेका लिया है ? दो महीने हो गए, किराया नहीं दिया ? ला, अभी दे, नहीं तो चोटी पकड़कर बाहर निकालती हूँ ।”

लड़की प्रार्थना भी न कर सकी । वह अधमरी-सी होकर बुढ़िया की ओर ताकने लगी ।

बुढ़िया ने कहा—“इस तरह मरे बैल-से दीदे क्या निकालती है ? किराया दे !”

बालिका ने कुछ बोलना चाहा, पर उसकी जीभ तालू से चिपक गई । उसने धरती पर गिरकर बुढ़िया के पैर पकड़ लिए । अन्त में उसने टूटते स्वर से कहा—“चाची ! दो दिन से अन्न का दाना मुँह में नहीं गया, पर पहले किराया दूँगी; पीछे जल पीऊँगी । तुम शाम तक दया करो ।”

बुढ़िया का हृदय पिघला । पर क्षण-भर बाद उसने कहा—
“शाम को नहीं, अभी दे । कहीं से दे । उठ । मैं अभी लूँगी । अभी तेरा गूढ़-बोरिया फेंकती हूँ ।”

बालिका भयभीत होकर, उठ खड़ी हुई । उसने कहा—
“चाची ! मैं अभी जाती हूँ ।” इतना कहकर बेत की तरह काँपती हुई लड़की फिर घर से बाहर निकली । उसके हृदय और आँख में अँधेरा था ।

उसे कुछ सूझता ही न था । वह तीर की तरह चुभने वाली

हवा से शरीर को घायल करती हुई, फिर उसी द्वार पर आ-खड़ी हुई। वह बड़ी देर तक वहीं खड़ी रही, और अन्त में भीतर घुसी।

मालिकिन अभी पलंग पर बैठी थी। लड़की को देखते-ही, उसने आग होकर कहा—“अब कैसे आइ ?”

बालिका चुप रही। फिर वह धीरे से धरती पर बैठ गई, और कातर-कण्ठ से बोली—“मुझे चाची ने निकाल दिया। दो महीने से किराया ही न पटा। दया करके कुछ दे-दो। मैं भूखी तो और कल तक रह सकती हूँ, पर चाची को क्या कहूँ ?”

गृहिणी बोली नहीं। बड़ी देर तक वह मौन-कोप में भरी बैठी रही। सील-भरी धरती पर बालिका चुप बैठी, काँपती हुई गृहिणी के मुख से शब्द निकलने की प्रतीक्षा करने लगी। दुबारा उसे कुछ कहने का साहस न हुआ।

अन्त में गृहिणी बोली। उसने उसी वख की पोटली उसके हाथ में देकर कहा—“जा, जरा राजा साहब की कोठी तक चली जा, और यह काड़ा रानीजी को पसन्द करा ला। पसन्द आ जाय, तो कपड़ा छोड़ आना। और यह पर्ची ले, ये रुपये लेती आना। ना-पसन्द आने पर, उसमें जो कोर-कसर होगी, पूरी करनी पड़ेगी।”

लाचार लड़की चली। पर्ची में पढ़कर देखा—बाईस रुपए ? हे भगवान् ! दो रुपये दस आने के बाईस रुपए !! बाईस रुपए की मजदूरी के दो रुपए दस आने !!! पर उसे किराए की सज़ से बड़ी चिन्ता थी। वह बड़ी चली जा रही थी। नम्र पृच्छती हुई वह कोठी में पहुँची, दर्यान ने उसे राजा साहब के सामने पेश कर दिया।

राजा साहब की उम्र लगभग चालीस वर्ष की थी। रङ्ग साँवला था। आँखों में लम्पटता झूट-झूटकर अरी थी। दो दिन

की भूखी, दुःख-दर्द से व्यथित, शीत से ठिठुरी हुई बालिका के मुरझाये हुये पीले चेहरे को देख, राजा साहिब घूरने और मुस्कराने लगे गरीब लड़की ने घबराई आवाज से कहा—“सरकार, कपड़ा तैयार है।” कहकर धीरे-से उसने मेज पर पोटली रख दी, और आगे बढ़कर पर्वी राजा साहब के हाथ में दी।

राजा साहब ने पर्वी न छूकर उसका बड़ा हुआ हाथ पकड़ लिया। और बोले—“तू कौन है?”

बालिका क्या जवाब देती? उसने धीरे-से हाथ खींच लिया। वह वहाँ से जाने को उद्यत हुई। पर रुपये पाने से ही उसकी मजदूरी भिलेगी। उसने धरती पर गिरी हुई पर्वी उठाकर फिर राजा की ओर हाथ बढ़ाकर कहा—“हुजूर! इसके रुपये मालिकिन ने मँगवाए हैं।”

राजा साहब उस कुम्हलाये मुख-कमल का रस पी रहे थे। वह अति सुन्दर दरिद्र बाला—मानो प्रातःकाल की पीत-प्रतिमा थी। मैले और फटे वस्त्रों में और विपत्ति की आग में तपा-तपाया वह तपस्वी शरीर, उस विलासी, घृणित, काम के कीड़े के मन में वासना की तरंग उछाल रहा था। उसने दुबारा लड़की का विनीत स्वर सुनकर कहा—लेकिन “तू है कौन?”

लड़की ने जवाब दिया—“सरकार, मैं सीनेका काम करती हूँ!”

“दर्जी की लड़की है?”

“नहीं?”

“तब?”

“मैं सीकर ही दिन काटती हूँ।”

राजा साहब ने आगे बढ़कर पूछा—“तेरा कोई और अपना है?”

“नहीं सरकार।”

“त अकेली है ?”

“जी ।”

“तेरा नाम क्या है ?”

“सुशीला ।”

“सुशीला” कहकर राजा साहब हँसे । कुछ आगे बढ़कर उन्होंने उसको ठोड़ी पकड़कर, ऊपर उठाकर कहा—“सचमुच सुशीला है । यह कपड़ा तैने सिया है ?”

“जी” इतना कहकर बालिका पीछे हट गई । उसने अपने फटे और ओछे वस्त्र को यथा-सम्भव सम्भाला । फिर उसने कहा—“हूजूर, मुझे बड़ी देर हो रही है ।” राजा साहब ने अचूत नेत्रों से उसे घूरकर कहा—“शाम को चार बजे बिल के रुपये ले जाना, अभी तुमको इनाम मिलेगा ।” इसके बाद राजा साहब ने नौकर को बुलाकर पाँच रुपये लड़की को इनाम देने की आज्ञा दी । परन्तु लड़की ने इनाम लेने से साफ इन्कार करके कहा—“अगर सरकार अभी रुपये दे दें, तो मुझे मेरी मजदूरी मिल जाती । मैं बहुत गरीब हूँ, मुझे पैसों की बड़ी जरूरत है ।” राजा साहब हँसकर बोले—“तुम इनाम क्यों नहीं लेती ?”

“माँ की आज्ञा थी कि सिवा मजदूरी के और किसी से कुछ लेने में कुल-मर्यादा जाती है ।”

राजा साहब चुप हुए । वे कुछ देर तक घूर-घूरकर लड़की को परखते रहे । उस मूर्तिमान करुणा को देखकर भी उनके मनमें करुणा के स्थान पर विनोद का भाव प्रबल हो रहा था । जिन्होंने कष्ट कभी देखा नहीं, जो कभी दरिद्रता से मिले नहीं, जिनके हृदय में दया के स्थान पर लालसा, प्रेम के स्थान पर वासना, और सहानुभूति के स्थान पर स्वार्थ भरा हुआ है, वे गरीबों पर क्यों दया करें ? उन्होंने कहा—“रुपए शाम को आकर ले जाना ।

बालिका मालिकिन के पास सन्देशा लेकर पहुँची। पर वहाँ भी उसे वही जवाब मिला, और वह भग्न हृदय से फिर अपने घर लौटने लगी। पर जाय कहाँ? बिना किराया दिए वहाँ जाना सम्भव नहीं। बालिका न कुछ सोच सकती थी, न कर सकती थी। वह उस समय रो भी न सकती थी। वह निर्जीव कठपुतली की तरह अपने घर न जाकर, किसी और ही तरफ जा रही थी।

यह तो था, पर यही सब-कुछ न था। उसके पीछे एक और विपत्ति थी, जिसका उसे जरा भी ज्ञान न था। एक मनुष्य राजा साहब की कोठी से उसके पीछे लग रहा था—ज्योंही बालिका शून्य जगह पर पहुँची, उसने आगे बढ़कर कहा—“कहाँ जा रही है?” बालिका सावधान हुई। उसने ध्यान से देखा। एक नया भय उसपर सवार हुआ। उसने घबराई दृष्टि से इधर-उधर देखा, और सूखते कण्ठ से कहा—“मेरा मार्ग क्यों रोकते हो?”

मनुष्य ने निर्लज्जता से कहा—“यह रूप-सुधा लेकर कहाँ भटक रही है, कोई लूट ले, तो?”

बालिका पूरा मर्म न समझी, पर मनुष्य का आशय समझ गई। मनुष्य ने उसका हाथ पकड़कर कहा—“जाती कहाँ हो, जरा बात सुन लो, फायदे की बात है।”

बालिका ने कुछ कहा नहीं। वह पुरुष की ओर ताकने लगी। पुरुष ने कहा—“देखो, राजा साहब कैसे सुन्दर और सजीले हैं; वे जी-जान से तुमपर मोहित हैं। बस, तकदीर खुली हुई समझ, और मेरे साथ चल, आज से ही रानी की तरह रह।”

एक-दम इतनी बातें? बिल्कुल अपूर्व, पर बिल्कुल असह्य! बालिका लौटकर भागी। मनुष्य ने लपक कर हाथ पकड़ लिया। बालिका जोर करने और चिल्लाने लगी। अब उसने उसके मुँह में

कपड़ा टूँस दिया। लड़की यथा-शक्ति हाथ-पैर मारने लगी, पर वह बलिष्ठ पुरुष उसे पकड़े हुए था। निकट एक गाड़ी खड़ी थी। मनुष्य ने इशारा करके उसे बुलाया।

हठात् एक युवक उस मनुष्य पर दूट पड़ा! लड़की उसके हाथ से छूटकर अलग जा पड़ी। दोनों गुथ गए, और उनमें खूब चोटें चलने लगीं। लड़की ने दुष्ट के हाथ से छूटते ही चिल्लाना शुरू किया। तीन-चार आदमी और आ गये, और दुष्ट भाग गया। युवक ने अपने कपड़े भाड़कर देखा—बालिका एक ओर खड़ी है। उसने उसके पास पहुँचकर कहा—“तुम्हारा घर कहाँ है? चलो, मैं पहुँचा दूँ।”

बालिका चुपचाप चलदी। पीछे पीछे युवक चल पड़ा।

घर आ गया। अब किराबे का भय अधिक न था—क्योंकि उससे अधिक भय उसने देख लिया था। वह घर में घुसी, युवक भी घुसा। कोठरी में जाकर देखा—एक भित्री का घड़ा, दूटी चटाई और एक असंख्य पैवन्द-लगी धोती को छोड़कर कुछ न था। तमाम घर पर दृष्टि डालकर युवक ने बालिका पर दृष्टि डाली। दृष्टि, क्षण-भर दृष्टि से लड़ी और धरती में धँस गई।

युवक ने सब-कुछ समझ लिया, और कहा—“क्या यही तुम्हारा घर है?”

बालिका ने नीची नजर से कहा—“जी।”

“तुम्हारा और कोई है?”

“नहीं।”

“अकेली ही हो?”

“जी।”

“गुज़र कैसे करती हो?”

“कुछ सिलाई का काम मिल जाता है।”

“बहुत ठीक; क्या तुम कमीजें सी सकती हो ?”

“जी हाँ ।”

“आज-ही दे सकती हो ?”

“जी हाँ ।”

“सिलाई क्या लोगी ?”

युवक मुस्कराहट न रोक सका, पर त्रालिका लाज से गड़ गई ।

क्यों ?—यह हम क्या जाने ? प्राणियों के हृदय के भीतर—
गहरे पदों में पता नहीं, क्या-क्या होता रहता है । जिह्वा पर
बातें बहुत कम आती हैं, पर होठों पर और आँखों पर तो
बेतार की तारबर्की चलती ही रहती है ।

युवक जल्दी-से चला गया । लड़की धन्यवाद भी न दे सकी,
नाम भी न पूछ सकी, फिर कभी मिलेंगे या नहीं, यह भी न
पूछ सकी । परन्तु यह सब बातें जानने को वह व्याकुल हो गई ।
क्यों ? अब इस ‘क्यों’ का जवाब कौन दे ? हमें तो किस्से का
सिलसिला जारी रखना है ।

युवक नीचे जाकर मकानवाली डायन से मिला । उसने
छूटते ही लड़की को गाली देनी शुरू की । लड़की में अनेक ऐव
गिनाये, पर सब का कारण किराया न देना था । युवक ने पूछा,
कितना किराया है ? बुढ़िया धोली—पूरा डेढ़ रुपया । दो महीने
का चढ़ गया है । युवक ने १०) का नोट निकालकर बुढ़िया के
हाथ पर धर दिया, और कहा—“यह एक साल का पेशगी
किराया लो—कभी उसे कड़ी बात न कहना, खबरदार !”

बुढ़िया ने धुँधली आँखें पोंछकर नोट को देखा, और फौरन
उसका स्वर बढ़ता । लड़की गरु की तरह सीधी, बड़ी सुन्दर
और सुशीला है । नाम धरनेवाले की भी बुढ़िया ने तारीफ
कर डाली !

युवक बाजार गया, और शीघ्र ही लौटकर उसने एक थान कपड़ा लड़की के आगे ला-धरा—२) नकद चटाई पर धर दिये, और कहा—“यह पेशगी सिलाइ लो—एक कमीज शाम को जरूर मिल जाय ।

उसने जवाब की भी प्रतीक्षा न की, तेजी से चल दिया । लड़की पागल की तरह देखती रही । उसकी सुन्दर आँखों में आँसू के बड़े-बड़े मोती छलछला आये । दोनों रुपये उसने उठा लिये, और किराया चुकाने वह सीढ़ी उतरकर नीचे को चली ।

—:०:—

५

“बड़े ध्यान से पढ़ाई हो रही है—बस, अब दफ्तर जाने की ही कसर है ।”

भगवती ने पुस्तक से सिर उठाकर देखा—हरसरन की बहन चम्पा खड़ी है । उसे देखते ही भगवती हँसकर बोली—“बस, दफ्तर में कोई जगह खाली हुई, और मैंने नौकरी की । आ बैठ, तू कब से खड़ी है ?”

चम्पा ने बैठकर कहा—

“फिर तो तू हमसे बात भी न करेगी ? तब तो तू मर्द बन जायगी, और फिर दूसरा ब्याह करने में भी कोई दोष न रहेगा ।”

“हाँ, हाँ—पर ब्याह मैं तुम्हसे करूँगी ?”

“मुझसे ?”

“हाँ, हर्ज ही क्या है ?”

“मुझे दूल्हा बनायेगी ?”

“दूल्हा क्यों ? बहू बनाऊँगी—अभी तू कहती थी न, कि मैं मर्द बन जाऊँगी ।

चम्पा ने भगवती को धक्का देकर कहा—“चल परे हो, किताबों में पढ़कर तैने यही लच्छन सीखे हैं !”

“लच्छन क्या बुरे हैं ?”

“बड़े अच्छे” कहकर चम्पा चुप हो गई, और कुछ ठहरकर भगवती बोली—“कह तो तुम्हें भी इन किताबों का पढ़ना सिखा दूँ ?”

चम्पा ने कुछ कौतुक से कहा—“मुझे कैसे सिखायेगा ?—और किताब ही मुझे कौन लाकर देगा ?”

“किताब तो यहीं गली-गली विकती फिरती हैं—यह देख, कल तीन पैसे में यह मोल ली है—बड़ी अच्छी किताब है ।”

“तीन पैसे में इतनी बड़ी किताब ? वाह भई, कल स्कूल से रामू चार आने की जो किताब लाया है—वह तो इससे चौथाई भी नहीं । अच्छा, इस किताब में है क्या ।”

“तोता-मैना का किस्सा ।”

“तोता-मैना की सूरत भी बन रही है ।—तो इस किताब में क्या बात है ?”

“एक तोता और मैना बात करने लगे । तोता बोला—कि औरत की जात बेईमान होती है,—चाहे जितनी सम्हालकर रखी जाय, बिना बिगड़े नहीं रहती । मैना ने कहा—मर्द के बराबर कोई बेपीर नहीं । औरत चाहे मर जाय, पर मर्द किसी के नहीं हुए । इसी बात पर दोनों ने कहानियाँ सुना-सुनाकर अपनी-अपनी बात की सचाई दिखाई है ।”

चम्पा ने अचरज से ठोड़ी पर हाथ रखकर कहा—“अच्छा ! ऐसी-ऐसी बातें लिखी हैं—देखूँ !” कहकर चम्पा पुस्तक हाथ में

लेकर पन्ने उलटने लगी। फिर बोली—“तो इस किताब में देख-देखकर तुझे कैसे मालूम हो जाता है कि यह बात तोते ने कही और यह मैना ने कही?”

“हरफ पहचानकर पढ़ लेती हूँ—तुझे हरफ पहचानने आजाय, तो तू भी पढ़ने लगे।”

चम्पा ने जल्दी से कहा—“तो फिर जीता कौन? मर्द या औरत?”

“अभी तो मैं पढ़ ही रही हूँ, पीछे यह बात खुलेगी।”

“यह तो बड़ी अच्छी किताब है। इस किताब को तुम मुझे दो। मैं आज रात को ‘उन्हें’ दिखाऊँगी। वे तो खूब पढ़ना जानते हैं—देखें, मर्दों की बुराई पढ़कर क्या कहते हैं।”

भगवती ने तनिक रसिकता से कहा—“क्यों? मर्दों की बुराई तुझे बड़ी भाती है!”

“फिर इसमें मेरा दोष ही क्या है? मर्दों ने हमारे लिये कैसे बन्धन और रोक लगा रखे हैं और आप, आगे नाथ न पाछे पगहा।”

भगवती ने कुछ गम्भीर बनकर कहा—“तू ही जाने बहिन! मर्दों से तेरा ही पारा पड़ा है।”

चम्पा ने बीच ही में बात काटकर कहा—“और तू भी तो मर्दों की साँसत भुगत रही है। तेरे भैया की बहू के मरते देर न हुई—और तेरही को ही सगाई चढ़ गई। परन्तु तू सारी जिन्दगी रूँदापा भुगता कर—भाभी की जूतियाँ खाया कर—बैठी बैठी भाई के टुकड़े तोड़ा कर, बस।”

भगवती एकन्दम उदास होगई। उसने उसी भाव में कहा—“यह तो जो होता आया है, वही होगा। मर्दों के तो व्याह होते ही हैं, हमारा कैसे हो सकता है? जो भाग्य में है वही भोगना

डेंगा । (आँसू भरकर) चाचाजी जीते हैं, तो रोटी भी मिली जाती है, पर भाभी तो जैसी रोटी देगी, दीख रहा है । ऐसी-ऐसी सुनाती हैं कि तुमसे क्या कहूँ,—जब देखो टेढ़ी नजर । पर कहूँ किससे ? जो चाचाजी से कहकर भाई को फटकार दिलवाऊँ तो और भी आफत आये !”

चम्पा जोश में बोली—“कैसी आफत आये ? घर क्या उसी का है ? तू फौरन अपने चाचा से सब बात कह दिया कर, उसका सब जुकाम एक ही फटकार में झड़ जाया करेगा । पराये घर की झूठन, धी-ब्रेटियों पर बोली कसेगी ?”

भगवती और भी उदास होकर बोली—“एक बार मैंने चाचाजी से कह दिया था, तो उन्होंने समझाया, कि यह तो बेचारी आप ही आफत की मारी है—इसे देखकर बहू, तू क्यों कुढ़ा करती है ? सो तब तो चुप हो गई, पीछे मुझे तंग करने में कुछ उठा न रक्खा । मेरे लिये कभी शाक नहीं—कभी बच रहे, तो उठाकर नमक भोंक दिया । कभी बासन माँजने को गर्म पानी न करने दे । मेरी किताब फाड़कर रख दी । धोती चौकी पर पड़ी थी, उस पर दावात उलट दी । भैया से जाने क्या-क्या कह दिया, कि वे भी सीधे-पुँह नहीं बोलते । मैं तो अकेली बैठी इन्हीं किताबों से सिर खपाया करती हूँ ।”

चम्पा यह सुनकर बहुत दुखी हुई । कुछ ठहरकर उसने कहा—“नारायणी भी तो आनेवाली थी, कब आयेगी ? उसे भी तो तेरी भाभी कच्चा ही खा जायगी । क्यों ?

“भैया उसे परसों लेने जायंगे ? उसकी ससुराल से खबर आई है, कि इसे ले जाओ, यहाँ दिन-रात रोती और कलह रखती है ?”

“बेचारी फेरों की गुनहगार है ।”—कहकर चम्पा ने अपनी

आँखें पोंछ डालीं। फिर एक साँस लेकर बोली—“अरी, सब भाग्य के खेल हैं ! अच्छा, अब जाती हूँ, रोटी-पानी का समय हो गया है; आजकल मुझे ही खाना बनाना पड़ता है। ला, इस किताब को लेती जाऊँ।

भगवती उठ-खड़ी हुई, अब उसके मुख पर प्रफुल्लता या आनन्द नहीं था। उसने चुपके-से पुस्तक चम्पा के हाथ में रख दी और धीमे, आग्रह पूर्ण स्वर में कहा—“चम्पा, ऐसी भी क्या बात; तनिक इधर भाँक तो जाया कर।”

चम्पा ने कहा—“कल आऊँगी, जरूर।”

६

युवक का नाम था—प्रकाशचन्द्र ! वह लॉ-कॉलेज का विद्यार्थी था, और कॉलेज-होस्टल में रहता था। उसके पिता पञ्जाब में कहीं एक्स्ट्रा-असिस्टेंट कमिशनर थे। युवक की आयु २१ के लग-भग होगी। इसका रङ्ग उज्ज्वल, शरीर गठा हुआ, बड़ी-बड़ी आँखें, उभरा हुआ सीना, फूले हुए होंठ, प्रशस्त ललाट और स्वच्छ दाँत, साधारणतया एक ही दृष्टि में उसकी ओर मन को आकर्षित करते थे।

वह प्रातःकालीन वायु-सेवन के इरादे से धीरे-धीरे घटना-स्थल की ओर से आ रहा था, कि चीत्कार सुनकर विपत्ति में पड़ गया।

विपत्ति ? हाँ, विपत्ति ही तो थी; अजी, जिस विपत्ति ने उसे नई चिन्ता, उद्वेग और विचलित अवस्था में डाला, वह क्या विपत्ति नहीं ? फिर चाहे वह कितनी ही मधुर क्यों न हो ?

वह धीरे-धीरे अपने होस्टल के कमरे में आकर थकित भाव से पड़ गया, उसने भीतर से द्वार बन्द कर लिया। वह अतिशय गम्भीरता से विचार में डूब रहा था, और उसके विचार का विषय थी, वही अनाथ असहाय बालिका। ओह ! कैसी सुन्दर, कैसी प्रिय, कैसी मधुर, परन्तु इतनी दरिद्र कि न खाने का ठिकाना, न रहने का; न वस्त्र, न बिछौना; न सगा न सम्बन्धी ! अकेली यह कुसुम-कली, क्या धरती फोड़कर पैदा हुई ?—या आसमान से गिर पड़ी—? फिर इतना सौष्ठव लेकर ? उसके पास विपत्ति को छोड़कर कुछ नहीं है। यह मानो यथेष्ट न था, अब और आफत यह कि दुष्टों के यह घृणास्पद अत्याचार !

युवक बहुत दुखी हुआ, पर वह स्वयं सोचने लगा—इस दुःखिनी बालिका का मैं कौन हूँ ? क्यों इतना दुःख मेरे मन में उसके लिये उत्पन्न होगया है, और क्यों मैं उसके लिये इतना सोच रहा हूँ ? क्या मुझे यह उचित है ? उसे मैंने अतातायी से बचाया, उसे घर तक पहुँचाया—यह तो ठीक हुआ, पर कपड़ा सिलवाना, फिर जाने-आने का सिलसिला कायम करना, यह भी क्या उचित हुआ ? क्या मुझे सायंकाल को फिर जाना पड़ेगा ? युवक उठकर टहलने लगा। उसका मन अधीर हो रहा था। वह सोचता—जाने दो, अब कहीं जाने-आने का काम नहीं है, वह कपड़े क कमीज बनाकर बेच खायगी, कुछ दिन गुजर जायेंगे। फिर न होगा, कुछ खर्च-पानी भेजता रहूँगा। परन्तु आह ! युवक के विचारों में गड़बड़ी पड़ गई; वह कुछ निश्चय ही न कर सगा।

भोजन का समय आ गया—मेस का नौकर कई बार बुला गया, पर प्रकाशचन्द्र उस दिन भोजन को न गये। जितना ही उस बालिका को भूलना चाहते थे उतना ही वह उनके सम्मुख आती थी, मानो इतनी ही देर में उसकी स्मृति उनके दृढ-पटल

पर अमिट-सी हो गई है ।

उन्होंने पुस्तक खोलकर पढ़ना चाहा, और भी किसी काम में मन लगाना चाहा, पर किसी काम में मन न लगा । वे ज्यों-ज्यों बालिका के पास सायंकाल को न जाने की सोचते, त्यों-त्यों उन्हें भासता कि यह असम्भव है । वे कुछ भी स्थिर न करके चुपचाप लम्बी तानकर पड़ रहे ।

सन्ध्या होने लगी, युवक अभी यह स्थिर ही न कर सके थे कि उन्हें वहाँ जाना है या नहीं; परन्तु वे उठकर हाथ-मुँह धोकर कपड़े पहनने लगे ।

उनके मन ने पूछा—“कहाँ चले ?”

“यों-ही जरा घूमने !”

“वहाँ तो न जाओगे ?”

“नहीं-नहीं ।”

मन मानो ठठाकर हँस पड़ा । उसने कान के पर्दे के भीतर घुसकर कह दिया—“हर्ज क्या है ? जरा देख ही आना ।”

“नहीं ।”

“कमीज मिली, या नहीं ?

“कमीज को जाने दो ।”

“उसपर कैसी वीती ।”

“अब और क्या आफत है ?

“किरायेवाली ।”

“उसका तो साल-भर का चुकता होगया ।”

“मगर राजा साहब ?”

युवक चमक गया । अरे हाँ, वह हरामखोर राजा उसे कष्ट दे सकता है । युवक तीर की भाँति बालिका के घर की ओर लपका, पर इस जल्दी में अपने बालों को संवारना और जरा

वेश-भूषा की विवेचना करना वह भूला नहीं ।

क्यों ?

अब इस बात का हम क्या जवाब दें । उसकी इच्छा ।

७

रुपये लेकर बालिका नीचे किरायेवाली के पास गई । वह डर रही थी । उसने डरते-डरते वे रुपये बुढ़िया के सामने रखे । परन्तु उसने देखा—बुढ़िया का रङ्ग-ढङ्ग सभी बदला हुआ है । बुढ़िया ने हँसकर कहा—“अरी बावली, किराया तो मुझे मिल गया है !”

“कहाँ से मिला ?”

“वे बाबू साहब दे गये थे ?”

बालिका चकित-सी खड़ी रह गई । बुढ़िया ने युवक की प्रशंसा के गीत गाने प्रारम्भ कर दिये ! बालिका ने पूछा—
“क्या दे गये ।”

“दस रुपये, साल-भर का पेशगी ।”

“तुमने लिये क्यों ?”

बुढ़िया ने विस्मित होकर बालिका की तरफ देखा—उसने कहा—“इसमें क्या बुरा किया ?”

बालिका वहाँ न ठहरकर ऊपर चल दी । उसकी मुठ्ठी में वह दो रुपये थे । उन्हें खवजोर से मुठ्ठी में दबाकर, वह धरती में लोटकर रोने लगी । मानो उसका हृदय फटा पड़ता था । आँसुओं का वेग नदी की भाँति बह चला !

ओह, वह कौन है ? इतना सुन्दर, शरीर और मन दोनों से ऐसा दाता ! उसने मेरे जीवन और इज्जत दोनों की रक्षा की ।

एक ही भोंक में वह बहुत-सी बातें सोचने लगी। वह अब बिल्कुल अबोध बच्ची तो थी नहीं, १६ वर्ष की युवती थी। वह अपनी परिस्थिति और दयनीय दशा को समझती थी। जो-जो बातें इस समय उसके मस्तिष्क में उमड़ रही थीं, उन्होंने उसे अधिक रोने न दिया। वह आकर बैठ गई और सोचने लगी। वह चर-विस्मृत विवाह का खेल, वह अति दूर का ससुराल-गमन, वह माता का प्यार और मृत्यु, वह विपत्ति के समुद्र में असहाय डूबना, और इस एक युवक के द्वारा एकाएक ठीक ठीक कठिन समय पर उसका उद्धार होना—“आह, यदि वह……” “……” युवती मानों कोई बहुत-ही भयङ्कर बात सोचने लगी। उसने दोनों हाथों से मुँह छिपा लिया। अब फिर उसका रुदन उमड़ आया। हठात् उसके मुँह से निकल गया—“यह सब भाग्य का दोष है। भाग्य को रेखा भी कितनी टेढ़ी, कितनी दुरूह और कितनी दुःसाध्य है! हे परमेश्वर! मुझ दुखिया को जो दुःख था, वही बहुत था, अब यह नई विपत्ति कैसे सही जायगी?”

वह भूखी-प्यासी बालिका अब सब-कुछ भूलकर उसी युवक की स्मृति को बार-बार हृदय से निकालने की चेष्टा कर रही थी। मानो वही युवक तीर की गाँस की भाँति उसके कलेजे में घुस गया हो। कभी वह गम्भीर सोच में डूब जातो, कभी वह रोने लगती। कभी वह बेचैनी से उठकर टहलने लगती! हठात् उसे स्मरण हो आया—वे आज सन्ध्या को आयेंगे। कमीज तैयार रहनी चाहिये। मगर नाप? नाप तो कुछ मालूम ही नहीं। यदि ठीक न बैठे, बिगड़ गई—तब तो बड़ी आफत है। बेचारी बालिका सब-कुछ भूलकर अब कमीज की नाप-तोला की फिक्र में पड़ गई। अब वह कमीज को सिये किस भाँति, और न सिये,

तो अपने उपकारी उस सुन्दर उदार युवक की नाराजी कैसे सहे ?

उसने कई बार कैची ली और रख दी । कपड़ा घिगड़ जाने का भी भय था । परन्तु वादे के अनुसार उसे कमीज तो तैयार कर रखती ही चाहिये । उसने साहस करके कमीज काट डाली, और अपने खाने-पीने की जरा भी चिन्ता न कर, वह कमीज सीने लगी ।

धीरे-धीरे सन्ध्या-काल आ गया । बालिका ने कमीज तैयार कर, तह करके रख दी, और धड़कते हृदय से युवक के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी ।

जीने में पद-ध्वनि हुई और युवक सामने आ खड़ा हुआ । बालिका खड़ी हो गई । वह स्वागत का एक शब्द मुँह से भी न निकाल सकी । युवक भी कुछ न बोल सका । कुछ समय तक दोनों चुपचाप खड़े रहे ।

युवक ने पूछा—“कमीज तैयार होगई न ?”

“जी ।”

“जरा देखूँ ।”

बालिका ने कमीज हाथ में दे दी । युवक ने खालकर देखा । एक मन्द हास्य की रेखा उसके होठों पर घूम गई । उसने कमीज की आस्तीन-गला नापकर देखा—बहुत ओछी थी । उसने भट-पट कोट उतारकर कमीज पहन ली । कमीज उसके जिस्म में फँस गई । युवक ने हँसकर कहा—

“बहुत ठीक, अब आठ दिन उपवास करके शरीर को छोटा करना पड़ेगा, तब यह कमीज ठीक बैठेगी ?”

बालिका लाज से गड़ गई । वह नीचा सिर किये खड़ी रही । थोड़ी देर बाद उसने कहा—“क्षमा कीजियेगा, मैं आपका नाप न ले सकी, इसी से ऐसा हुआ । आप मेरी मजदूरी से इसके

दाम काट लें, और कृपाकर अपनी कमीज दे जायँ, जिसके नाप से और कमीजें सी दी जायँ ।”

“दाम काटने की बात तो पीछे देखी जायगी । पर कमीज मैं तुम्हें दे जाऊँ, तो क्या नंगा घर जाऊँ ?” युवक हँस पड़ा । बालिका ने मधुर स्वर में कहा—“कल कष्ट करके आप एक और कमीज दे जाइयेगा ।”

“अब कल आना तो आफत है । न हो तुम नाप ही न ले लो, जब मैं ही यहाँ खड़ा हूँ, तब कमीज क्या करोगी ?”

बालिका भयभीत-सी होगई । राम-राम—क्या वह उस युवा पुरुष के शरीर पर नाप ले ! क्या इसमें स्पर्श होना सम्भव नहीं ? और-और—नहीं-नहीं, ऐसा तो वह कर ही न सकेगी !

बालिका को पेशोपेश में पड़ते देख, युवक ने कहा—“नहीं तो जाने दो, कपड़ा वापस दे दो, कमीजें अन्यत्र सिल जायेंगी ।”

बालिका ने कातर नेत्रों से युवक को देखा—वह कुछ बोली नहीं । होठ काँपे, मगर स्वर न निकला ।

युवक के शरीर में विद्युत्-प्रवाह उत्पन्न हो रहा था । उसने कहा—“सुशीला, तुम सिलाई का काम करती हो, परन्तु बिना नाप-तोला किये यह काम चलेगा कैसे ?”

सुशीला ने कहा—“आपको मैंने कह तो दिया ही है, मैं दुखिया हूँ, और बहुत गरीब हूँ, वे दो रुपये तो रखे हैं पर जो कमीज खराब होगई है, उसके बदले दाम देने को मेरे पास कुछ नहीं है, अगर मजदूरी न करूँगी, तो भरपाई कैसे होगी ? आप कृपा कर, मुझे ही कमीजे सीने दीजिये—कल कष्ट करके एक कमीज दे जाइयेगा ।”

युवक स्थिर न रह सका । उसने जरा आगे बढ़कर कहा—“क्या कहा ? वे दो रुपये रखे हैं ! तुमने उन्हें खर्च नहीं किया ?

अच्छा बताओ, आज तुमने खाया क्या है ? बताओ—जल्दी बताओ ।”

बालिका कहती क्या ? क्या भूट बोलती ? अपने कृपालु उद्धारक के सामने यह सम्भव ही न था, फिर क्या सत्य कहती कि तीन दिन से अन्न का दाना उसके मुख में नहीं गया है ? ना, यह सम्भव न था । वह चुपचाप खड़ी धरती देखती रही ।

युवक ने और जरा आगे बढ़कर कहा—“सुशीला !”

बालिका धरती की ओर देखती रही ।

युवक ने फिर कहा—“सुशीला ! बहन !”

बालिका ने दृष्टि उठाई । उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक गये । युवक ने लपक कर उसका हाथ पकड़ लिया । उसने कहा—“मेरी अभागिनो गरीब बहिन, तुम्हें ईश्वर की सौगन्ध है, कह—कब से भूखी है ?”

सुशीला की आँखों से आँसू बह चले । वह बोल ही न सकी । युवक ने कहा—“तेरे होंठ सूख रहे हैं, शरीर काँप रहा है, रंग पीला हो रहा है । सच बोल—तैने कब से नहीं खाया ? तुझे बताना पड़ेगा—तुझे मेरी कसम ...”

“आह, कसम न दीजिये—” सुशीला के मुख से चीख निकल गई । उसने कहा—“मैंने परसों से कुछ नहीं खाया है ।”

युवक ने कहा—“मैं तुम्हें रुपये दे गया था ।”

“मैं उतने की मजदूरी बिना किये उन्हें कैसे काम में ला सकती थी ?”

“और यदि किरायेवाले को देने पड़ते ?”

“किरायेवाली पर मेरा बस न था, पेट पर तो मेरा बस है ।”

युवक के नेत्रों में आँसू भर आये । वह चुपचाप बाहर आया—और थोड़ी ही देर में बाजार से कुछ खाने का सामान लेकर आ गया । सामग्री को धरती पर रखकर उसने कहा—

“सुशीला, मेरी एक और बहन थी, पर तुमसे बहुत छोटी— उसकी स्मृति ही मेरे लिये संसार में सत्य है, शेष सब असत्य है। मेरी माँ नहीं—पिता हैं, आज मैं सर्व-शक्तिमान् परमेश्वर के समक्ष साक्षी करके कहता हूँ कि तू वैसी ही मेरी बहिन हुई। मैं अपनी स्वर्गवासिनी माता के प्राणों की भी शपथ खाता हूँ, कि इस जन्म में तू सदा मेरे जीते-जी बहिन रहेगी। बस, अब दो-पने के भाव की ज़रूरत नहीं। ले, अभी मेरे सामने बैठकर खा। अभी खा।” इतना कहकर युवक बिना ही किसी प्रकार के उत्तर की प्रतीक्षा किये धरती पर बैठ गया और सुशीला का हाथ पकड़-कर उसने अपने पास बैठा लिया।

सुशीला ने आँख फाड़कर देखा। वह कुछ समझ ही न सकी। पर वह न बोली, न रोई, धम-से बैठ गई।

“अभी खा, मैंने कहा न, अपने सामने खिलाऊँगा।”

सुशीला चुप रही।

“मुझे कुछ क्यों देनी है?”

“आप.....”

“खा।”

“आपने यह क्या किया?”

“आप-आप न कर।”

सुशीला संकाच में भरकर बैठ गई। युवक ने कहा—“खा।”

“अभी मुझे भूख नहीं।”

“फिर आप.....यहाँ ‘आप’ कौन है?”

सुशीला ने झिझकते हुए कहा—“तु—तुम कुछ खालो, मैं पीछे खाऊँगी।”

युवक ने क्रुद्ध होकर कहा—“तो अब मैं रोता हूँ।”

“मैं हाथ जोड़ती हूँ, ज़िद न करो।”

“मेरी अच्छी सुशीला—खा ले।”

“पहले तुम.....”

“अच्छा, हम दोनों ही खायेंगे।”

दोनों ही ने साथ भोजन करना शुरू किया।

खा-पीकर सुशीला ने युवक के हाथ धुलाकर, उसके निकट आ उसके पैर छुए। वह इस बार सिसक-सिसक कर रो उठी, और फिर धरती में गिर गई। वह कुछ कहना चाहती थी—पर कह न सकी।

युवक भी रो रहा था। यह रुदन कितना प्रिय, कितना मधुर और कितना पवित्र था—इसे कौन बताए? सुशीला ने कहा—“भाई, तुम्हें ईश्वर ने इस अभागिनी की रक्षा को भेज दिया—यह क्या अच्छा हुआ? तुम किसी बड़े घर के दीपक हो इस कुलच्छनी अभागिनी के लिये क्या-क्या आफत उठाओगे?”

युवक की आँखों से आँसू जारी थे। उसने उसका हाथ पकड़कर पास बैठा लिया। फिर कहा—सुशीला! हमारी माता बड़ी पवित्र दयाशील थीं। क्या कभी कल्पना कर सकती हो? वे कहती थीं—हमारी एक बिटिया भगवान् ने ले ली। उसके बड़े गुन गाया करती थीं। वे सदा कहतीं—मेरी बेटी अब तक घर-बार की होगई होती। मुझे आज तम मिल गई। क्या हमारी माता हम लोगों को न देखती होंगी। यह देखो—” उसने जेब से माता का फोटो निकालकर सुशीला को दिखा दिया। सुशीला उसे एकटक देखती रही। युवक ने फिर कहा—

“सुशीला, यदि माता जीवित होतीं—तो तुम्हें प्यार करतीं, पर अब तो वह काम मुझे करना पड़ेगा; मैं तुम्हारा बड़ा भाई हूँ। तुम्हें मेरे साथ घर चलना पड़ेगा। एक महीने बाद ही कुटियाँ हैं। तब तक तुम्हें और यहीं रहना पड़ेगा, पर कष्ट न

पाना, मैं नित्य ही आऊँगा ।”

इतने में मजदूर बहुत-सा आटा, दाल, घी-सामान लेकर आ गए । सुशीला ने पूछा—“यह क्या ?”

“पेट-पूजा का सामान ! और क्या ।”

“इतना सारा कौन खायेगा ?”

“सुशीला खायगी ।”

“इतना उसके पेट में समायेगा ?”

“जो बचेगा, उसे भाई खायगा, भाई को भीमसेन से कम न समझना ।”

सुशीला हँस पड़ी । युवक को चाँद मिल गया । मजदूरों को पैसे देखकर उसने विदा किया । उसके बाद वह उठ खड़ा हुआ । सुशीला ने कहा—

“कल कमीज लेते आना ।”

“अच्छी बात है । मगर सिलाई ?”

सुशीला फिर हँस पड़ी । युवक एक बार आनन्द का प्रश्वास ले, जल्दी-जल्दी सीढ़ी से उतर, होस्टल की ओर लपका । वह तेजी से भागा जा रहा था । रात हो गई थी ।

८

८

पाठक उस सप्त-वर्षीया हत-भागी बालिका को भूले न होंगे । उसका भाग्य फूटे डेढ़ वर्ष हो गया है । इसके बीच में उसके पिता और भाई ने कई बार उसे घर ले जाने की चिट्ठी भेजी है, पर कोई उत्तर उनको नहीं दिया गया । बालिका के सास-ससुर मानो उनको अब अपना सम्बन्धी ही नहीं समझते । उनकी धारणा है, कि उनके पुत्र के मरने में सब से अधिक अपराध इस कुलच्छिनी बहू का ही है । ब्याह में जो खर्च हुआ था, उसे याद करके

रमाकान्त और भी आग-बबूला हो जाता है। सारे परिवार ने मिलकर यही ठान ली है, कि इस खसम-खानी राँड़ में सब बातों का बदला लिया जाय। इसी के अनुसार काम भी होता था। बालिका अपनी जननी की सुखमयी गोद से अलग होकर, अपने पिता के दुःख से वञ्चित होकर, साथ-ही पति के सौभाग्य को खोकर सब की ही कोपभाजन हुई है, और इसी नन्हीं अवस्था में असह्य यातनाएँ शरीर पर भेल रही हैं।

पहले वह झिड़की या गाली सुनकर रो उठती थी, पर अब चुपचाप सुन लेती है। उसे नित्य सब से प्रथम ४ बजे उठना पड़ता है, और बारह बजे सोने को मिलता है। सर्दी, गर्मी, वर्षा कभी भी उसका परित्राण नहीं है। पहले उसको इसमें कष्ट होता था, सारा शरीर थककर चूर-चूर हो जाता था, पर अब वह बात नहीं है—उसे उसका अभ्यास हो गया है। रस्सों और जलती हुई लकड़ियों की मार से पहले उसे बड़ा दर्द हुआ करता था, और वह घण्टों रोया करती थी, पर अब दर्द नहीं होता है। शरीर वैसा ही बन गया है, और आँसू भी कम निकलते हैं। क्या जाने, हैं भी या नहीं? असल बात यह है, कि मनुष्य का मरना हँसी-खेल नहीं। जिन दुखों को मनुष्य मृत्यु से बढ़कर असह्य समझता है, आश्चर्य की बात है, कि उनको तिरन्तर सहने का अभ्यास तो कर लेता है, पर मरने से फिर भी डरता है। बात बड़ी ही अद्भुत है—पर सच्ची है। नारायणी को प्रथम तो मृत्यु का ज्ञान ही न था—वह दुःख से बचने को बहुत छटपटाती थी। पर न-मालूम किसने उसे सिखा दिया, कि मृत्युकी गोद में अच्छी शान्ति मिल जाती है। बालिका उस शान्ति के लिये ललचा तो उठी थी, पर यह न समझ सकी, कि अन्ततः मृत्यु से भेंट होगी क्योंकि ! परन्तु जिस अतर्क्य-शक्ति ने उसे इस

अवस्था में इतना ज्ञान करा दिया था, उसने यह भी समझा दिया, कि घटना-चक्र से वह स्वयं ही धीरे-धीरे उसी शान्तिदायिनी मृत्यु की ओर अग्रसर हो रही है—जिसपर उसका जीवन आप ही लटक रहा है। वही मृत्यु का पथ है—यह समझकर वह अद्भुत धीरज, अगम्य शान्ति और आश्चर्यजनक सहनशीलता से उस भयानक पथ पर बढ़ी चली जा रही थी। बालक पति के मरने के बाद, बालिका विधवा का जीवन ऐसा ही अद्भुत, भीमत्स और भयानक हो रहा था !!

पाठक ! हमारी यह कहानी एकदम कहानी नहीं है। विश्वास रखिये, कि दया-धाम हिन्दू-धर्म के पवित्र पदों में छिपी असंख्य बालिकायें—ऐसी ही कठिन और उग्र तपस्या कर रही हैं। तिसपर भी हम उन्हें अबला कहकर अस्मानित करने में लज्जित नहीं होते ! अपार शारीरिक कष्ट के मर्मच्छेदी तीर, घोर मानसिक ताप की भयंकर ज्वाला, और दुस्सह अनादर और कड़ी मारको बिना प्रतिकारके धीर भाव से जन्म-भर सह सकने की शक्ति जिस साढ़े आठ वर्ष की बालिका में है—उसे नगण्य समझकर हम तो अपने हृदय की गौरव-रक्षा कर रहे हैं ?

ऐसे ही दयालु हिन्दू-धर्म की उदारता, दया और प्रेम का आश्वादन अभागिनी बालिका नारायणी अपनी ससुराल में कर रही थी। हाड़-मांस के शरीर से और कहाँ तक सहा जाता ? अन्ततः वह खाट पर गिर गई, और अब उसे दीख गया, कि वह शान्तिदायिनी गोद जिसके लिये उसे देर से लालसा थी, प्राप्त होने में देर नहीं है। यह बात घर के लोग भी जान गये थे, पर कोई उससे लिये विशेष दुखी न था—कोई-कोई तो नित्य यह प्रार्थना करते थे कि भगवान् इसे उठा ही ले। निदान, नारायणी के कान में ज्यों-ही यह शब्द पड़ा, वह धीरज से उस दिन

की बाट जोहने लगी, पर उसकी इच्छा पूर्ण न हुई। उसके ससुराल वालों ने जब देखा, कि अब इसका वचना कठिन है, तो उन्होंने हारकर जयनारायण को चिट्ठी लिखकर बुलाया, और हरनारायण अपनी बहन को लेने तुरन्त चल दिया।

दस बजने में दो-चार मिनट की देर है। हरनारायण अपनी बहन को ससुराल से लेकर आज तीसरे पहर आये हैं, उनका मुँह बड़ा उदास है। तब से अब तक उन्हें भीतर जाने का अवकाश नहीं मिला है। भोजन भी पिता-पुत्र ने नहीं खाया है। नारायणी के ससुरालवालों का अत्याचार और पशु-भाव देख-सुनकर ही उनका पेट भर गया है। जयनारायण कभी लम्बी साँसें खींचते, कभी दो बूँद आँसू बहाते हैं ! बैठक में और दो-चार मनुष्य बैठे थे ! दैव-विपाक पर विवशता और धीरज की दो-चार बात कहकर, वे भी-एक-एक करके खिसक गये हैं। पिता-पुत्र कुछ देर स्तब्ध बैठे रहे। तब जयनारायण ने कहा—“जाओ बेटा, अब तुम भी आराम करो, रास्ते की थकावट है।”

हरनारायण धीरे-धीरे उठकर अपने शयनागार में आये। शयनागार में भी सन्नाटा था—हरदेई पर्लंग पर दरवाजे की ओर पीठ किये बैठी थी। उसकी इस निद्रा में कितना भाग मान का था और कितना मकर का, सो भगवान ही जानें।

हरनारायण ने क्षण-भर अपनी खो की ओर देखकर कहा—
“क्या सो गई ?”

हरदेई चुप रही।

हरनारायण ने अबकी बार हाथ पकड़कर कहा—“जरा उठो तो।”

हरदेई ने जरा कुतमुताकर कहा—“क्या है ?”

“क्या जाने क्या है, तुम्हारी नींद भी छकड़ों में चलती है।”

हरदेई उठ बैठी—कुछ सुस्ताकर और दो-एक जम्हाइयाँ लेकर उसने ताने के ढँग पर कहा—“तुम्हें फुरसत मिल गई जमाने-भर की बात-चीत से ?”

“नीचे बैठक में दो-चार आदमी आ बैठे थे—सो आना नहीं हुआ, और अभी दस ही बजे हैं—पर तुम्हारी नींद का भी कुछ ठीक है ?”

“मेरी नींद तो तुम्हें खटक गई—पर तुम तनिक चार-चार घण्टे अकेले बैठकर देखो—नींद आती है, या नहीं। ऐसी क्या कमाई करके लाये हो, कि घर आने-बैठने की फुरसत ही नहीं मिली ?” यह कहकर हरदेई ने बक्र दृष्टि से पति का तिरस्कार किया।

हरनारायण ने कपड़ा उतारते-उतारते कहा—

“तुम्हारी कैसी बुरी आदत है ! जरा आदमी की तबियत देखकर नाराज हुआ करो, बात-बात में झक-झक अच्छी नहीं होती। लो, यह कोट खूँटी पर टाँग दो।”

हरदेई ने कोट लेकर खूँटी पर रखते-रखते कहा—

“मेरी बात क्या तुम्हें सुहाती होगी ? सीधी बात कहती हूँ, तो उल्टी गलती है।”

हरनारायण ने कुछ जवाब नहीं दिया। वे चुपचाप कपड़े उतारकर चारपाई पर लेट गये। हरदेई भी कुछ बड़बड़ा कर पंखा लेकर खड़ी हो गई।

हरनारायण ने कुछ ठण्डे होकर कहा—“खड़े क्यों हो ? बैठ जाओ न ?”

“मैं अच्छी तरह खड़ी हूँ……”

“क्यों, ऐसी उदास क्यों हो ?”

“कहाँ ? उदासी हो मेरी जूतियों को ! मुझे परवाह किसकी है ? मैं क्या मोल खरीदी आई हूँ, या कोई कुजात हूँ ?”

“वाह-वा ? तुम्हारा मिजाज तो बिखरा ही जाता है ! कहता कौन है कि तुम मोन आई हो ?”

“तुम्हें किसी की मुनने की फुरसत ही कहाँ है ? अपने पास-पड़ोसी और बाप-बेटों की सलाह खतम हो जाय, तब न ? राम जाने कहाँ के किले फतह करने हैं ।”

“इतनी देर ही में तुमने ऐसी लम्बी-चौड़ी बातें कह दीं—पर असल बात तो रह गई । ननद-भावजों में लड़ाई हुई मालूम होती है ! जाते-जाते इतना कह गया था, कि मिलकर रहना—भगवती से लड़ना नहीं ।”

हरदेई की आँखों में आँसू भर आये । उन्हें आँचल से पोंछ-कर वह कहने ली—

“तुम्हारे घर में सब दूध-धोये हैं—लड़ाकी तो एक मैं ही हूँ । फिर तुम मुझे यहाँ से निकाल क्यों नहीं देते ? सबेरे ही छज्जू मिस्र को बुलाओ, मैं तो अपने बाप के यहाँ चली जाऊँगी—तब अपनी भोली-भाली बहनों को लेकर रहना । बस, आँख फूटो, पीर गई । रोज की झक-झक तो न रहेगी ।”

“सस्ते छूटे । नैहर में ही रहना था, तो तुमने ब्याह क्यों किया ? मजे से वहीं रहतीं न ?”

“ब्याह के लिये खुशामद किसने की थी ? तुम्हीं न लूलू का स्वाँग बनाकर हमारे द्वार पर गये थे ?”

इस लूलू के स्वाँग की बात पर हरनारायण को क्रोध आते-आते हँसी आ गई ! उसी हँसी में वे बोले—

“खुश याद रखी भाई, वह स्वाँग की बात तो । (हाथ-पकड़कर) अब चलो, रहने दो—मिजाज ठण्डा करो । आदमी को चाहिये, जैसी पड़े, भुगतें । तुम्हीं बताओ, इन बेचारियों का अब धरती-आसमान पर है कौन ? अब तो उन्हें तुम्हारा ही आसरा है । दुःखम-सुखम जैसे बने, रखना ही पड़ेगा ।”

उकताकर हरदेई बोली—

“तो तुम्हें रोकता कौन है ? पर मैं साफ ही कहती हूँ, मुझसे तो न रहा जायगा। (आँसू पोंछकर) जरा-सी लड़की मेरे सुहाग को कोसेगी ! काम-धन्ये को तिनके का सहारा नहीं, और खाने को चाहिये छः बार। ये हड्डियाँ हैं—इन्हें पीसे जाओ। दो बूढ़े-बुढ़िया, दो धी—यही बहुत हैं। रही लुगाई सो उसे अफीम-संख्याँ खिलादो—बाल-बच्चों का गला घोट दो !”—बस, इतना कहकर हरदेई ने गम्भीरता से एक लम्बी साँस छोड़ी।

हरनारायण दुखी होकर बोले—

“तो क्या करूँ ? इन्हें फाँसी लगा दूँ ?—या भीख माँगने को छोड़ दूँ ? दर-दर भीख माँगते अच्छा लगेगा ?”

“ना—उन्हें तो रानी बनाओ, भीख माँगते तो ये बच्चे अच्छे लगेंगे, जिनकी सूरत भंगी-चमारों से भी बदतर हो रही है—न धोती न कुरता। एक छल्ला मेरे पास नहीं रहा—व्याह-टेहले में कुटुम्ब-परिवार की चार औरतों में जाते लाज से मर जाती हूँ। उनकी टहलनी भी मुझसे अच्छी लगती हैं। खैर ! मुझे तो भाड़ में जाने दो, पर अपनी सूरत देखो। दस जगह से गठा हुआ फिड़क जूता घसीटते फिर रहे हो ! आँखें गढ़े में धँस गई हैं, मुँह काला पड़ गया है। ४५) तनख्वाह मिलती है। सवेरे रोटी उतरते देर नहीं होती कि कोट के बटन लाते-लगाते दफ्तर दौड़ो। वहाँ से मरे-खपे दो मील धूप में चलकर घर चार बजे आये। न तन की सुध न वदन की ! फिर हाँफते-हाँफते ट्यूशन पढ़ाने भागो, रात को बारह-बारह बजे तक दफ्तर के कागजों में जूझते रहो। खून पिला-पिलाकर बहनों को पालो। मैं घर में चार बजे से रात के बाहर तक कोल्हू के बैल की तरह पिसा करूँ, और मरती गिरती इधर से उधर फिरूँ ?—

और तुम्हारी सीधी-साधी बहन किताबों में सिर फोड़ा करें। न जाने किस दफ्तर में जाकर नौकरी करेगी ? तिसपर तुरग यह है कि 'करनी-ना-करतूत और लड़ने को माँजूद'—यह जिंदगी है ? यह तो जान का जंजाल है। भगवान् उठा ले इस धरती से।" इतना कहकर हरदेई दसुक-दसुक कर आँसू बहाने लगी।

हरनारायण से चार गार्ड पर लेटा न गया। वे उठकर कमरे में टहलने लगे। हरदेई फिर बोली—“अब दूसरी को लिये आ रहे हैं—मुर्दा हालत में। निपूते सुसरालवाल भी देखो—भले के ही रहे। बीमार पड़ी, तो यहाँ भेज दी। अब वैद्य-डाक्टरों की हाजिरी बजाना। पसीना बहा-बहाकर कमाओ, और इस तरह उड़ाओ।” इतना कहकर हरदेई पुनः चुप होगई।

हरनारायण बहुत दुखी हो रहे थे। हम नहीं कह सकते, इस दुःख में क्रोध की मात्रा अधिक थी, या लाचारी की, पर कुछ ठहर उन्होंने धीमे स्वर से कहा—

“देखता हूँ, तुम मुझे पागल बनाये बिना न छोड़ोगी।”

“यह तो तुम्हारी करनी का फल है।”

“आँखों देख साँप किससे निगला जाता है ? नारायणों को न ले आता, तो करता क्या ? पहिचानी भी नहीं जाती। जब मैं पहुँचा, तो बुखार से बेसुध पड़ी थी, मुँह लाल हो रहा था। इसी दशा में ६ दिन से पड़ी थी। किसी को उसकी सुध न थी, हार कर मैंने डाक्टर बुलाया। वे देखकर बोले—इसे तो दिक् का असर हो गया है। दो दिन तक दवाई दो गई, तब होश में आई। बुखार भी हलका पड़ा। पर खाँसी चैन नहीं लेने देती। बुखार हरदम बना रहता है। जिगर खराब होगया है। तिसपर देखो, मार के मारे कजर नीली पड़ी हुई है। उसे मरी-जीती को पूछनेवाला तो कोई भी नहीं—बोली, न लाता, तो क्या करता ?” यह कहते-कहते उन्होंने अपने आँसू रोके।

इस बार हरदेई का स्त्री-हृदय भी तनिक विचलित हुआ, पर अपनी धुन में तनकर वह बोली—

“अच्छी बात है—तुम उसे सनजीवन घोटकर पिला देना, इस अभागिनी के जीने में अब क्या सुख है ? जब इसका सुहाग ही फूट गया है, तो अब भगवान उसकी मिट्टी मँगवा लें।”

हरनारायण को आँखें जलने लगी। उन्होंने क्रोध से घूरकर स्त्री की ओर देखा, और काँपती आवाज में बोले—“जो तुम्हें वैसी ही अभागिनी बनना पड़े, तो तुम जहर खाकर मर जाना — भला ! सुहाग-फूटी दुनियाँ में रहती थोड़े ही हैं, और न उन पर कोई दया करता है ! संसार में सब तुम-सी सुहागिन भर रहती हैं—क्यों ?

हरदेई तैश में आकर कुछ कहना चाहती थी, कि हरनारायण ने डपटकर कहा—“चुप रहो—बक बक करके मेरा दिमाग मत खपाओ। जरा सोने दो। तीन दिन से कमर नहीं झुकी है। हटो परे हो—कलहनी कहाँ की !”

मानिनी हरदेई अपने पति का यह कटु तिरस्कार न सह सकी। वह वहीं बैठकर दुसुर-दुसुर रोने लगी। हरनारायण भी खाट पर पीठ फेरकर पड़ रहे। क्या जाने, नौद से उनकी कैसी पटी।

— — —

६

इस परिच्छेद में हम संक्षेप से पाठकों को जयनारायण की स्थिति का परिचय देते हैं। जयनारायण की अवस्था ५० वर्ष को पार कर गई थी। जब इनके पढ़ने के दिन थे, तब इनके गाँव में न विद्या का वैसा चमत्कार था, और न पढ़ने का सुभीता ही था। फिर भी इन्होंने किसी तरह से पास के तहसीली स्कूल से

उर्दू-मिडिल पास करके पटवारोगिरी का इम्तहान दिया। दो बार फेल होकर पास हुआ, और ८) पर बहाल हुए। अब उन्हें (१२) मिलते हैं, पर पटवारियों को तो पाठक जानते ही हैं। ऐसी-ऐसी तो बारह तनखाह, महीना खत्म होते कितनी बार जेब में पहुँच जाती हैं। जो हो, पर फिर भी जयनारायण भला मनुष्य और सरल वृत्ति का आदमी था। उसकी बोल-चाल, व्यवहार सब में शराफत और खरापन था। यद्यपि वह पुरानी लकोर का फकीर था, पर एकदम अन्ध-विश्वासी न था। जाति-बिरादरी के प्रवाह में पड़कर सब काम करता अवश्य था, पर मन में तर्क रखता था। बड़ी लड़की के विधवा होजाने पर उसकी इच्छा छोटी लड़की की शादी देर से करने की थी, पर उसकी स्त्री ने हठ करके बिरादरी और धर्म-आदि का भय दिखाकर अपनी बात रखी। अन्त में उसको ब्याह करना ही पड़ा। पर खेद की बात है, कि बेचारे पर सात महीने में ही वज्र टूट पड़ा। इस सदमे से उसे भयङ्कर कष्ट, और आत्म-ग्लानि हुई। उसकी यह कन्या अत्यन्त प्यारी थी, पर आज वह यह चाहने लगा, कि यह अभागिनी मर ही जाय तो अच्छा।

उसकी गृहस्थी जैसी छोटी थी, और जैसा उसे आमदनी का सुधीता था, उससे वैसा कोई कष्ट न था। तिस पर वह हर बात में ध्यानपूर्वक खर्च करता था, इससे उसे पैसे का कभी अभाव न होता था। इसके सिवा (४५) रु० उसका लड़का तलब पाता था। इस प्रकार उन्हें वैसा अर्थ-कष्ट न था, पर दोनों कन्याओं को जन्म-भर खिलाने की बात याद करके कभी-कभी वह अत्यन्त चंचल हो उठता था। जमाने का रंग-ढंग देखकर और सब तरह की ऊँच-नीच विचारकर वह कुछ उत्तेजित होता, और साहस भी करता, पर भाई-बिरादरी और दूसरे विचार

आते ही शिथिल पड़ जाता था। कभी-कभी वह सोचता था, कि जब तक जिन्दा हूँ, तब तक तो चलेगा, पर मेरी आँखें बन्द होने पर इन अभागिनी कन्याओं का क्या होगा ? यह किसका मुँह तकती फिरेंगी—किस-किस की गुलामी करती फिरेंगी ? ऐसी-ऐसी चिन्ताओं से वह घुलता जाता था !!

जयनारायण के पड़ोस में एक वायू रामचन्द्र रहते थे। वह आर्य-समाज के एक साधारण सदस्य थे। पहले कहीं रेलवे में ५० रु० वेतन पाते थे। पर उसे छोड़कर उन्होंने अब कपड़े की दूकान कर ली है। यह बड़े शिष्ट, सज्जन और मिलनसार थे—जयनारायण से इसकी और भी घनिष्टता थी। एक दिन जयनारायण बैठे-बैठे अपने दुर्भाग्य की चिन्ता कर रहे थे। इतने में रामचन्द्र ने बैठक में प्रवेश करते-करते कहा—“नमस्ते दीवानजी !”

जयनारायण ने मुँह उठाकर देखा, और उठकर कहा—“आइये-आइये।”

“हाजिर हुआ”—कहकर वह पास ही बैठ गए। थोड़ी देर इधर-उधर की बात-चीत करते-करते रामचन्द्र ने कहा—“नारायणी कैसी है ?”

“अब तो आराम है ! कुछ खाँसी बाकी है, कभी-कभी ज्वर भी हो जाता है, पर बहुत कम।”—इतना कहने के बाद एक ठण्डी साँस लेकर उन्होंने कहा—“निश्चय जानो भाई, वह ऐसा दिन ही क्यों देखती ?” इतना कहकर उन्होंने दाँत निकालकर मुस्कुराने की चेष्टा की, पर चेष्टा व्यर्थ गई। उनकी आँखों में आँसू छलछला ही आए।

रामचन्द्र ने सहानुभूति से उनका हाथ पकड़कर कहा—“दीवानजी ! ऐसा क्यों दिलगीर होते हो ? आप बुजुर्ग आदमी हैं, ईश्वर की जो इच्छा थी, सो होगई, अब तो उसका भूल-

परिशोध जो हो सके, करना चाहिये। इस तरह करने से कैसे बनेगा ?”

“इसका परिशोध ? भाई साहब, जो इसका परिशोध हो सकता, तो प्राण देकर भी करता। पर अब क्या हो सकता है ? सचमुच उसका भाग्य फूट ही गया है। न-जाने पूर्व-जन्म में कैसे-कैसे पाप किये थे ?”

रामचन्द्र उत्तेजित होकर बोले—“दीवानजो ! कैसे दुःख की बात है, कि आपके मुख से भी ऐसी पोच और रही बातें सुनता हूँ। मनुष्य अपनी कुटेब और अन्ध-विश्वास-द्वारा हानि उठाता है, पर सब दोष विधाता और भाग्य को देता है। यह कैसे अन्धेर की बात है ! आँख लग गई, रेश छूट गई—बस, किस्मत में यही लिखा था। किसो की गाँठ कतर ली, पकड़े गये—यह भी केस्मत में लिखा था। यह केवल कायरों, डरपोकों और मूर्खों का उत्तर है। कोई किसी का खून करके कहे कि इसका भरना यों-ही लिखा था, तो क्या सरकार छोड़ देगी ? इसी से क्या उसका पिण्ड छूट जायगा ? खूब ! ‘आप बदकारी करें और नाम लें अल्लाह का ! एक ही बदजात है, बदजात आदमजात की !!’—इतना कहकर रामचन्द्र चुप हो, गये। उनके नेत्रों से उद्वेग टपका पड़ता था। जयनारायण कठ-पुतली की तरह उनकी बातें सुन रहे थे। मानों उनका अपराध मूर्तिमान होकर उनके सामने खड़ा हो गया था।

रामचन्द्र फिर कहने लगे—“विचार तो कीजिए—आपने ही अपनी पुत्री को पैदा किया, आपने ही उसे पाल-पोसकर बड़ा किया, वह सुकुमारी आप ही के हृदय से प्यार से लगी रही। आप ही ने उसकी बचपन में शादी करदी—इसलिए कि ऐसा न करने से कुछ लोग आपकी ओर उँगली उठाते, ताना मारते। अतएव आपने अपनी पुत्री का भला न देखकर इस इतनी-सी

बात के लिये उसे अयोग्य प्रवस्था में ब्याह दिया। घटनावश वह कुछ दिनों में विधवा हो गई। अब वह अच्छे-अच्छे वस्त्र नहीं पहन सकती, शादियों में शरीक नहीं हो सकती, जहाँ और स्त्रियाँ खिलखिलाकर हँसती हैं, नाच-रँग में आनन्द मनाती हैं, आपकी प्यारी पुत्री उसी घर के सड़े कोने में पड़ी सिसक-सिसक-कर रोती है। वह स्वयं रोना नहीं चाहती, उसके ये आँसू प्यारे पति के शोक में नहीं हैं, क्योंकि वह क्या पदार्थ है, यह तो उसे अभी ज्ञात ही नहीं है। उसके मन में रह-रहकर अन्य लड़कियों के साथ मिलकर खेलने की, दिल खोलकर हँसने की, चिड़ियों की तरह इधर-उधर फुदकने की इच्छा होती है, पर ऐसा करने से आप ही उसे रोकते हैं, कि लोग आप पर हँसेंगे। आपही उसे रुलाते हैं, और आप ही उसे जन्म-भर रुलावेंगे।”

इतना कहते-कहते रामचन्द्र बहुत उत्तेजित हो उठे थे। उन्होंने देखा—जयनारायण आँखें फाड़-फाड़कर मुँह पसारे उनकी ओर देख रहे हैं। उनके नेत्रों में भयङ्करता छा रही है ?

रामचन्द्र फिर कहने लगे—“हमारे घर में—हम हिन्दुओं के घर में, नित्य एक-न-एक त्योहार आया करता है। हमारी स्त्री और माता तक पैरों में मेहँदी लगावें, उबटन मले, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहने, और हमारी पुत्री देख-देखकर तरसा करे। उसे जन्म भर इसी तरह रहना चाहिये। वह कभी अपने पति का दर्शन नहीं कर सकेगी ! वह कभी अपने प्यारे पुत्र का मुख-चुम्बन नहीं कर सकेगी ! उफ ! बाल्यावस्था से वृद्धावस्था तक उसे उसी हीन अवस्था में रहना होगा। नित्य रोना, तिरस्कार, धमकी, अपमान सहना, साथ ही कामदेव के कठिन बाणों को सहकर युवावस्था ही क्यों—सारा जीवन व्यतीत करना है। यह सब उसके भाग्य में लिखा है ? उसे इस तरह क्यों रहना

ज्ञाता है ? इसलिये कि आप उसे इस तरह रहने पर मजबूर करते-जबर्दस्ती करते हैं, अत्याचार करते हैं ।” इतना कहते-कहते मचन्द्र आपसे बाहर होगये ? कुछ ठहरकर उन्होंने सिर उठाकर देखा, तो जयनारायण दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर फूट-फूट कर बालकों की तरह रो रहे थे । दुःख से मानों उनका कलेजा हृ को आने लगा था ।

उनको शोचनीय दशा में देख कर भी बाबू रामचन्द्र की तेजना कम न हुई । उन्होंने उस कातर व्यक्ति की ओर आलाप्य नेत्रों से देखते हुए कहा—“कहिये तो सही, इन सब श्लाघों में पूर्व-जन्म का दोष है, या आपका ?—और अब भी उनकी दशा बदल देना आपके हाथमें है, या भाग्य के ?—उसके धाता, उसकी किस्मत के लिखनेवाले आप हैं, या और कोई ?”

जयनारायण से न रहा गया । उन्होंने पागलों की तरह ललाकर कहा—“मैं—सचमुच मैं ही हूँ । मैं पिशाचों का पिशाच, और कसाइयों से भी जालिम हूँ । अपनी प्यारी बेटी को मैंने ही मारा है । आह !”—इतना कहकर वह फिर रोने लगे ।

रामचन्द्र फिर कहने लगे—“यदि आपको उसकी घोर पत्ति में सहानुभूति प्रकट करनी है, उसकी कष्ट की बेड़ी टटनी है, तो फिर-से उसका विवाह कर डालिए, और खेए, उसके पूर्व-जन्म के संस्कार भाग जाते हैं, और आपको स्वतन्त्रता से काम करने का अवसर मिल जाता है । यदि आप अपनी पुत्री का विवाह बचपन में न करके, जवान होने पर करते, तो फिर देखते कि पुरोहित और नाई की अटकल, और ज्योतिषियों की कुण्डली और भाग्य का फेर ठीक बैठता, या आपका कर्म !”

जयनारायण ने अत्यन्त कातर दृष्टि से उनकी ओर देखते

हुए कहा—“यह सब क्या सम्भव है ? रामचन्द्र बाबू ! मुझ-अकेले की जान पर बीतेगी, तो नर्क की भयानक आग में भी कूद पड़ूँगा, पर इन सर्वनाशी हत्यारे जाति-विघ्नों को तो आप देखते ही हैं ! बताओ—मेरे बाल-बच्चों का कहीं ठिकाना रहेगा ! हाय, मैं कैसा अभाग्य हूँ !”

रामचन्द्र ने तनिक तेज नजर से उनकी ओर देख कर कहा—“तो फिर यों कहिए, ऐसा करने से आपकी पुत्री को भाग्य नहीं रोकता—आपकी कायरता, आपका डर आपकी खुदगर्जी—रोकती है । इसीलिये आप सब दोष कन्या के भाग्य पर ही लगाना ठीक समझते हैं । बस, एक ही बिना सिर-पैर की बात—‘जो लिखा है, वह हुए बिना नहीं रहेगा ।’—यह कह देने से ही किस्सा खतम होजाता है, भँफट मिट जाते हैं ।”

जयनारायण अत्यन्त करुण-भाव से अपना ऐसा कटु तिरस्कार सुन रहे थे । रह-रहकर उनके मन में घोर आत्म-ग्लानि उत्पन्न हो रही थी, और उनका मुख रामचन्द्र के सामने न उठता था ।

रामचन्द्र फिर कहने लगे—“अच्छा, समझ लीजिए, आप छत से गिर गए, खून बह निकला । चोट के सारे बुराई कष्ट हुआ । इसे आपकी पुत्री देख रही है, पर वह यह कहकर बैठी रही कि पिताजी के भाग्य में गिरना लिखा था, और चोट खाना बदा था, प्रस्तु, पड़ा रहने दो—यह उनके पूर्व-जन्म के संस्कार का फल है, जो बदा है—भोग लेने दो । कहिए, यह बात आपको कितनी अच्छी लगेगी ? यह कष्ट तो आपका एकाध दिन में दूर हो जावेगा, पर पुत्री को जीवन-पर्यन्त दुःख भोगने के लिये पड़े रहने देना कितना बुरा है ? किन्तु पुत्रियाँ रोज गिरती हैं, मरती हैं, तड़पती हैं, बिलबिलाती हैं, और आप अपनी बड़ी-बड़ी दोनों आँखें खोलकर देखते हैं, कभी रो भी लेते हैं, पर ऐसा

प्रवन्ध नहीं करते, कि उनका गिरना बन्द हो, उनके कलेजे के जख्म भर जायँ ! क्या यही हिन्दुओं का दया-धर्म है ? जिन हिन्दुओं को अपनी दया पर बड़ा अभिमान है, सच पूछा, तो उनके बराबर संसार में कोई कसाई और क्रूर नहीं है । छोटे-छोटे भुनगे, चीटी, मकोड़े, कौवे, कुत्ते-आदि पशुओं के लिये तो तुम्हारे पास दया का भण्डार भर रहा है, पर अपनी सन्तान पर ये जुल्म, कि उनको उठती जवानी पर कुछ भी तरस न खाकर उन्हें ऐसी बुरी मौत मार रहे हो, कि कसाई उतनी बुरी तरह गाय को न मारेगा । कसाई गाय को एक ही बार में साफ कर देता है, वह बेचारी दुःख से तो छूट जाती है, पर तुम तो एक वर्ष की दूध-पीती कन्याओं को विधवा बनाकर पापों की नदी बहा रहे हो—उन्हें रोम-रोम में विष पैदा करनेवाले दुःख-सागर में ढकेलकर, जीते जी दुःखाग्नि में डालकर भून रहे हो, उनकी तड़पन को देखकर पुण्य की उत्पत्ति समझ रहे हो ! इतना होने पर भी तुम्हारा पत्थर का कलेजा नहीं पिघलता—तुम्हारी छाती पर साँप नहीं लोट जाता ! आज दिन २॥ करोड़ विधवायें तुम्हारी छाती पर मूँग दल रही हैं । इनमें से कोई चुपचाप सदा आह भरकर भारत को रसातल पहुँचा रही है, कोई कहार, धोंवर, कसाई के साथ मुँह काला करके कुल-वंश की नाक कटा रही हैं, फिर भी हिन्दू—पवित्र हिन्दू !—ऋषि-सन्तान कहलाने की इच्छा रखते हैं । यदि अब भी हमें अपने रक्त-वंश का अभिमान है, तो शर्म है—लाख-लाख शर्म है !”

इतना कहते-कहते रामचन्द्र ने ज्वलन्त नेत्रों से जयनारायण की ओर देखा । वे शून्य दृष्टि से उन्हें देख रहे थे ! रामचन्द्र फिर बोले:—

“अपने बुजुर्गों को तो देखो, जो दीन-दुखियों का आर्तनाद

सुनकर भोजन-भजन छोड़ देते थे, उस दुखी-जन का दुःख दूर करके जन-पान करते थे, या जान खो देते थे। हाय ! उनकी सन्तान आज ऐसी अधर्मी होगयी—करोड़ों विधवाओं की विल-विलाहट और हाहाकार सुनकर भी उन्हें सुख की नींद आती है ? जिनकी छाती पर शिला रखी रहे—आठों-पहर जवान विधवा कन्या चुपचाप कलेजे का खून पिया करे, उसकी आत्मा फूट-फूटकर रोती रहे, और इन धर्म-धुरियों के हलक में मजे से छत्तीसों व्यञ्जन सरक जायँ ! पहचानने से प्रथम ही जिसका एक-मात्र जीवन का आधार जगत् से उठ जाय—वह गरीब, अभागिनी तुम्हारे ही पाप से, अंधेरी दुनियाँ में चक्की पीस-पीस-कर, जिसे कुत्ते भी न खायँ—ऐसे सूखे टुकड़े खाकर दिन काटे ?—सूअर-भी-न-रहें—ऐसी सड़ी-मैली कोठरी में रहें ? बीमार पड़ने पर, असहाय, भूखी-प्यासी तड़प-तड़पकर मर जायँ ?—पर, तुम्हारे पत्थर-हृदय टस-से-मस न हों ! उनके लिये तुम्हारे हृदय में रस्ती-भर सहानुभूति नहीं रही ? अधर्मियों ! मुसल-मान, इसाई और कसाई भी जिनपर तरस खाते हैं, पत्थर-हृदय जल्लाद को भी जिनपर करुणा हो आती है—उन दुखि-याओं पर तुम दयालुओं (दया के अभिमानियों) को तनिक भी दया नहीं आती ? जो लोग अपने को अहिंसा-धर्मेधारी समझते रहे हैं, जो लोग दयावान् ऋषि-मुनियों की सन्तान हैं, उन्हीं की दया का यह दृश्य है। यह उन्हीं की सभ्यता का नमूना है क्या यह सब घोर पाप नहीं है ? ऐसे अत्याचार क्या दूसरी जाति में बता सकते हैं ? कसाई को सब से अधिक क्रूर, निर्दयी कहकर तुम घृणा करते हो, गाली देते हो, धिक्कारते हो, और उनका मुँह नहीं देखना चाहते। पर सब जानो वह हम से अधिक घृणिन नहीं हैं। बिना मींगों की गाय चर—अपनी

बहन-बेटियों पर, उनकी छुरी कदापि नहीं उठती ! हिंसक पशु-पक्षी, सिंह, भेड़िया-ग्रादि भी अपने स्त्री-बच्चों पर दया करते हैं। स्त्रियों को सब ने अवध्य माना है। जङ्गली जाति भी स्त्री को नहीं सताती, पर हिन्दू-जाति के सपूत उन्हीं का गला घोटकर स्वर्ग का द्वार खोल रहे हैं। स्त्री: स्त्री: !” इतना कहकर रामचन्द्र चुप हो रहे। उत्तेजना के मारे उनका सारा शरीर काँप रहा था। ललाट पर पसीना चुकचुका आया था। आँखों से चिनगारियाँ निकल रही थीं। जयनारायण चुपचाप जमीन पर नजर गाड़े बैठे थे।

दोनों चुप, किसी की भी जीभ नहीं खुलती थी। कुछ देर ठहरकर रामचन्द्र बोले—“अच्छा, अब चलता हूँ। मैंने ऐसी कड़ी-कड़ी बातें कहकर आपका जी दुखाया है, इसके लिये क्षमा माँगता हूँ, पर याद रहे, कि क्रोध या द्वेषवश मैंने यह नहीं कहा है। आत्मा का दुःख जब नहीं सहा गया, तो कह बैठा। अन्ततः आप मेरे आत्मीय ही तो हैं; और जब आप पर ऐसी आपत्ति दूटी है, तो मानो मुझी पर दूटी है।”

जयनारायण के आँसू बह चले ! अवरुद्ध कण्ठ से बोले, —“आप इससे भी कड़ी-कड़ी सुनाइये, जब पाप मैंने किया है, तो बुरा क्यों मानूँगा ? कृपया जल्दी-जल्दी दर्शन दिया करें।”

रामचन्द्र ‘नमस्ते’ कहकर चल दिये। एकान्त पाकर जयनारायण फर्श पर गिरकर बालकों की तरह रोने लगे।

१०

जयनारायण की स्त्री बड़ी देर से रसोई के लिये बैठी थी। वह अत्यन्त उदास और दुखी चित्त से वहाँ पहुँचे। देर के कारण गृहिणी झुँझलाई बैठी थी। इससे उसने कुछ कठोर बात कहने

को स्वामी की ओर सिर उठाया ही था, कि मुख पर दृष्टि पड़ते ही समझ गई, कि आज कुछ हुआ है। आदमी चाहे लाख छिपाये, पर स्त्री और माता से कुछ छिपा नहीं रहता। जयनारायण की स्त्री हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई। उसने चौके से बाहर आकर कहा—

“क्यों, क्या हुआ ?”

“कहाँ ? कुछ भी तो नहीं !”

“तो ऐसे क्यों हो रहे हो ?”

“कुछ नहीं।”—कहकर जयनारायण ने बात टालने की गरज से कहा—“रसोई तैयार है तो लाओ परोसो।”

गृहिणी फिर चौके में गई। थाली परोसकर सामने रखदी, और पंखा लेकर स्वामी को हवा करने लगी। गृहिणी ने देखा—आज उसके स्वामी अत्यन्त खिन्न हैं। यह भोजन केवल शिष्टाचार के लिये कर रहे हैं। परन्तु उसने कुछ पूछना इसलिये उचित न समझा, कि भोजन के समय दुःख की बात जहाँ तक याद न आये, वहाँ तक अच्छा है। जयनारायण का भोजन भी शीघ्र समाप्त हो गया। वह एकदम थाली छोड़, उठ खड़े हुए।

अब गृहिणी से न रहा गया। उसने अत्यन्त करुणा से स्वामी की ओर ताकते हुए कहा—“बस, खा चुके ?”

“हाँ, जी अच्छा नहीं है; खाया नहीं जाता। तुम जरा चारपाई बिछादो, मैं तनिक सोऊँगा।”

गृहिणी चुपचाप भीतर कोठरी में चली गई। चारपाई बिछाकर ऊपर से दरी बिछा दी। जयनारायण ने बैठकर कहा—“तुम खा-पोंकर निबटो, मैं तब तक सो लूँ।”

गृहिणी एकटक स्वामी की ओर देख रही थी। उसने कहा—“इस तरह कब तक काम चलेगा—कोई एक दिन की तो बात है

ही नहीं ! मर्द होकर ऐसा करते हो ? मुझे तो देखो, एक बूँद आँसू नहीं गिराया ।”

इतना कहकर गृहिणी पीछे की ओर देखने लगी । उसकी बात को झूठ साबित करने के लिये तभी टप-टप कई बूँद आँसू उसके नेत्रों से गिर पड़े । उसने द्वार की तरफ देखने का बहाना करके उन्हें छिपाना चाहा, पर जयनारायण ने उन्हें देखकर भी न देखा ।

उन्होंने धीरे भाव से कहा—“जाओ, खा-पीकर निपटो । दो बजने को हैं ।” गृहिणी चारपाई के पैताने स्वामी के चरणों को गोद में लेकर बैठ गई । जयनारायण ने बार-बार उससे जाने के लिए कहा, पर वह बैठी ही रही । धीरे-धीरे उसका मुँह भारी हो आया मानो कोई भारी आँधी-तूफान आने को हो । फिर तुरन्त ही उसकी आँखें भर आईं । जयनारायण ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—“यह क्या पागलपन है ? तुम तो अभी कहती थीं, कि मैं कभी आँसू नहीं गिराती, बड़ी कच्ची हो !” इतना कह कर वह जरा हँस दिये । पर जिसने वह हँसी देखी हो, वही उस की भयङ्करता का पता लगा सकता है । गृहिणी पर उसका बुरा ही प्रभाव पड़ा । वह फूट-फूटकर रो उठी, और खूब रोई । शान्त होने पर अत्यन्त अवरुद्ध कण्ठ से उसने कहा—“मैं रोऊँ न, तो क्या करूँ ? मुझे मौत भी तो नहीं आती ! दो-दो बेटियों के भाग्य फूटे अलग, और अब मेरे फूटने बाकी हैं । दिन-भर उदासी, सोच-फिक्र,—न खाना, न पीना । शरीर की यह दशा कर रक्खी है ! कब तक इस तरह चलेगा ? इन अभागियों को तुम्हारा ही सहारा है । तुम्हीं जब शरीर को, शोक कर-करके मिट कर रहे हो, तो बस, अन्धे की लकड़ी भी गई ।” इतना कहकर गृहिणी फिर रोने लगी ।

जयनारायण ने दुखी होकर, टूटती आवाज से कहा—
 “आखिर मैं क्या सदा के लिये पट्टा लिखा लाया हूँ ? अन्त में
 मुझे पाप का फल भोगने को नर्क का कीड़ा बनना ही पड़ेगा ।
 अब मरने-जीने में क्या है ! आज मरा तो, कल मरा तो”

“तुमने कौन सा-पाप किया है ?”

जयनारायण स्त्री की ओर आँखें फाड़कर देखने लगा । उसने
 कहा—“क्या ? क्या मैंने कोई पाप ही नहीं किया है ? दो-दो
 निरपराध बालिकाओं का सुहाग फोड़ चुका हूँ । इनसे सारे
 संसार के मुख छीन लिये हैं ।—और तुम कहती हो; कौन-सा
 पाप किया है ?”

“सुहाग क्या तुमने फोड़ा है ? यह सब तो भगवान् की
 मर्जी है ।”

स्त्री की बात काटकर जयनारायण बोले—“चुप रहो !
 भगवान् को दोष मत दो ? भगवान् क्या राक्षस हैं, या हमारे
 शत्रु हैं ? वह तो संसार के स्वामी हैं, पिता हैं । चींटी मे हाथी
 तक को वही सब-कुछ देते हैं । वह करुणा के धाम क्या निर-
 पराध-निरीह बालिकाओं पर ऐसा वज्रपात करेंगे ? ऐसा
 साहस तो नर्क के कीड़े से भी अधम, मुझ-जैसे पापी से ही हो
 सकता है ।” इतना कहकर उत्तजना के मारे जयनारायण हाँफते-
 हाँफते कमरे में टहलने लगे ।

उनकी स्त्री उन्हें देखकर डर गयी थी—उसने भयभीत होकर
 कहा—“बिना मतलब क्यों अपने-आपको गालियाँ दे रहे हो ?
 तुम क्या उसे जहर देकर मारने गये थे ? अच्छा, सुन्दर, तन्दु-
 रुस्त लड़का देखकर ही तो ब्याह किया था । भग.....”

बात काटकर जयनारायण बोले—“बस करो, फिर भग-
 वान् का नाम ! यह सत्यानाशी ब्याह ही क्या हमारा कम

पाप है ? इस ब्याह को करके ही घोर पाप की टोकरी सिर पर लादी है ।”

अब गृहिणी ने माथा ठोककर कहा—“हाय तकदीर ! इनकी बात सुनो ! अपने बेटे-बेटियों का ब्याह करना पाप है, तो सारा संसार ब्याह करके पाप कमा रहा है ?”

जयनारायण क्रोधित होकर बोले—“अरी कम समझ ! सारे संसार की तुझे खबर ही क्या है ! संसार ऐसा मूर्ख नहीं है । ब्याह तो सभी करते हैं, पर ब्याह वक्त पर करते हैं—दुधमुहीं लड़कियों के गले में फाँसी नहीं डाल देते ।”

स्त्री ने अचरज में आकर पूछा—“ब्याह का समय और कौन-सा होता है ?”

“जवान उम्र में,—जब लड़के-लड़की घर-गृहस्थी के योग्य हो जायँ, तभी ब्याह करना चाहिये ।”

स्त्री ने असन्तोष से मुँह बनाकर कहा—“जवान उम्र में विवाह करके विधवा नहीं होतीं ?”

“होती क्यों नहीं ? कम होती हैं ।”

“तो वचपन का विवाह बना देता है, क्यों ?”

जयनारायण ने ठण्डे होकर समझाते हुए कहा—“देखो, जब पेड़ छोटा होता है, तो बड़े यत्न से उसकी रक्षा करनी पड़ती है, वाढ़ लगानी पड़ती है । जरा-सी आँधी, पानी, बरफ के कारण ही वह नष्ट हो जाता है । उसके बढ़ने का कुछ भी भरोसा नहीं होता । अन्त में जब बढ़कर दृढ़ हो जाता है, उसके सब अङ्ग पुष्ट हो जाते हैं—तो बड़ी-बड़ी आँधी के भोंकों में भी नहीं गिरता । यही हाल आदमी का भी है । जब बालक छोटा होता है, तो जरा-सी सर्दी-गर्मी-हवा का उसपर असर होता है,—अनेक रोग पीछे लगे रहते हैं, पर ज्यों-ज्यों बड़ा होने लगता है—

उसके सब अङ्ग सबल हो जाते हैं; और वह कम बीमार पड़ते हैं। इसी से कहता हूँ, कि बाल-विवाह से विधवायें अधिक होती हैं, और यह तो साफ बात है कि मैं जो 'नरो' का ब्याह ही अभी न करता तो यह विधवा कैसे होती?"

स्त्री ने आँसू पोंछकर कहा—“अब तो साँप चला गया—लकीर पीटने में क्या है ? जो हो गया सो होगया। इन बातों में क्या धरा है ? भगवान की यही मर्जी थी।”

जयनारायण ने कहा—“फिर भगवान् को दोष दिया ? अब भी हो सकता है,—यह दुख अब भी दूर हो सकता है। इसका भी उपाय है।”

स्त्री ने अत्यन्त विस्मय और उत्कण्ठा से कहा—“क्या उपाय है ? नरो का दुख दूर हो सकता है—कैसे हो सकता है ?”

जयनारायण ने स्त्री के मुख पर सहसा नेत्र गड़ाकर कहा—“उसका फिर विवाह कर दें ?”

अब तो गृहिणी उठ खड़ी हुई, उसने कहा—“क्या कहा ? ब्राह्मण की बेटी का पुनर्विवाह ? तुम्हारे बुद्धि तो नहीं मारी गई है ? वाह, अच्छी युक्ति बैठाई है !”

“क्यों, बात तो कहो—हर्ज ही क्या है ? एकदम नाराज क्यों होती हो ?”

“चलो हटो, पत्थर पड़े ऐसी बातों पर।”

“कुछ वजह भी हो, या यों-ही ?”

“सात-सात जन्म डूब जायेंगे। नर्क में भी जगह न मिलेगी। ऐसी अनहोनी बात आज तक संसार में हुई है ?”

जयनारायण ने भों सिकोड़कर कहा—“तुम्हें खबर तो नहीं अपने घर की भी, और संसार की बात करती हो। इसमें हर्ज ही क्या है ?—और अनहोनी ही क्या है ?”

“बिरादरी में नाक कट जायगी।”

“कट जाय, मेरी नरो को सुख तो मिलेगा।”

“नरो को सुख बढ़ा होता, तो एक हो ब्याह में होता।”

“अच्छा, अब दूसरा ब्याह करके देखते हैं कि होता है या नहीं। जो उपाय हमारे वश का है—उसके रहते वह क्यों कष्ट भोगे ?”

स्त्री ने बिगड़कर कहा—“आज तुम्हें हो क्या गया है, जो बार-बार ऐसी बातों को कहते हो ? कहीं भाँग तो नहीं पी आये हो ?”

“नहीं, मैं बिलकुल होश में हूँ। तुम यह बताओ, कि तुम्हारी लड़की जन्म-भर दुःख भोगे यह अच्छा है—या एक बार उसे फिर सुखी देखें, यह अच्छा है ?”

“अपनी सन्तान का सुख सभी चाहते हैं। पर बात वही की जाती है, जो करने की होती है।

“तो यह बात करने की नहीं है ?”

“नीच कुजातों में भी ऐसा होता नहीं दीखता ?”

“क्यों, अब तो बड़ी-जात वालों में भी होता है—तुमने क्या वसन्तपुर वालों का हाल नहीं सुना ? और आर्य्य-समाज तो इसका प्रचारक ही है ?”

“आग लगे इस आर्य्य-समाज में और भाड़ में जाँय, वह वसन्तपुर वाले ! मरे मेरे द्वार पर आवें, तो भाड़ से खबर लूँ—

“तिरिया, तेल, हमीर, हठ चढ़े न दूजी बार।”

जयनारायण ने देखा, कि मामला असाध्य है। वह किसी तरह अपनी स्त्री को न समझा सके। निराश होकर करवट बदल सोने का बहाना कर, पड़ रहे। थोड़ी देर बाद स्त्री बाहर निकल गई ! उस दिन उसका उपवास रहा।

जयनारायण का पितृ हृदय अपनी बीमार पुत्री को देखने के लिये मचल उठा ।

जिस समय जयनारायण उसकी कोठरी में बुसा, तब नारायणी सो रही थी । वह चुपचाप पुत्री का मुँह निहारने लगा । देखते-देखते उसका सिर घूमने लगा, आँखें धुँधली हो गईं, और उससे खड़ा न रहा गया । वह वहीं चारपाइ की पट्टी पर बैठ गया ।

वह छोटी-सी मासूम बच्ची कैसी हो गई थी ! बाल बिखरे पड़े हैं, मुँह पीला पड़ गया है । आँखें माथे में घँस गई हैं, गालों की हड्डियाँ निकल आई हैं, और पसलियों की हड्डी-हड्डी चमक रही है । जयनारायण ने एक ठण्डी साँस के साथ दो बूँद आँसू गिराये । फिर उसने कन्या के माथे पर हाथ रक्खा । देखा, वह आग की तरह तप रहा है । स्पर्श होते ही कन्या जाग उठी, और एक बार पिता को गौर से देखते ही कुछ कहने को मुँह खोला ही था कि खाँसी के मारे छटपटाने लगी । खाँसी, दुर्बल रोगी, और तीव्र-ज्वर—यह सब एक शरीर में जिसने देखा है, वही उस छटपटाहट की वेदना का अनुमान कर सकता है । जयनारायण कातर भाव से पुत्री को गोद में ले बैठे । अभी तक खाँसी उसे दम नहीं लेने देती थी । बड़ी देर में थोड़ा कफ निकला, और वह थककर मूर्च्छित-सी होकर पिता की गोद में गिर पड़ी । उसका सिर दुलक गया ।

कुछ देर में दम लेकर उसने हाँफते-हाँफते कहा—“बाबूजी, मैं मरी !” यह कहकर एक कातर दृष्टि से वह पिता को देखने लगी । जयनारायण ने कठिनता से उमड़ते हुए हृदय को

रोककर दुलार से कहा—“कोई चिन्ता नहीं बेटी ! बड़ी जल्दी आराम हो जायगा ।”

रोगिणी ने कुछ नहीं कहा—वह धीरे-धीरे श्वास ले रही थी । बोलना चाहा पर खाँसी के डर से बोली नहीं । जयनारायण ने उसे गोद में सुलाकर कहा—“कब से तुम्हें बीमारी हुई ?”

“दशहरे के दिन से खाट पर पड़ी हूँ ।”

“दशहरे से ? और किसी हकीम-डॉक्टर को नहीं दिखाया ?”

“कौन दिखाता ?” कहकर बालिका की आँखों में जाने किस दुख को याद करके पानी छलछला आया ।

कुछ ठहरकर जयनारायण ने क्रोध से कहा—“क्यों—क्या सब मर गये थे ? घर में कोई नहीं था ?” नारायणी चुप रही ।

कुछ ठहरकर जयनारायण—बोले—“और तैने मुझे भी अपनी खैर-खबर की कोई चिट्ठी न भेजी ?”

नारायणी चुप रह ही । जयनारायण ने कहा—“बोल, चुप क्यों है ? तूने मुझे भी अपनी खबर नहीं भेजी ?”

नारायणी चुप रही—पर उसकी आँखों ने उत्तर देना प्रारम्भ कर दिया । जो उनमें पानी छलछला आया था, वह वेग से बह चला । उसकी हिचकियाँ बँध गई । जितना ही वह अपनी व्यथा छिपाना चाहती थी, उतनी ही आँखें उमड़ी पड़ती थीं । रोते-रोते नारायणी अधमरी होगई ।

अन्त में, दम लेकर वह दुधमुही बालिका अपनी ससुराल की दित्त-चर्या यों सुनाने लगी—

“जब तुम वहाँ से चल आये, तो सब ने ताँसना शुरू कर दिया । जेठ-जिठानो भी, जो अलग हो गये थे, फिर आकर शामिल रहने लगे । वे सब बात-बात में मुझे गाली देने, मारने और दुःख देने लगे । चाचाजी (श्वसुर) ने तो मेरे हाथ का अन्न-

जल त्याग दिया। जब मैं पीने का पानी लेकर जाती, तो सैकड़ों गाली सुनाते, 'डायन', 'अभागिनी' बताते और लात मारकर गिलास फेंक देते। अन्त में मैंने उनके सामने जाना ही छोड़ दिया। रसोई में घुसने कोई न देता था। सब के खा-पी चुकने पर दो-तीन बजे रूखी-सूखी, जो मिलती—खाती। सब लोग खा-पीकर चौका छोड़ जाते थे। मैं भीतर जाकर जो-कुछ बचा-खुचा रहता, खाकर पानी पी लेती थी। कोई पूछता भी नहीं, था कि तू भूखी है, या प्यासी। जेठ, जेठानी सदा तुम्हें गाली दिया करते—फि ब्याह में खाक दिया ! यह साँपन अच्छी ब्याह कर लाये !—आदि। चाहे जी अच्छा हो या न हो, रात को बारह बजे तक चौका-वासन मुझ-ही को करना पड़ता था। सर्दी में काँपती जाती थी, पर कोई पूछता भी नहीं था। जिठानी सबेरे आकर जा जाती, और आप सो जाती। अन्त में खाट पर गिर गई, इस पर भी जिठानी ने मकर-फरेब बताया, और बोली—'जैसे बने, काम करना ही होगा, तेरा यह बहाना एक न सुना जायगा। चल पानी भर ला।' मैं पानी भरने गई, तो घड़ा लेकर गिर पड़ी। कई दिन से कुछ खाया न था, करती क्या ? पर सास ने रस्सी लेकर ऐसी मार लगाई, कि मैं अधमरी हो गई। उसी दिन जोर का बुखार चढ़ा, कई दिन में होश आया। मालती कहती थी, कि तू बाई में बकती थी। ये सब तो मुझे मरा समझते थे। फिर तभी से मन्द-मन्द ज्वर रहने लगा। खाँसी भी हो गई। बाजरे को रोटी खानी पड़ती थी, जिससे दस्त शुरू होगये.....।"

नारायणी और कुछ कहना चाहती थी, कि जयनारायण ने कहा—“बस-बस—चुप रह, अब नहीं सुना जाता।”

सुनते-सुनते वे पागल-से हो गये। अन्त में उनसे बैठा न रहा

गया । वे उठकर कमरे में टहलने लग गये । कुछ देर में एक लम्बी साँस ली । फिर बेटी के पास जाकर कहा—“अच्छा बेटा, कोई चिन्ता नहीं, अब तू जल्दी ही अच्छी हो जायगी ।”

नारायणी ने क्षणिक पिता की ओर ताककर कहा—“बाबा अब तुम मुझे वहाँ तो न भेजोगे ?”

जयनारायण ने देखा—बालिका आतङ्क से काँप रही है । उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से कहा—“ना-ना, बेटी ! उन चाण्डालों से हमारा क्या काम ?”

“वे कहते थे कि वहाँ जाकर जो हमारी चुगली खाई तो वापस आने पर जीता न छोड़ेंगे । बाबा ! उनसे तुम कुछ कहना नहीं, नहीं तो मैं जीती न बचूँगी ।”

जयनारायण बिलखकर रो उठे, बड़ी कठिनता से बोले—
“मेरी बच्ची ! जब तक मैं जीता हूँ, तुम्हें उनसे डरने की जरूरत नहीं है । उन पापियों को द्वार पर भी न फटकने दूँगा । नीच, बेईमान, पाजी कहीं-के ! मेरी लड़की को जानवर समझ रखा है ! अपने पालतू पशु पर भी कोई ऐसा जुल्म नहीं करता । पर किससे कहूँ, यह सब मेरा ही तो पाप है । संसार के स्वामी का न्याय भी कैसा उल्टा है, बाप का पाप बेटी भोगती है !” जयनारायण अत्यन्त दुःखी होकर कमरे से बाहर निकल गये । बालिका को झपकी आ गई थी, बात करनी पड़ी, इसी से थक गई थी ।

१२

भगवती उदास बैठी, फटी धोती सी रही थी । चम्पा ने उसके काम में बाधा देकर कहा—

“निगोड़ी ! तुम्हें जब देखती हूँ, तभी किसी-न-किसी परपञ्च

में फँसी रहती है, पर आज मैं तुम्हें न छोड़ूंगी, तुम्हें मेरे साथ चलना ही पड़ेगा।”

भगवती ने हँसते-हँसते कहा:—

“क्योंरी ! तू जब आती है, गाली देती आती है। तेरी जवान बड़ी लम्बी हो गई है।”

चम्पा ने मुँह विचका कर कहा—“ओ हो ! पुरखिन को गालियाँ थोड़े ही अच्छी लगेंगी ! अब आते ही बड़ीजी के पाँव पड़ना पड़ेगा—क्यों न !”

भगवती ने उसे धक्का देकर कहा—“चल, परे हो ! तुम्हसे पार कौन पावेगा। तू खूब गाली दिया कर—बलिक दरवाजे के अन्दर घुसते ही बखान-बखानकर ! मर्दानगी तो तेरी तभी !”

चम्पा ने नकली नान से तनकर कहा—“अच्छा, तो तू मेरी मर्दानगी परखने चली है ?”

भगवती ने हँसकर कहा—“भाई मैं हारी। आ, बैठ तो सही। यह आज जो नख-शिख से सिंगार किये आयी है, तो किसपर चढ़ाई है ?”

“चढ़ाई मैं तुझे क्या छोड़ दूँगी। तुम्हें भी आज नख-शिख से सिंगार करना पड़ेगा।”

भगवती ने फिर सरलता से हँसकर कहा—

“मेरा शृङ्गार किसको दिखायेगी भाई ?”

“वहाँ देखनेवाले अनेक होंगे, जिसे जी चाहे दिखाना।”

भगवती ने जरा तुनककर कहा—“चल चुप रह, तू चल कहाँ रही है ?”

“साथ चलकर देख ले।”

“आखिर मालूम भी तो हो।”

“बहू गौना होकर आ रही है।”

“किसकी बहू ?”

“मानसिंह के बेटे की ।”

“ना, मैं तो ना जाऊँगी । तू जा ।”

“चलेगी भी, या मिजाज ही दिखाए जायेगी ?”

“माँ नाराज होंगी ।”

“मैं उनसे पूछे लेती हूँ ।”

“ना, मेरा जी नहीं करता ।”

चम्पा ने एक न सुनी—वह तुरन्त गृहिणी के पास आज्ञा लेने को पहुँची । कार्य बहुत कठिन नहीं था, साधारण तानू करने पर वृद्धा राजी हो गई । चम्पा ने आकर कहा—“चल, अब तेरी माँ ने भी कह दिया ।”

“ना-ना, मैं न जाऊँगी; मेरा जी नहीं करता ।”

“देख भगवती, तू बड़ी जिद्दन हो गई है, मैं तेरे पास फट-कूँगी भी नहीं । मैं तो इतनी दूर से आई हूँ संग लेने, और तू नखरे ही किये जाती है । ऐसी भी क्या औरत !”

अबकी बार चम्पा की द्वा कारगर हुई । उसे नाराज हुई जानकर भगवती उठकर उसके गले से लिपटकर बोली—

“अच्छा-अच्छा, चलती हूँ । तू है बड़ो खराब । बात-बात में नाराज हो जाती है । अच्छा, ठहर, मैं कपड़े पहन लूँ ।”

चम्पा मुँह फुलाये खड़ी रही । उसने सोचा, जो ओपधि इतनी कारगर हुई है, उसे आगम होने के बाद भी थोड़ा और पिलाना चाहिये ।

भगवती ने कपड़े पहनकर तैयार होकर कहा—“चल, चलें ।”

चम्पा ने माथे पर बल डालकर कहा—“चल, मैं तेरे साथ नहीं जाती ।”

भगवती ने कहा—“क्यों—अब क्या हुआ ?”

“हुआ तेरा सिर ! गौनिहाई को देखने इस तरह जाया करते

हैं—जैसे किसी की टहलनी हो ! पास-पड़ोस को सौ लुगाई होंगी—देखेंगी तो क्या कहेंगी ?”

“तो फिर क्या करूँ ?”

“धराऊ जोड़ा निकालकर पहन । गौने के बाद एक बार ही तो पहना था—धर किसलिये रक्खा है, क्या चिता पर पहनेगी ?”

भगवती का मुख उदास हो गया । पर चम्पा का उधर लक्ष्य नहीं था, वह खींचकर उसे भीतर ले गई । उसकी पिटारी खोलकर उसमें से गुलाबी जोड़ा, जो भगवती के गौने का था, निकाल कर उसे पहना दिया, उसका मुँह धोकर बिन्दी और आँखों में काजल लगा दिया । भगवती ने बहुतेरा मना किया, पर उसने एक न सुनी । गोटे की आँगिया पर ओढ़नी उढ़ाकर उसकी चुटकी लेकर कहा—“बता, तेरे गहने कहाँ हैं ?”

“ना ! ना ! गहने मैं नहीं पहनूँगी ।”

“अच्छा-अच्छा—पर बता तो सही ।”

“वे माँ के पास हैं ।”

चम्पा उन्हें लेने गृहिणी के पास दौड़ी ।

गृहिणी ने कहा—“रहने भी दे—गहने क्या करने हैं; यों-ही चली जायगी ।”

चम्पा ने कहा—“बाची, सब लुगाई तो ओढ़े-पहने आयेगाँ, यह ऐसी क्या अच्छी लगेगी ?”

गृहिणी ने कहा—“बावली ! भगवती को गहने क्या शोभा देंगे ?”

पर चम्पा कच्ची बानी की नहीं थी, ऐसी चिपकी कि गहने लेकर ही रही । भगवती ने कितना ही रोका—पर उसने एक-एक करके सब आभूषण पहना दिये । सब-कुछ पहनाकर चम्पा ताली बजाकर हँसी ।

उसने कहा—“भगवती ! मुझे याद है—तेरे गौने के दिन मैंने ही तुझे यह सब पहनाये थे ?”

भगवती और भी उदास हो गई—उसने बात छिपाने की गरज से कहा—“चल चम्पा, अब चलें ।” दोनों आँगन में गयीं । गृहिणी खड़ी थी । उसने देखा—भगवती जारही है । वृद्धा की आँखों में आँसू भर आये । उसने धीरे-से कहा—“क्या आज भगवती का गौना है ?” पर उसके ये शब्द किसी ने सुने नहीं, वायुमण्डल में मिल गये । गृहिणी आँसू पोंछकर घर में घुस गई ।

मानसिंह के घर में स्त्रियों की खूब रेह-पेल थी । भाँति-भाँति के रङ्गीन वस्त्राभरण धारण किये युवतियों का झुण्ड नवेली बहू को अत्यन्त कौतूहल से घेरे खड़ा था । बात कौतूहल की थी । एक सरला अबोध बालिका का आज रस-रहस्य में प्रवेश है । सुखदेई, हरदेई, तारो, गुलाबो, नन्हीं, चुन्नी, बदामो, ऊदी, चमेली, खेड़े की सभी प्रसिद्ध युवतियों का वहाँ जमघट था । गाँव-भरके घर युवती-हीन हो रहे थे । खैर इतनी ही थी कि समय दिन का था, और सब के पतिगण अपने-अपने काम-काज में फँस रहे थे । घर-घर में आज अधेरा है, यह किसी को जान न पड़ा ।

एक ओर कुछ वृद्धा और प्रौढ़ा स्त्रियाँ गृहिणी को घेरे बैठी बहू की तारीफ कर रही थीं । गृहिणी हँस-हँसकर सबका स्वागत-सत्कार और सम्मान कर रही थी ।

ऐसी ही चुहुल-हाट में चम्पा के साथ भगवती ने घर में प्रवेश किया । भगवती अत्यन्त सकुचा रही थी, पर चम्पा उमंग में मदमाती हो रही थी । उसे अपने गौने के दिन की मधुर दुर्दशा भूली नहीं थी । भगवती को भी यह बात याद थी, पर उसकी अवस्था ऐसी नहीं थी, कि वह किसी सुखकर विषय को सोचकर सुखी हो सके । भगवान सुख सब ही को देते हैं, पर

सुखी सब किसी को नहीं कर सकते । अस्तु, जैसा पाठकों को मालूम हो चुका है, चम्पा जरा चटकीली तबियत की थी, सो घर में प्रवेश करते ही उसकी सखी-सहेली उसे घेरकर बहू के पास ले चलीं । कोई उसे चुटकी देने को लपकी, कोई गले में लटकने, किसी ने पकड़कर जरा मसक देने का इरादा किया, पर ज्यों-ही सबकी दृष्टि उसकी संगिनी पर पड़ी, सब सहम कर ठिठक गईं—सब में काना-फूसी होने लगी । छदामो ने गुलाबो को एक ओर ले जाकर कहा—“तुमने कुछ देखा भाभी ?”

“क्या हुआ ?”

“चम्पा की संगिनी देखो ?”

“कौन है ?” गुलाबो ने अनजान की तरह पूछा ।

छदामो ने अनखाकर कहा—“तेरा सिर ! जयनारायण की धी राँड—भगो ?”

अब तो गुलाबो को मानो बिच्छू डँस गया । उसने ठोड़ी पर हाथ रखकर कहा—“ऐं—भगो ! इस ठाठ से ? बस, अब कुछ कसर न रही । राँड का यह ठाठ !”

छदामो ने मुँह बिचकाकर कहा—

“कलयुग है—कलयुग, बहू ! इस कलयुग में किसी को मर-जाद थोड़े ही रही है ।” क्षण-भर में दृश्य बदल गया । बहू के चारों ओर जो जमघट इकट्ठा था—सब भगवती के देखने आ जुटा । सबको यह लालसा हुई, देखें तो कलियुग की राँड का कैसा ठाट-बाट है । भगवती ने देखा, उसके चारों ओर ठठ जुट पड़ा है । सभी उसे देखकर ठोड़ी पर उँगली रखकर अचरज कर रही हैं । कोई आगस में इशारा कर रही है, तो कोई बोली कस रही है । भगवती घबरा उठी । उसने चम्पा से धीरे-से कहा—

“चम्पा, मैं तो घर जाती हूँ, तू यहाँ ठहरी रह !”

चम्पा ने उसका हाथ पकड़कर कहा—“बहू को देखकर हम भी चलेंगे, हमें क्या यहीं घर बसाना है ?”

गृहिणी ने देखा—आँगन में बड़ी भीड़ लग रही है। उधर से सरनी की माँ आ रही थी। उसे देखकर गृहिणी ने कहा—“अरी लक्ष्मी ! यह सब क्या है ?” लक्ष्मी ने हाथ मटकाकर कहा—

“धूल थोड़ी-सी ! सती सावित्री आई हैं, उनका तुम भी दर्शन कर लो—चरणोदक ले लो ।”

गृहिणी ने झुँझलाकर कहा—“सीधी बात कह री ! कौन है ?”

लक्ष्मी ने पास आकर कहा—“कहूँ क्या पत्थर ! भगो जानी आई हैं, बहू को देखने ।”

“कौन भगो ?”

“वही जयनारायण की राँड बेटी !”

गृहिणी तड़पकर बोली—“राँड का यहाँ क्या काम ? शुभ काम में उसे बुलाया किसने है ?

समस्त वृद्धा-मण्डल बोल उठा—

“अजी, अपने-अपने घर की सभी खैर मनाते हैं। बड़े-गाग से बहू मिलती है। उस निपूती माँ को यह नहीं सूझी कि ऐसे ऐसी शुभ-घड़ी में राँड-धी भेज दें ? खबरदार—जो बहू के पास आई ! ऐसी लुगाई की तो परछाई भी बुरी ।”

लक्ष्मी बोली—“तनिक उसकी सूरत तो देखो, उसे विधवा कौन रहे ? कैसे सिंगार करके आई है—मानो यही गौनिहाई है ।”

अब गृहिणी तमतमाकर उधर दौड़ी। समस्त अनुचर-मण्डल भी दौड़ चला। गृहिणी को देखते ही भीड़ हट गई। अब देखने लगीं, देखें—अब क्या रंग खिलता है। गृहिणी ने चम्पा से कहा—

“क्यों चम्पा—तुझे भले-बुरे का कुछ ज्ञान भी है ?”

चम्पा ने कहा—“क्या हुआ चाची, मैंने क्या किया है ?”

“तूने कुछ किया ही नहीं ? अच्छा, तू जो शुभ-सायत के दिन राँड को ले आई—यह तेरी कैसी अकल है ?”

चम्पा चुप !

भगवती मानो धरती में गड़ गई ।

इतने में एक वृद्धा बोली—“राँड को यह सिंगार ? आग लगे इस कल्युग में ।”

दूसरी ने कहा—“ऐसी लुगाई को दूसरा खसम करते क्या देर लगती है !”

तीसरी बोली—“जब इतना होगया है, तब वह भी होगा बीबी—अब किसी की मर्जाद नहीं रही !”

चम्पा अब तक चुप थी, अब उसने साहस करके कहा—
“चाची—राँडों के जी नहीं होता ? मैं तो उसे जबर्दस्ती ले आई थी, वह तो आती भी नहीं थी ।”

गृहिणी ने और रिसाकर कहा—“कौन अपनी गौनिहाई बहू पर राँड को परछाई पड़ने देगी ? अपना शम सभी चाहते हैं । तू इतनी बड़ी तो हो गई, पर समझ कुछ भी नहीं आई ।”

चम्पा कुछ कहा ही चाहती थी, कि इतने में गृह-स्वामी ने घर में प्रवेश करके कहा—“क्या चकचक है ?”

गृह-स्वामी का स्वर सुनते ही समस्त युवती-भण्डल हर्कर भीतर भाग गया । गृहिणी बोली—

“अजी, चकचक क्या होती ? सभी अपनी-अपनी शुभ चाहते हैं,—राँड विधवा को कौन घर में घुसने देता है ?”

“कौन आई है ?”

“भग्गो—जयनारायण की लड़की !”

गृह-स्वामी ने भौं सिकोड़कर कहा—

“जयनारायण ने भौंग खाली है, या पागल हो गया है ? निकालो इसे यहाँ से !”

भगवती चुपचाप चल दी। चम्पा भी उल्टे-पैरों लौट चली। गृहिणी ने चम्पा को बहुतेरा रोका, पर उसने एक न सुनी। घर आकर भगवती किवाड़ बन्द कर पड़ गई। उसका हृदय कैसा हो रहा था, तथा उसपर कैसी बीती, सो हममें लिखने की शक्ति नहीं है। चम्पा ने बहुत दिन तक भगवती को मुँह दिखाने का साहस न किया।

—:०:—

१३

ठीक दोपहरी भलमला रही थी। लू के तपते शोले, हवा की साँय-साँय आवाज और गाँव की गली के सन्नाटे ने समय को और भी भीषण बना दिया था। गाँववाले सब घर में पड़े विश्राम कर रहे थे। इसी समय भगवती पैर बढ़ाये, चम्पा के घर जा रही थी। इतने ही में पीछे से किसी ने आवाज दी।

“भगवती ! भगवती ! कहाँ जा रही है ?”

भगवती ने पीछे फिरकर देखा, एक युवक उसकी ओर लपका हुआ आ रहा है। उसे उस सुनसान में अपनी तरफ आता देख, भगवती पहले तो डर गई, और चाहा, कि भागकर चम्पा के घर में घुस जाय, पर इतने में ही उसने पास आकर कहा—“भगवती ! अच्छी तो है ?”

“हाँ; तुम कौन हो ?” यह कहकर भगवती उसका मुँह देखने लगी। उसने हँसकर कहा—“तुम मुझे नहीं जानती ? तुम्हारे भाई तो मेरे बड़े दोस्त हैं।”

“तुम्हारा नाम ?”

“गोविन्दसहाय।”

“तुम गोविन्दसहाय हो ?”

“हाँ, अब पहचान गई ?”

“पश्चिम तरफ बनियों के मुहल्ले में रहते हो न ?”

“हाँ, तुम कहाँ जा रही हो ?”

“चम्पा के घर ।”

“चम्पा कौन ?”

“रूपनारायण-चचा की लड़की ।”

“समझा—वह तुम्हारी सहेली होगी ?”

भगवती ने कुछ मुस्कराकर सिर हिला दिया । युवक ने उसके और निकट आकर उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहा—“तुमने यह सूरत कैसी बना रखी है ?”

“क्यों ?—जैसी थी, वैसी है ।”

“तुम्हारे व्याह पर मैंने तुम्हें देखा था । तब क्या तुम ऐसी ही थीं ?”

सखी का नाम सुनने से जो प्रफुल्लता उसके मुख पर आई थी, इस बात को सुनकर एकदम उड़ गई । उसके नेत्र भर आये । अब वह बालिका नहीं रही थी, अपना दुःख समझने लगी थी । उसने अपना भाव छिपाने के लिये उधर मुँह फेर लिया ।

गोविन्दसहाय ने कहा—“क्यों, चुप क्यों हो गई, मुँह क्यों फेर लिया ?”

भगवती के नेत्रों से आँसू टपक पड़े । उसने मुँह फेरे-ही-फेरे कहा—“वे दिन और थे, यह दिन और हैं । राम जिस तरह रखे, उसी तरह रहना पड़ता है ।”

गोविन्दसहाय ने देखा—भगवती बहुत-कुछ समझदार है, उसकी वाणी में कम्पन और घबड़ाहट है । उसने उसका हाथ पकड़कर कहा—“अरे ! तुम रोती हो ?”

भगवती ने एकदम उसकी ओर देखकर कहा—“नहीं तो ।” पर तभी उसके आँखों से दो आँसू और भी टपक पड़े । उसने

बात फेरने के ढङ्ग से कहा—“तुमने मुझे क्यों रोका ?”

क्षणक ठहरकर युवक ने कहा—“तुम्हें घर के लोग अच्छी तरह नहीं रखते ?—वहाँ तुम्हें कुछ दुःख है ?”

बालिका ने करारेपन से कहा—“नहीं तो ।” पर उसकी साँस ने कह दिया—मानो उसी को उसी की बात पर अविश्वास है ।

“नहीं तो कैसे ? मैं देखता हूँ, तुम्हारा सोने का शरीर मिट्टी हो रहा है.....।”

बात काटकर भगवती बोली—“मेरा हाथ छोड़ दो—तुमने मुझे क्यों पुकारा था ?”

“एक बात कहनी थी ।”

“क्या ?”

“मानोगी ?”

“पहले कहो भी ?”

“तुम्हें लिखना आता है ?”

“हाँ ।”

युवक ने कुछ इधर उधर करके कहा—“तुम्हें जो तकलीफ हो, मुझे लिख भेजा करो । जो चीज चाहिये, उसकी तकलीफ न भोगनी पड़ेगी—मैं भेज दूँगा ।”

भगवती ने विस्मय से कहा—“क्यों, तुम क्यों भेजोगे ?”

“तुम्हारी तकलीफ मुझसे नहीं देखी जाती ।”

“मैं तुम्हारी चीज क्यों लूँ ?”

“क्या हर्ज है ? मैं तुम्हारे भाई का मित्र जो हूँ ।”

“मुझे ऐसी तकलीफ ही क्या है ?”

“यह बात भूठ है । तकलीफ न होतो, तो तुम्हारी ऐसी सूरत हो जाती ?”

कुछ सोचकर भगवती ने कहा—“और भाई-भावज मना करें तब ?”

“उनसे कहने की ही क्या जरूरत है ?”

“देख लें तो ?”

“तुम सावधानी रखो—और देख ही लें, तो कह दिया करना, कि चम्मा ने दी है।”

भगवती क्षण-भर चुप रहकर बोली—“पर मेरे पास वे सब चीजे आयेगीं कैसे ? मैं ही तुम्हें कैसे खबर करूँगी ?”

“युवक ने इधर-उधर देखकर धीरे-से कहा—‘छजिया नाइन को जानती हो ? वह तो तुम्हारे घर जाती रहती है। उसे जो तुम कागज दोगी, मुझे चुपचाप मिल जायगा। मैं भी उसी के हाथ चीजें भेज दिया करूँगा, और खाने-पीने की चीजों के लिखने की तो जरूरत ही क्या है, मैं खुद भेजूँगा। थोड़ा मेवा और मिठाई शहर से लाई रखी है, उसे आज ही रात को भेजूँगा। पर देखना, किसी पर बात खुलने न पाये, भला !”

भगवती लालच में आ गई। वर्षों बीत गये थे, मेवा और मिठाई उसने जवान पर न रखी थी। भाई और पिता की जूठी थाली से ही उसका पेट भरता था। उसके मन में ऐसा हुआ, कि अभी यहीं यह मिठाई दे दे, तो यहीं खड़ी-खड़ी खा ले। पर तुरन्त उसने सोचा—यह कौन है, उसकी चीज मैं क्यों लूँ ? कोई क्या कहेगा ? यह सोचकर उसने कहा—“नहीं, मैं नहीं लूँगी।”

“क्यों—हर्ज क्या है भगवती। मैं क्या गैर हूँ।”

भगवती ने उसकी ओर देखा, करुणा और अनुराग उसके मुख पर दौड़ रहा था। उससे भयभीत होकर उससे कहा—“ना, ना, तुम जाओ, मैं नहीं लूँगी।”—कहकर भगवती चलने लगी।

युवक ने नम्रता से कहा—“जहा ठहरो तो भगवती, एक बात और कहनी थी।”

“जल्दी कहो ।”

“तुम्हें एक बात मालूम है ।”

“कौन बात ।”

स्थिर दृष्टि से भगवती को देखते हुए युवक ने कहा—
“पहले मेरे साथ तुम्हारा व्याह पक्का हुआ था ।”

“मालूम है ।” यह कहकर भगवती ने दूसरी ओर को मुँह फेर लिया ।

युवक ने देखा, कि उसकी आवाज दुःख से लबालब है ।
उसने उसी प्रसङ्ग में कहा—“अगर वैसा हो जाता भगवती ।”

भगवती ने अन्यत्र देखते-देखते वेमन से कहा—“हो कैसे जाता । भगवान् जो करते हैं—वही होता है ।”

“अच्छा, तो भगवान् ऐसा करते हैं ।”

“पर किया तो नहीं ।”

“और यदि ऐसा करते तो ?”

“तो क्या ।” कहकर भगवती ने उदास दृष्टि से युवक की ओर देखा ।

युवक ने उसका हाथ पकड़कर कहा—“तो क्या तुम ऐसी गली की भिखारिन की तरह मारी-मारी फिरतीं ? तुम्हें क्या भाभी की जूतियाँ उठानी पड़तीं ?—जूठे टुकड़ों का आसरा ताकना पड़ता ?”

भगवती रो उठी । बिना रोये कैसे रह सकती थी ?

उसके सामने उसका सब कष्ट रख दिया गया था । उसने रोते-रोते कहा—“जो भाग्य में लिखा था वही हुआ ।”

“वही तो मैं कहता हूँ । तुम्हारे पिता जिद न पकड़ते, तो आज मेरी सारी सम्पत्ति तुम्हारी होती—मैं तुम्हारा दास होता; जिनकी तुम गुलामी करती हो, वे तुम्हें फूल की तरह हाथों में

लिये फिरते ! सुहागिन क्या तुम्हें देखकर मुँह छिपातीं ? अपने बालकों पर छाया भी न पड़ने देती ? वे तुम्हें सखी बनाने को ललचा उठतीं.....?”

भगवती के मन में तूफान उठने लगा । उसने स्पष्ट देखा एक पर्वत के शिखर पर सुख के ढेर पड़े हैं, पर वहाँ पहुँचने का द्वार बन्द हो गया है । जब द्वार खुला था, तो उसके बाप ने उसे नहीं जाने दिया था, अब उस ओर देखना भी वृथा है । भगवती ऐसी ही बात सोच रही थी । अचानक उसे चेत हुआ, और “मैं जानती हूँ” कहकर वह चल दी ।

युवक ने उसके पीछे चलते-चलते कहा—“छजिया को भेजूँगा । देखना, यह बात कोई न जान सके.....।”

भगवती ने भयभीत होकर कहा—“तुम मेरे पीछे मत जाओ । कोई देख लेगा ।”

युवक खड़ा देखता रहा । भगवती लपककर चम्पा के घर में घुस गई ।

— — —

१४

किरपू ने दादी के नाक में दम कर दिया । उसे कुरते की जिद चढ़ गई है । गोपाल का नया कुरता वह देख आया है, अब वैसा ही कुरता वह पहनेगा । पहले वह अपनी माँ के पास गया, पर हरदेई ने एक ही धक्के में उसका मिजाज ठीक कर दिया । किरपू हताश न हुआ, वह दादी के सिर हो गया । उसने बहुतेरा बहुलाया, पर उसने एक न सुनी । अन्त में हारकर गृहिणी ने अपनी कपड़ों की बुकची खोली, और डोरिया निकालकर, कुरता सीने लगी । किरपू उसके सामने प्रसन्नतापूर्वक पलथी मारकर बैठ गया ।

दादी ने कैची चलाते-चलाते कहा—“देख किरपू ! यह कुरता सीकर सन्दूक में धर देंगे ! तीज के मेले पर पहनकर दादा के साथ मेले में जाना ।”

किरपू ने बड़े ध्यान से दादी की बात सुनकर कहा—“नई सन्दूक में ?”

“हाँ-हाँ, नई सन्दूक में रख देंगे ।”

किरपू ने कुछ देर सोचकर कहा—“तो तीज कब आयेगी ?”

“बस, अब थोड़े दिन और हैं ।”

किरपू ने प्रसन्न होकर कहा—“अच्छा ।”

इतने में ही सुखिया आ पहुँची :

किरपू ने ताली बजाते-बजाते, कुरते की तरफ उँगली उठाकर कहा—“देख सुखिया—हमाला कुलता !”

सुखिया हाथ की गुड़िया को फेंककर बोली—“कहाँ है ?”

किरपू ने फिर उँगली कुरते पर रखकर कहा—“ये रहा । हम दादा के छंग तीजों के मेले पै इछे पैन के जायेंगे ।”

सुखिया ने भाई के पास बैठते-बैठते कहा—“हम भी जायेंगे दादा के संग ।” इतना कहकर उसने कुरते की बाँह से नाक पोंछ डाली ।

“हम नया कुलता पैन के जायेंगे ।”

“और हम बी नया कुलता पैन के जायेंगे ।”

“तो तू भी सिलवाले—नया कुलता ।”

सुखिया ने दादी से कहा—“दादी, हमें बी कुलता सी दे ।”

दादी ने तनिक घुड़ककर कहा—“चुप रह ! लौंडिया कुरता नहीं पहना करतीं ।”

बालिका ने अचरज-से पूछा—“क्यों ?”

“हौवा पकड़कर ले जायेगा ।”

बालिका पर आतङ्क छागया। वह चुपचाप बैठी, दादी का सीना देखती रही। कुछ कर्तव्य न सुझा। उसने हताश होकर भाई की तरफ देखा। किरपू ने उसे रोनी सूरत में देखकर, हँसकर, और सैन मटकाकर, फिर उँगली से अपने कुरते की तरफ सङ्केत किया।

अब की बार बालिका ने कुनमुनाकर कहा—“ऊँ ऊँ ! हम तो कुलता लेंगे।”

दादी उसकी बात पर कान न देकर, कुरता सीती रही। बालिका ने यत्न निष्फल जाते देखकर, फिर भाई की तरफ हताश दृष्टि से देखा। किरपू पूरा नटखट था, उसने फिर उँगली से संकेत करके मानो कह दिया, कि—“देख, यह रहा, हमारा कुरता।”

अब तो सुखिया ने अमोघ शस्त्र सँभाला। वह छैला गयी और धरती पर लेटने लगी, पैर पटकने लगी।

दादी ने कोप से उसे देखते हुए कहा—“अच्छा सुखिया, तू न मानेगी। ठहर, अभी गंगासहाय बावले से तेरे कान कतर-वाऊँगी। तू बड़ी बिगड़ गई है—भला।”

सुखिया ने डर से एक बार अपने कानों को अच्छी तरह टटोल लिया, और फिर रोने-मचलने लगी। उसके रोने की आवाज सुनकर भगवती धीरे-धीरे वहाँ आई। उसने माँ से कहा—“क्या तूफान मचा रक्खा है?”

किरपू ने संक्षेप से सब दास्तान एकदम सुना दी।

उसने उठकर, भगवती का आँचल पकड़कर कहा—“रीबी ! हमाला कुलता है—सुखिया का नई।”

भगवती ने सुखिया को गोद में उठा लिया। उसकी धूल भाड़-पुचकारकर बोली—“वाह जी ! अपनी रानी को हम बड़ा

अच्छा कुरता वनवायेंगे—भालर लगवायेंगे । किरपू को दिखावें भी नहीं ।”

किरपू ने मुँह फुलाकर कहा—“सुखिया, हमें कुलता न दिखायेंगी ।”

सुखिया ने सिर हिलाकर साफ इन्कार कर दिया ।

किरपू ने कहा—“अच्छा, हम वी नईं दिखायेंगे ।”

सुखिया ने उसकी कुछ भी परवाह न की । इतने ही में हर देई उधर से आ निकली । उसने कहा—“क्या है री सुखिया ।”

“बीबी हमें कुलता देगी ।”

हरदेई ने हँसकर एक धप उसकी पीठ में जमाकर कहा—
“मुण्डो ! बुआ कहा कर ।”

सुखिया ने कहा—“नईं, बीबी ।”

“जा राँड !” कहकर वह एक तरफ चल दी । अचानक उसने द्वार की तरफ देखकर कहा—“ओहो छजिया ! आज तू किधर रास्ता भूँ गई । आज जरूर में बरसेगा !” सब ने आँख उठाकर देखा—छजिया नायन आरही है ।

गृहिणी ने हँसकर कहा—“आरी छजिया, बड़े दिन में आई ।”

छजिया ने हँसते-हँसते गृहिणी के पैर छूकर कहा—“क्या कहूँ ताईजी, घर-गिरस्ती के काम-धन्धों को तुम जानती हो । (भगवती की ओर देखकर) ओहो, भग्गो है । आरी राजी है । बड़ी लजा रही है !”

भगवती एक बार सिर से पैर तक काँप उठी । वह मुँह फेरकर सुखिया को ले बैठ गयी !

छजिया ने गृहिणी से पूछा—“क्या सी रही हो ।”

वृद्धा को मुँह खोलने की जरूरत ही न पड़ी । किरपू ने तुरन्त कह दिया—“हमाला कुलता है ।”

छजिया ने हँसकर कहा—“ओहो ! किरपू बाबू, तुम्हारा कुरता है ।”

“हाँ, हम दादाजी के संग मेले जायगें ।”

छजिया ने हँसते-हँसते किरपू को गोद में उठा लिया ।

सुखिया ने भगवती से कहा—“बीबी, हमें कुलता दो ।”

छजिया ने किरपू को गोद से उतारते-उतारते कहा—“आ, इधर आ ! मैं दूँ तुम्हें कुरता ।” इतना कहता-कहती सुखिया को लेने वह भगवती की ओर लपकी । भगवती बड़ी घबराई, पर छजिया ने उसी के पास बैठकर कहा—“क्यों भगो बीबी, मुझसे बोलती भी नहीं हो । क्या नाराज हो ?—या मुझे पहचानती नहीं हो ।”

गृहिणी ने कहा—“इसके सभी लच्छन ऐसे हैं । घर में इतनी इतनी लुगाई आती हैं, पर किसी से बात ही नहीं करती, दिन-भर किताबों को लिये बैठो रहती है । बाप ने किताब लादी है । जाने क्या-क्या आप ही बाँचा करती है । ज्ञान की बातें हमारी समझ में तो आती नहीं हैं ।”

छजिया ने नखरे से कहा—“तुम्हारी समझ में प्रायगा पत्थर ! ताईजी, अब क्या बूढ़े तोते पुरान पढ़ेंगे ?”

गृहिणी ने हँसकर कहा—“हमारी जब ऐसी उमर थी, तब तो किताबों का नाम भी नहीं सुना था वहन । यह नर् ताँती हुई है—इसको सभी बातें नई हैं ।”

छजिया ने भगवती का हाथ पकड़कर कहा—“क्यों भगो तुम्हें किताबें, आदमी से भी अच्छी लगती हैं ?”

गृहिणी ने कहा—“बस, एक चम्पा से इसकी घुटती है । जिस दिन वह आज्ञाय, उस दिन इनकी बातों का तार नहीं टूटता ।”

छजिया हँस पड़ी। उसने कहा—“ताईजी, बराबरवालियों में सभी का जी लगता है।”

सुखिया अब तक चुपचाप बातें सुनती रही थी, अब उसने कहा—“ला कुलता दे।”

मुँह चूमकर छजिया बोली—“हाँ-हाँ ! अपनी बिटिया को बड़ा अच्छा कुरता दूँगी। बता, कैसा कुरता लेगी सुखिया ?”

“ऐछा” कहकर उसने दादी के घुटनों में दबा हुआ कुरता उँगली से दिखा दिया !

छजिया ने कहा—“अच्छी बात है—अभी बजाज को बुलाकर पाँच-छः थान मँगवाती हूँ।”

भगवती ने हँसकर कहा—“थोड़े-न-बहुत, पाँच-छः थान ?”

छजिया ने और भी हँसकर कहा—“सुखिया को नीचे से ऊपर तक कुरतों में दाब दूँगी—थोड़े से न बनेगा।”

थोड़ी देर तक सब हँसते रहे। सुखिया ने इस उपहास का कुछ भी अभिप्राय न समझा, बड़ी देर तक सबका मुँह देखती रही। फिर वह भी हँस पड़ी। ‘जैसी बहै बयार पीठ पुनि तैसी दीजे’—इसका उसने भी अनुकरण किया। पर तुरन्त ही उसे अपने कुरते की याद आई। उसने मचलना शुरू किया। छजिया ने दूसरे उपाय का अवलम्बन लिया। उसने अपने आँचल में से एक गाँठ खोली। सबने देखा, उसमें मिठाइयों का दोना है। भगवती उसे देखकर सहम गई। छजिया ने एक दृष्टि उसपर डालकर कहा—“आरे किरपू, तू भी ले, और सुखिया, ले, तू मिठाई खा। कुरते का क्या करेगी ?”

किरपू और सुखिया दोनों आ जुटे। छजिया ने दो-दो लड्डू दोनों के हाथ में धर दिये। गृहिणी ने कहा—“यह क्या करती है, छजिया ! ठहर, ठहर !”

इतना कहकर उसने किरपू और सुखिया को पकड़ कर अपनी तरफ खींच लिया ।

छजिया ने कहा—ताईजी ! तुम बालकों के बीच में भाँजी मत मारा करो । वाह ! ले रे किरपू ! यह गुड़िया, और ले जा ।”

गृहिणी ने कहा—“कहाँ से लाई है ? सब यहीं लुटा जायगी—या छिट्ठ के लिये भी ले जायगी ?”

“छिट्ठ इनसे भी ज्यादा है ? लेरी सुखिया ।” कहकर एक पेड़ा उसने उसके हाथ में पकड़ा दिया । फिर उसने कहा—

“आज पच्छिम तरफ चली गई थी । वहाँ हरगोविन्द मिल गए । उन्होंने आवाज देकर बुलाया, और मिठाई बाँध दी । बेचारे बड़े भले आदमी हैं ।” इतना कहकर उसने भगवती की ओर तिरछी नजर से देखा । भगवती काँप रही थी । छजिया ने कहा—“ले री भगो ! तू भी ले ! मेरे लिये तो जैसे ये बालक वैसी भगो ।”

भगो ने कहा—“मैं तो नहीं लेती ।”

“वाह ! नहीं कैसे लेगी ?” इतना कहकर छजिया भगवती से लिपट गई । गृहिणी ने कहा—“रहने दे छजिया ! उसके भाग में मिठाई खानी बदी होती, तो उसका भाग ही क्यों फूटता ?”

छजिया ने कहा—“तुम्हें मेरी सौगन्ध ! न लेगी, तो मेरा जी बड़ा दुखेगा !”

भगवती ने कहा—“अच्छा ठहर ।” इतना कहकर एक लड्डू उठाकर कहा—“बस !”

“बस नहीं, सब ले । मेरे और कोन बैठा है !” इतना कहकर वह दोना वहीं पटककर अपनी जगह आ बैठी ।

गृहिणी ने सोते-सीते मुँह भारी करके कहा—“इसी लौंडे से ब्याह की बात-चीत पक्की हुई थी । जो यही होता, तो आज मेरी

भगो को कौन पाता ?” गृहिणी के नेत्रों से पानी टपक पड़ा । उसे हाथ से पोंछकर वह फिर सीने लगी ।

छजिया ने कहा—“अब पछताने से क्या है जी ! विधाता ने जहाँ जिसकी जोड़ी रखी है, वहीं काम होता है । ऐसे वर क्या जगह-जगह मिलते हैं ? कैसा सुन्दर, कमाऊ, पढ़ा-लिखा लड़का है—कुन्दन की तरह शरीर दमकता है !

भगवती सुखिया को लेकर चल दी । उससे वहाँ ठहरा ही न गया ।

१५

राजा साहब का नाम न बताना ही अच्छा है । यह तो हम कह ही चुके हैं, कि उनकी आयु चालीस के लगभग है, रङ्ग साँवला, और आँखों में लम्पटता कूट-कूटकर भरी है । प्रजाजनों में उनके अत्याचार से त्राहि-त्राहि मच गयी थी । किसी की भी बहू-बेटी की इज्जत मलामत न थी । इस बातको लेकर सरकार से उन्हें बहुत मलामत मिली । अन्त में रियासत कोर्ट-ऑफ वार्ड्स हुई, और आपको मिलता है, वजीफा । अब आप शहर में रहते हैं, और निश्चिन्ततापूर्वक अपने लुच्चे, लफङ्गे नौकरों-द्वारा शहर की बहू-बेटियों का सन्नाश किया करते हैं । इस समय वे अपनी आराम-कुर्सी पर धूप में पैर फैलाये पड़े पान चबा रहे थे, और एक दुबला-पतला कमीना-सा आदमी सामने जमीन पर बैठ, निर्लज्जता से भिन्न-भिन्न बातें कर रहा था । राजा साहब ने कहा—“तो आखिर घर का पता तो लग-ही गया ? वह अकेली ही तो रहती है ?”

“जी हाँ, उसके सिवा वह बुढ़िया मकानवाली है, सो वह हत्ये चढ़ गई है, और सौ-पचास रुपये पाकर वह सब काम कर

देगी ! सब काम सहूलियत से हो जायगा । मगर एक बात है !”

राजा साहब ने अकचकाकर कहा—“वह एक बात अब कौन सी रह गई ?”

“वह नौजवान, जिसने उसे उस दिन छुड़ाया था न !”

“उसकी क्या बात है ?”

“वह नित्य-ही उसके पास आता है ।

“उससे उसका क्या सम्बन्ध है ? क्या वह उसका रिश्तेदार है ?

“बुढ़िया के कहने के अनुसार तो वह उसी दिन से आता है ।”

“तब तो वह हमारे रास्ते का कण्टक है । साले को साफ ही न कर दिया जाय ?”

“क्या जरूरत है ? ऐसा क्यों न किया जाय कि साँप मरे न लाठी टूटे ।”

“तो तुम यह समझते हो, कि तुम उसे बगीचे में ले आओगे ?”

“इसमें कुछ भी गोल-माल न होने पायगा ।”

“अच्छी बात है, ठीक आठ बजे । समझ गये न ?”

“जी हाँ । तो अब मैं जाता हूँ । मैं एक किराये की गाड़ी ले लूँगा । हुजूर नाराज न हों, तो इनाम की भावत कुछ अर्ज...”

राजा साहब ने जेब से कुछ नोट निकालकर फेंक दिये । वह व्यक्ति सलाम करके चल दिया ।

जिस समय उपरोक्त बात-चीत हो रही थी, दोपहर का समय था । वह व्यक्ति सीधा चलकर वृद्धा के पास आया, और बड़ी देर तक बात-चीत करता रहा । उसने वृद्धा के हाथ में कुछ रकम भी धर दी, उसने उसे चुपचाप लेकर कहा—“काम बड़ा सज्जीन है । मैं उस लड़के से बहुत डरती हूँ । यदि उसे कुछ पता लग गया, तो बुरा होगा ।”

“तुम खातिर-जमा रखो—तुम्हारा बाल भी बाँका न होगा।” यह कहकर वह आदमी चला गया।

उस आदमी के चले जाने के बाद ही बुढ़िया ने ऊपर जाकर देखा—सुशीला सीने के काम में लगी हुई है! उसने पास बैठकर मीठे स्वर से कहा—“हर वक्त न सिया कर। कभी फुरसत से भी बैठा कर, कपड़े-लत्ते भी साफ रखाकर—यह भी कोई ढङ्ग है। अब तो तुम्हें खर्च की वैसी तज्जी नहीं।”

“नहीं चाची, भाई साहब पर इतना भार डालना क्या अच्छा है? मुझे अपनी जरूरत पूरी करने के लिये मेहनत करना ही अच्छा है।”

“पर मेहनत में मर मिटना तो अच्छा नहीं।”

“चाची, अब तो मैं पहले से चौगुनी मेहनत कर सकती हूँ। अब मुझे चिन्ता क्या है? भगवान् ने भाई को भेज दिया है।”

“तभी तो कहती हूँ, इतना काम न किया कर। हाँ, सुना था, आज वे कुछ बीमार हैं।”

सुशीला ने सुई रोककर कहा—“किसने कहा?”

“मेरा एक रिश्ते का लड़का वहीं पढ़ता है, वह कहता था। उसका कहना था—‘वे एकाएक ही बीमार पड़ गये हैं।’”

“कल ही तो आये थे—भले-चढ़े।”

“शरीर का क्या ठिकाना?”

“और अभी आने की बात भी थी। उन्हीं की तो कमीज सी रही थी।”

बुढ़िया घबराई। उसने कहा—“देखो आयेगें, तो मालूम पड़ जायगा, लड़का भूटा तो नहीं है।”

“चाची, एक बार उसे भेजकर हाल-वाल मँगवा तो लेती।”

“अच्छी बात है, मैं अभी जाती हूँ।” यह कहकर बुढ़िया

उठकर नीचे आई। वह द्वार पर प्रकाशचन्द्र की प्रतीक्षा में बैठी रही।

प्रकाशचन्द्र ने आते ही हँसकर कहा—“कहो चाची, आज तो द्वार पर ही बैठी हो ! सुशीला भीतर है न ?”

“कहीं पड़ोस में किसी के घर गई है। अभी तक नहीं लौटी, उसी की इन्तजार में बैठी हूँ।”

प्रकाश भीतर जाते-जाते रुक गये। कहा—“वहाँ क्यों गई है ?”

“उनकी लड़की से बहनापा है, आपस में मिलती-जुलती रहती हैं।”

“तब अभी लौटने की कोई उम्मीद नहीं।”

“कैसे कहा जाय, बच्ची ही तो है। कोई ऊपर तो है नहीं, जो डाट-डपट करे।”

“मैं तो ज्यादा ठहर सकता नहीं। तुम कह देना, कि प्रकाश आया था। मैं कल आऊँगा।”

प्रकाश चला गया।

वृद्धा घर में आकर बैठी—दिन छिप गया।

सुशीला ने वृद्धा की कोठरी में आकर कहा—“चाची कुछ खबर आई ?”

“आई तो। सुना, बेबेहोश हैं।”

“कोई अपना भी नहीं है।”

“वहाँ अपना कौन है ?”

“फिर क्या करना चाहिए ?”

“कल फिर खबर मिल सकेगी।”

“चाची, यह तो बड़ी बुरी खबर है।”

“फिर मैं क्या करूँ बेटी, तू कह तो तुझे ले चलूँ।”

“वहाँ क्या स्त्रियों को जाने की इजाजत है ?”

“है तो, मैंने लड़के से पूछा था ।”

सुशीला सङ्कोच में पड़ गई । कुछ ठहरकर उसने कहा—
“चाची, फिर चलो; एक गाड़ी मँगालो ।”

वृद्धा सहमत हुई ।

गाड़ी आई, और अयोध बालिका उसपर चढ़ बैठी—दुष्टा विश्वासघातिनी वृद्धा उसे ले चली ।

सुशीला को मार्ग का ज्ञान न था । फिर रात्रि का अन्ध-कार । जब एक विशाल बँगले में गाड़ी खड़ी हुई, और वृद्धा ने कहा—“उतरो,” तब सुशीला को चेत हुआ । वह घबराई हुई थी—निश्शङ्क उतरकर साथ हो ली । सामने के वृक्ष के नीचे से भूत की भाँति एक मनुष्य-मूर्ति ने उनका अनुसरण किया ।

सुशीला ने वृद्धा का हाथ पकड़कर कहा—“चाची, वह पीछे-पीछे कौन आ रहा है ।”

“कोई नौकर होगा ।” यह कहकर वृद्धा उसका हाथ पकड़कर, तेजी-से आगे को चल दी । बालिका ने देखा-आगे-आगे अँधेरे में एक और आदमी जा रहा है, वृद्धा उसका अनुसरण कर रही है ।

एक शङ्का की छाया सुशीला के हृदय में उठी । उसने खड़ी होकर कहा—“चाची, लौट चलो । मेरी इच्छा वहाँ जाने की नहीं है ।”

वृद्धा ने कठोर स्वर में कहा—“इतनी दूर आकर लौटना भी हँसी-खेल नहीं है ! आई हो तो मिलती चलो ।”

सुशीला जमकर खड़ी हो गई ।

हटात् एक बलिष्ठ पुरुष ने पीछे से आकर, उसके मुँह में कपड़ा ठूस दिया, और उसे हाथों-हाथ उठाकर चल दिया ।

सन्ध्या हो गई। धीरे-धीरे अन्धकार फैल रहा है। गायें रम्भा रही हैं। उनके दूहने का मधुर शब्द सुनाई दे रहा है। ऐसे समय में छजिया नायन ने जयनारायण के घर में प्रवेश किया। गृहिणी उस समय गौ-सेवा में लग रही थी, और हर-देई रसोई बना रही थी। नारायणी आँगन में पीढ़े पर बैठी थी। अभी वह दुर्बल थी। बैठी-बैठी वह किरपू और सुखिया को दूध-बताशे से रोटी खिला रही थी। भगवती अपना कोठरी में बैठी, कुछ अनमने भाव से दरी की डोरी बट रही थी। कमरे में अंधेरा छा गया था, पर वह बैठी ही थी। छजिया ने वहीं पहुँचकर कहा—“अरी, क्या कर रही है ?”

भगवती ने चमककर छजिया की ओर देखा। कुछ देर तक वह उसी की ओर देखती रही, फिर गिड़गिड़ा कर बोली—“छजिया ! छजिया !! तू इस तरह मेरे पास मत आया कर। देख, मैं तेरे हाथ जोड़ती हूँ, तू रोज-रोज यह क्यों ले आती है ?”

छजिया ने आँचल की गाँठ खोलते-खोलते हँसकर कहा—“पगली कहीं की ! तुझसे सौ बार तो कह चुकी हूँ—डर किस-बात का है ? मुझे क्या तैने ऐसी-वैसी समझ लिया है। अरे ! हवा को तो खबर लग ही नहीं सकती है !” इतना कहकर उसने ताजा मिठाई का एक दोना उसके हाथ में दे दिया। भगवती ने उसे डरते-डरते हाथ में ले लिया। छजिया ने कहा—“कपड़ों के बुकचे में छिपाकर रख आ।” भगवती ने वही किया। मिठाई छिपाकर भगवती कठपुतली की तरह फिर छजिया के पास आ खड़ी हुई। छजिया ने मुस्कराकर कहा—“बता, और क्या चाहिए ?”

“कुछ नहीं, अब तू जा ! देख, माँ न आ जायँ।”

“माँ आजायगी, तो क्या है ?—आ जाने दे !”

“तुम्हें यहाँ अकेली मेरे पास खड़ी देखकर क्या कहेंगी ?”

छजिया ने कटाक्ष-पात करके कहा—“क्या कहेंगी ? मैं कोई हरगोविन्द तो हूँ नहीं। लुगाई के पास लुगाई आती ही है—उसमें कहना-सुनना क्या है ?”

भगवती ने उलटकर कहा—“अच्छा, अब तू जा ।”

“अच्छा जाती हूँ, पर और चीज सब वापस ले जाऊँ क्या ?”

भगवती ने जल्दी में कहा—“और क्या है ?”

“कुछ भी हो, तुम्हें तो ‘जा-जा’ लग रही है ।” इतना कहकर छजिया नखरे से चलने लगी ।

भगवती ने तनिक हँसकर कहा—“अच्छा, बता तो क्या है । दिक मत कर ।”

“तैने कुछ उस दिन मँगाया था ?”

“किस दिन ?”

“किस दिन ! अब याद थोड़े ही है ?—जिस दिन नदी नहाने गई थी ?”

“हाँ-हाँ, कंधी । जैसी चम्पा के पास थी—रखर की !”

“यह ले ।” कहकर कंधियों का एक बढ़िया जोड़ा छजिया ने भगवती के हाथ पर धर दिया ।

भगवती ने बड़ी प्रसन्नता से उन्हें लेकर कपड़ों में छिपा लिया ।

छजिया बोली—“सिर में लगाकर तो देख ।”

“नहीं-नहीं, अभी नहीं—सोती बार !”

“सोती बार कौन देखेगा ? ऐसी चीज पहनकर साजन को दिखाते हैं ।”

भगवती सिकुड़ गई ! उसने कहा—“छजिया, अब तू जा; फिर आ जाना ।”

छजिया ने कहा—“अच्छा, जाती हूँ, पर उस बात का क्या जबाब रहा ?”

भगवती के शरीर का रक्त-प्रवाह रुक गया। वह खड़ी-खड़ी पसीने में नहा गई, आँखों में अँधेरा छा गया, मुँह से शब्द न निकला।

छजिया ने उसके कन्धों पर हाथ रखकर धीरज से कहा—
“इतने घबराने की क्या बात है? सब काम ऐसी उस्तादी से होगा, कि कानों-कान किसी को खबर न पड़ेगी, और तू अब बालक तो है नहीं। भगवान् ने औरत-मर्द का जोड़ा बनाया ही है। जब मेरी उमर तेरे बराबर थी……।”

कुछ ठहरकर उस दुष्टा ने एक कटाक्ष फेंककर कहा—“अपने भाई-भौजाई को ही देखले! तेरा जन्म क्या इसी अँधेरी कोठरी में सड़ने को है? कैसा चाँद-सा मुखड़ा है!” इतना कहकर, छजिया ने भगवती के मुख पर हाथ फेर दिया।

भगवती की जीभ में बोलने की शक्ति नहीं थी। पसीना पनाले की तरह बह रहा था।

छजिया फिर कहने लगी—“और वह भी कैसा जवाँमर्द है। भूठ नहीं कहूँगी—दिन-रात तेरा ही नाम उसकी जवान पर रहता है। तेरे आगे रुपये-पैसे को तो वह कुछ समझता ही नहीं। ऐसी रेशमी साड़ी लाकर रखी है, कि देखती रह जाय—पर भेजी इसलिये नहीं, कि कोई देखे-भाले तो नाम धरे। जिस दिन उसे पहनेगी, तू-ही-तू दीखेगी।”

भगवती बेसुध-सी हो रही थी। उसने बात काटकर कहा—
“अब तू जा। देख, काँइ सुन न ले।”

“सुनेगा कौन? अच्छा, तो बता-एक जवाब मिलना चाहिये।”

भगवती ने घबड़ाकर कहा—“नहीं, नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।” इतना कहकर भगवती छजिया को धक्का देकर जाने का संकेत करने लगी।

छजिया ने हाथ मटकाकर कहा—“यह कैसी बात बीबी ?” न जाओगी, तो कैसे बनेगा ? वह इतना खर्च-परेशानी तो इसो-लिये उठा रहा है ।”

भगवती ने बात काटकर कहा—“नहीं-नहीं, मैं न जाऊँगी । इन्हें तू लेजा, फिर मत लाना—मुझे नहीं चाहिए ।”

अब की बार छजिया ने दूसरा शस्त्र फेंका । उसने कहा—“समझ-सोचकर बातें करो भगवती बीबी, पहले तो तुमने माल उड़ाए, अब काम के वक्त ‘ना-ना’ करती हो । इस तरह तो न चलेगा । तुम्हारे बाप को सब खबर करदी जायगी । मर्द की जात को जानती नहीं—उसका कुछ नहीं बिगड़ता, पर तुम्हारी हड्डी-पसली चूर-चूर हो जायगी । मुँह काला होगा, वह अलग ! वही मसल होगी—न माया मिली न राम !”

दवा कारगर हुई । छजिया का एक एक शब्द तीर की तरह भगवती के कलेजे में पार हो गया । भय, उद्वेग और चिन्ता से वह पागल हो गई । वह हाथ जोड़, घुटनों के घल छजिया के पैरों में गिरकर रो-रोकर कहने लगी—“छजिया, मेरी अच्छी छजिया मेरी जान बचा ! छजिया, मैं तेरी काली गऊ हूँ !” इतना कहकर भगवती उस नीच स्त्री के पैरों पर लोटने लगी ।

जिस प्रकार प्रफुल्ल नेत्रों से शिकारी अपने वश में आये हुए शिकार को देखता है, ठीक वैसा-ही भाव छजिया के नेत्रों में फूट-पड़ा । अबोध बालिका का हाथ पकड़कर उसने उठाया, और सान्त्वना-युक्त स्वर में बोली—“मैं तो पहले ही कह चुकी हूँ, कि मेरे मन के माफिक चलेगी, तो कुछ डर नहीं है, सब काम ठीक बैठ जायगा । जब तक मेरे दम में दम है, मजे में मौज उड़ा । किसकी मजाल है, जो तुझसे आँख भरे मिलावे ।”

भगवती ने रोते-रोते कहा—“तो मैं वहाँ कैसे जाऊँगी छजिया ? कोई देखेगा, तो क्या कहेगा ?”

“अरी बावली, कौन देखेगा ? किसी को कानो-कान खबर भी न होगी । इसका जिम्मा मेरे सिर रहा ।”

भगवती चुपचाप बैठी रही । छजिया ने कहा— “भजे से रस के घूँट पियेगी तू—और सिर खपाना पड़ता है मुझे ! अभी तुझे चस्का नहीं लगा है, नहीं इतना सोच-विचार न करती ।”

इतना कहकर छजिया ने हँसकर भगवती को चुटकी भर ली । भगवती के मुख-मण्डल से हँसी कोसों दूर थी । वह चुपचाप खड़ी काँप रही थी ।

छजिया ने कहा—“अब जल्दी जवाब दो, तो जाऊँ । देखो, कोई देख लेगा ।”

कोई देखता तो नहीं है—इस भय से भगवती ने आँख उठाकर चारों ओर देखा । फिर कहा—“अच्छा, फिर आना । तब सोच कर पक्का जवाब दूँगी ।”

“बावली हुई है तू ? इतने दिन से टाल रही हूँ, आज उन्होंने कहा है कि पक्का जवाब आएगा, तो आज ही रस्तातोड़ हो जायगा । अब तू देख ले—राजरानी बनकर मौज उड़ाना मंजूर है, या भूटे टुकड़े खाकर कुत्तों की तरह उम्र काटना । माँ-बाप किसी का कोई नहीं है—सब मतलब के हैं । अभी तू सुहागन होती, तो माँभी कैसा आदर करती, पर अब तू देख ही रही है—कैसी-कैसी विपता पड़ रही है ! भला हो बेचारे हरगोविन्द का, जिसके खर्च से जी रही हो, नहीं इस दुःख में क्या जान बचती ? सो तू अपनी बेवकूफी से उन्हें भी नाराज कर रही है ।”

भगवती की दशा लज्जा, भय, अनुताप और दुःख से अत्यन्त शोचनीय हो रही थी । वह बारम्बार कुपथ पर पैर रखने से डर और हिचक रही थी । पर अब उसे कुछ सूझता नहीं था । अन्त में उसने स्थिर करके कहा—“परसों मां पूरनमासी नहींने

गङ्गाजी जायगीं। भैया भी साथ जायगें। घर में भाभी ही रहेगीं। चाचाजी इलाके में गये हैं। तभी दुपहरी को चलूँगी।”

छजिया ने मन की खुशी मन में ही दबाकर कहा—“तो यही बात पक्की रही न ?”

“हाँ हाँ, पक्की ! पर छजिया, किसी को खबर न हो।”

इतना कहकर भगवती ने उसके पाँव पकड़ लिए। ‘इस बात से खातर-जमा रख’ कहकर छजिया चम्पत हुई।

१७

पाठक, इस परिच्छेद में जिस घटना का वर्णन है, उसको लिखने की इच्छा हमें तनिक भी नहीं है। पर क्या करें। लेखकों का भाग्य ऐसा नहीं होता, कि इच्छा करने से ही वे किसी प्रकृत घटना को छिपा जायें। उन्हें इच्छा से, अनिच्छा से जिस तरह हो—सब बात यथावत् कहनी पड़ती है। हम भी इस घृणित और कुत्सित प्रसङ्ग से अपनी लेखनी को काला किये बिना नहीं रह सकते। आज पूर्णिमा का पर्व है। आज भगवती की माता पतित-पावनी गङ्गा में गोता लगा रही है, और आज ही भगवती घोर पाप-पङ्क में निमग्न होने को, छजिया के साथ घरकी ड्योढ़ियों से बाहर जा रही है। कैसी कटु कथा है,—कैसी दुःखद घटना है ! यदि भगवती हमारी बहिन या पुत्री होती, तो हम कदाचित् इस बात को ऐसी शान्ति के साथ न पढ़ सकते। मान लें, कि समस्त भारतीय देवीयाँ हमारी सगी बहन-बेटियाँ हैं, तो निश्चय भगवती के इस अघःपतन पर आपके हृदय में भयङ्कर वेदना का अनुभव होगा।

ठीक दुपहरी झलझला रही थी—जब छजिया के साथ भग-

वती ने हरगोविन्द के घर में प्रवेश किया। अपने शयनागार में हरगोविन्द बड़ी उत्कण्ठा से उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। भीता-चकिता भगवती ने उसी कोठरी में प्रवेश किया। छजिया तो बाहर ही से अन्तर्द्धान हो गई थी। भगवती का सिर घूम रहा था। पहले तो उसे कमरे में कोई न दिखाई पड़ा पर फिर देखा—हरगोविन्द सामने खड़ा, तृपित नेत्रों से उसे घूर रहा है। अब तो उसके शरीर से पसीना छूट पड़ा। हरगोविन्द ने तभी पास आ उसका हाथ पकड़कर कहा—“डर किस बात का है भगवती ?”

“तुम मुझे घर भेज दो। देखो, मेरा सिर घूम रहा है।”

हरगोविन्द ने कहा—“अच्छा, तुम्हारी इच्छा होगी, तो भेज देंगे, पर जरा तवियत तो ठीक होने दो भगवती ! तुम इतना क्यों घबरा रही हो ?”

“मुझे बड़ा भय मालूम हो रहा है।” भगवती ने कातर दृष्टि से उसकी ओर देखकर कहा।

युवक ने उसका हाथ पकड़ लिया।

“यहाँ घर-भर में कोई नहीं है, डरने की कौन बात है ? चलो, जरा वहाँ चलकर बैठो।” इतना कहकर, वह पलंग की तरफ उसे ले चला। भगवती भी मन्त्र-मुग्धा की तरह चलकर जा बैठी। मानो उसे कुछ दीखता-सूझता नहीं है।

हरगोविन्द ने उसकी चादर उतारते-उतारते कहा—“बड़ी गर्मी है। कपड़ा हलका करो ? गर्मी से तुम्हारा जी बड़ा खराब हो गया है।”

भगवती ने चादर को हटता से पकड़कर कहा—“ना ना, चादर मत उतारो ! अच्छा, अब मैं जाती हूँ।”

धूते युवक ने मानो बात ही नहीं सुनी। उसने एक हाथ से पट्टा करना शुरू किया, दूसरे हाथ से उसका वस्त्र हटाते हुए

कहा—“इस तरह घबराने से कैसे काम चलेगा ? तुम्हें मालूम नहीं है भगवती, तुम्हारे लिये मैं कितना तरस रहा हूँ ?”

भगवती ने बात काटकर, उसका हाथ हटाते हुए कहा—
“देखो, ये सब बातें चिट्ठी में लिख भेजना, अब जाने दो, बड़ी देर हुई। कोई आ न जाय।”

“ऐसी दुपहरी में कौन आयेगा पगली ! बाहर छजिया पहरा दे रही है। तुझे मुझपर तरस नहीं आती ?”……

हाय ! अभागिनी आज लुट गई। नीच दुष्ट ने बलात्कार से असहाया बालिका का सर्वनाश कर डाला !!

—:०:—

१८

भयङ्कर तूफान आ चुकने के बाद प्रकृति एकदम शान्त हो जाती है। नर-पिशाच हरगोविन्द जब असहाया बालिका का सर्वनाश कर चुका, तब उसे होश आया, उसे आत्म-बोध हुआ। उसने मन-ही-मन लज्जा, भय, ग्लानि और सन्ताप का अनुभव किया—बारम्बार अपने-आप को धिक्कारने लगा। तदनन्तर कुछ शान्त होकर उसने शय्या की तरफ देखा—उस समय बालिका मूर्छित पड़ी हुई थी, उसका चेहरा मुर्दे के समान हो रहा था। उसने उसके मस्तक पर हाथ रखकर जगाना चाहा, पर देखा—मस्तक बर्फ के समान शीतल हो रहा है, नाड़ी क्षीण है। अधर्मी युवक एकदम घबरा गया। उसने भगवती के मुख पर पानी के छींटे देकर चैतन्य करने की चेष्टा की, पर कुछ न हुआ, अब वह छजिया को बुलाने दौड़ा।

छजिया ने रंग-ढंग देखकर कहा—“क्यों, क्या हुआ ?”

“वह बेहोश हो गई है।”

“सो तो होना ही था, तुमसे तनिक धीरज न रक्खा गया । इतनी कोमल लड़की से कहीं ऐसा व्यवहार किया जाता है ? मैं उसे धीरे-धीरे आप ही रास्ते पर ले आती ।”

हरगोविन्द ने घबराई जवान से कहा—“उसे चलकर देख तो सही ।”

“अच्छा मेरा इनाम दो, तुम्हारा सब काम ठीक-ठीक हो गया है ।”

“इनाम क्या मारा जाता है, चलकर उसे ठीक तो कर ।”

“यह बात भूठे है—पहले इनाम—पीछे काम ।”

हरगोविन्द ने पाँच रुपये उसके हाथ पर रखकर कहा—
“और पीछे खुश करेंगे ।”

“अच्छा, यही सहो ।” कहकर छजिया भीतर आई ।

भगवती अभी तक बेहोश थी, पर इन लोगों के भीतर पहुँचते ही उसे होश आ चुका था । छजिया को देखकर वह गाय की भाँति डकरा उठी ।

छजिया ने कहा—“घबरा मत, अभी सब ठीक हुआ जाता है ।”

बालिका लज्जा और पश्चात्ताप से छटपटाने और रोने लगी । उसने उठने की चेष्टा की, पर सिर में चक्कर आने से गिर पड़ी ।

छजिया बड़ी ही घाघ थी । उसने ऐसे-ऐसे अनेक अवसर देखे थे । उसने कहा—“बाबू ! तुमने बड़ा गजब किया, आज का इनाम पूरा-पूरा लूँगी ।”

हरगोविन्द घबरा रहा था । उसने कहा—“तू इसे यहाँ से ले तो जा बाबा, इनाम क्या भागता है ?”

छजिया ने हरगोविन्द को बाहर भेज दिया, और पंखे से भगवती को हवा करने लगी । कुछ देर में भगवती की तबीयत

कुछ ठीक हुई तो वह गिड़गिड़ाकर कहने लगी- “छजिया ! मुझे घर पहुँचा । हाय ! मैं लुट गई ।”

“घबराओ नहीं, कोई कानों-कान न जान पायेगा ।”

भगवती कुछ काल तक चुप बैठी रही । अब एकाएक वह उठ खड़ी हुई । छजिया ने कहा—“कुछ देर और ठहरो ।”

पर भगवती ने एक न सुनी । वह सीधे अपने घर चली गयी ।

१६

कुपथ पर पैर रखना ही बुरा है । एक बार जो गिरा, फिर सम्भल नहीं सकता । मकड़ी के जाले में मक्खी फँसकर जितना ही निकलने के लिये छटपटाती है, उतना ही अधिक फँसती है, अभागिनी बालिका भगवती की भी यही दशा हुई । गत परिच्छेदों में जिस घटना का वर्णन किया गया है—उसे आज तीसरा ही दिन है । छजिया फिर उसे लेने को आ उपस्थित हुई है—उसका प्रस्ताव सुनते ही भगवती भयभीत दृष्टि से उसके मुख की ओर ताकने लगी । छजिया ने कहा—

“इतना डरना किस लिए है ? उस दिन किसी को कुछ खबर हु ? जब पहला मामला ही फतह हो गया, तो अब तो बात ही क्या है ?” इतना कहकर छजिया चुप हो गई । भगवती अब भी उसी प्रकार उसके मुख को ताक रही थी । छजिया ने धीरे से कहा—“आज चलोगी न ?”

भगवती ने खीझकर कहा—“ना, मैं कभी न जाऊँगी । तू जाकर साफ कह दे, और खबरदार, जो मेरे पास कुछ चीज-बस्त लेकर आई तो ।”

छजिया ने अचरज की मुद्रा बना, और ठोड़ी पर उँगली रखकर कहा—“ऐ है ! बड़ी नादान बिटिया बनी हो--रोज-रोज समझाना पड़ेगा इन्हें ! पहले दिन न जाती, तो एक बात भी थी । अब तो सब-कुछ हो गया । जो सब बात खोल दी जाय, ता कहो, कैसी बने ?”

भगवती किंकर्तव्य-विमूढ़ की तरह बैठी-बैठी छजिया का मुँह ताकने लगी ।

छजिया ने कहा—“चलो, अब देर का मौका नहीं है ।”

भगवती अब भी भयभीत दृष्टि से उसे देख रही थी । उसकी लालसा भड़क गई थी । वह कष्ट, लज्जा, भय और कामना के थपेड़ों में पड़कर हतबुद्धि हो गई थी । उसने कहा—

“छजिया, यह काम अच्छा नहीं । तू जा, मैं नहीं जाऊँगी । मैं जहर खाकर मर जाऊँगी !”

“पगली, मरेंगे तेरे दुश्मन, अभी तू बहुत-कुछ देखेगी । क्या तुझे मालूम नहीं, वे तेरे साथ पुनर्विवाह की बात-चीत कर रहे हैं ।”

भगवती अधिक देर तक स्थिर न रह सकी । छजिया फिर उसे उस पाप-पथ पर ले चली । फिर तो यह पथ खूब चला । उन सब बातों को लिखकर हम अपनी लेखनी को कलङ्कित न करेंगे । यही यथेष्ट है, कि भगवती खूब सावधानी से इस पाप-सागर में गोते लगाने लगी ।

इस परिच्छेद में हम अपने पाठकों को एक सर्वथा नवीन प्राणी का परिचय देंगे, जो हमारी कहानी में सब से पवित्र और सब से महत्वपूर्ण पात्र है।

शरद् की विशुद्ध रात्रि थी। बाहर मानों दूध बखेर दिया गया था। शीतल चन्द्रमा की चाँदनी, मन्द पवन और प्रशान्त रात्रि—इससे भी अधिक और चाहिये क्या ?

नगर के बाहर एक बँगला था। वह उसी उज्ज्वल रात्रि में खड़ा, मानो दूध में नहा रहा था। सामने प्रशस्त हरी घास का लॉन, एक अनिर्वचनीय सौन्दर्य बखेर रहा था।

दो प्राणी धीरे-धीरे इस लॉन पर टहल रहे थे—एक पुरुष, एक स्त्री। दोनों परस्पर सटे हुए, हाथ-से-हाथ मिलाये, दीन-दुनियाँ से दूर, प्रगाढ़ प्रेम में तन्मय—मानो जगत् में वे परस्पर एक दूसरे की हस्ती को छोड़कर और कुछ जानते ही न थे।

पुरुष ने कहा—“प्रिये ! अधीर न हो, प्लेग के प्रबन्ध के लिये मुझे कल-ही देहात में दौरे पर जाना होगा। सरकारी आज्ञा है, चारा नहीं। सारा शहर भाग गया है। मेरे बिना न-जाने यहाँ तुम्हें कितनी असुविधा होगी। तुम विनोद को लेकर घर चली जाओ। मैं तुम्हें छोड़ता जाऊँगा, वहाँ निश्चिन्त रह सकोगी।”

“नहीं स्वामी, मैं आपके साथ-ही रहूँगी। प्लेग के भयानक वातावरण में, मैं क्या आपको अकेला जाने दूँगी ?”

“यह तो सब ठीक है, पर स्त्रियों को लेकर सर्वत्र तो नहीं घूमा जाता। फिर प्लेग-प्रबन्ध का भार—यह तो सोचो ! अच्छा, तुम्हारी ही बात रहे, पर बच्चे का तो खयाल करो।”

स्त्री पति से लिपट गई। उसने रोते-रोते कहा—“मुझे आप अकेली न छोड़िये। मैं हाथ जोड़ती हूँ। नहीं तो इस्तीफा देदो।”

“इस्तीफा दे देना अपमानजनक है। मैं जिम्मेदार अफसर हूँ। क्या मुझे ऐसे नाजुक मौके पर इस्तीफा दे देना उचित है ? मुझे दुःख है, कि तुम इस समय ऐसी अधीर हो रही हो।”

थोड़ी देर तक स्त्री चुपचाप टहलती रही। वह अपने हृदय के दुःख को दवाने की चेष्टा कर रही थी। अन्त में उसने दिल कड़ा करके पति का प्रस्ताव स्वीकार किया।

इन दोनों पति-पत्नी का परिचय भी देना होगा। पति का नाम है बाबू दीपनारायणसिंह, और पत्नी का कुमुद। आप डिप्टी-कलक्टर हैं। प्रातःकाल ही दोनों ने यात्रा प्रारम्भ कर दी। गोद का शिशु और एक नौकर साथ था।

रेल में भगदड़ मची थी। प्लेग के कारण भीड़ का ठिकाना न था। तीसरे दर्जे में मुसाफिर ठसाठस भर रहे थे। बाबू साहब और उनकी पत्नी सेकेण्ड-क्लास के डब्बे में बैठे थे। बच्चा सो रहा था। स्त्री ने कहा—“आप इस समय इतने उदास क्यों हैं ?”

“कह नहीं सकता, दिल ऐसा क्यों हो रहा है। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था।”

“रात देर तक ओस में भी तो आप फिरते रहे। जरा आप लेट जाइये न।”

बाबू साहब लेट गये, परन्तु उन्हें नींद नहीं आई। थोड़ी देर में स्टेशन आ गया। यहाँ सरकारी प्रबन्ध था। यहाँ डॉक्टर,

पुलिस और मजिस्ट्रेट सब उपस्थित थे। प्रत्येक यात्री की स्वास्थ्य-परीक्षा होती थी। चेष्टा की जाती थी कि कोई रोगा-कान्त व्यक्ति आगे न जाने पावे।

स्टेशन पर गाड़ी खड़े होते ही मुसाफिरों के चीत्कार से स्टेशन गूँज उठा। प्रत्येक डब्बे की चाभी बन्द थी। सभी लोग डाक्टरी-परीक्षा से घबरा रहे थे। दोपहर हो गया था, देर से पानी न मिला था। अब वे 'पानी-पानी' चिल्ला रहे थे। एक बुढ़िया ने कहा—“हाय ! बच्चे को बुखार हो रहा है, अब क्या करूँ ?”

दूसरी बोली—“ये मुये डाक्टर पकड़-पकड़कर क्या करते हैं ?”

“काली माई की भेंट चढ़ाते हैं !”

दूसरे ने कहा—“अस्पताल में जो गया, सो मरा। वह यम-राज का दूसरा घर है।”

“अजी, इनका तो बाप पैसा है। जिसने पैसा दिया, उसका सब काम हो गया।”

एक ने कहा—“नहीं जी, सरकार तो जो करती है, वह अच्छा ही करती है।”

दूसरा तिनककर बोला—“तब कुएँ-तालाबों में जहर क्यों डलवाया है ?”

“वह जहर नहीं है, दवा है—जो प्लेग के कीड़ों को मारने के लिये है।”

धीरे-धीरे एक डॉक्टर, एक लेडी डाक्टर, और दस-बारह कॉन्स्टेबल और मजिस्ट्रेट का जत्था गाड़ी के पास आया, और एक सिरे से गाड़ी का मुआयना करने लगा।

“सब लोग नीचे उतर आओ और अपने-अपने टिकट निकाल लो ! औरतों को और असबाब, गाड़ी ही में रहने दो !”

यात्रियों ने चुपचाप प्लेटफॉर्म पर कतार बाँध ली।

लेडी-डॉक्टर ने स्त्रियों की, और पुरुषों की जाँच करना प्रारम्भ कर दिया। जाँच क्या थी—छूमंतर था—जरा छुआ, और मुआयना हो गया। परन्तु जिनके चेहरे जरा मैले थे—टिकट प्लेग के स्थानों से था, उनकी खास तौर पर देख-भाल की गई। जिन्हें रोकना होता, उनकी तरफ पुलिस को संकेत करके वे आगे बढ़ते।

चालीस-पचास आदमी इस प्रकार पुलिस के पञ्जे में पहुँच गए। उनमें भी कुछ पूजा कर-करके फिर गाड़ी में लौट रहे थे।

डाक्टरों का दल बाबू साहब के डब्बे के सामने पहुँचा। वे सोये पड़े थे। टिकट-कलक्टर ने डब्बे में घुसकर कहा—“आप कहाँ जायेंगे बाबू?”

कुमुद ने कहा—“उन्हें न जगाइये, उनकी तबीयत ठीक नहीं है।”

“आप कहाँ से आ रही हैं?”

“रामपुर से।”

“वहाँ तो प्लेग है। बाबू को क्या हुआ है?” डाक्टर ने गाड़ी में घुसते-घुसते कहा।

वात-चीत सुनकर बाबू साहब जाग चुके थे। उन्होंने कहा—“और कुछ नहीं; मकान से जरा तबीयत सुस्त हो गई थी, मैं समझता हूँ, जरा सोने से ठीक हो जायगी।”

डाक्टर ने थर्मामीटर लगाकर कहा—“साहब, आपको ज्वर है।”

बाबू साहब और कुमुद, दोनों पर मानो वज्र गिर पड़ा! डाक्टर ने कहा—“आपको आराम होने तक यहाँ ठहरना पड़ेगा।”

“यह तो असम्भव है।”

“आपका आगे जाना और भी असम्भव है।”

“मैं डिप्टी-कलक्टर हूँ, और सरकारी काम से जा रहा हूँ।”

“मैं भी सरकारी काम कर रहा हूँ। मेरा फर्ज है, कि मैं किसी भी सन्दिग्ध रोगी को आगे न जाने दूँ।”

“पर मैं रोगी नहीं हूँ।”

“क्षमा कीजिये, यह निर्णय करना मेरा काम है।”

“मैं अभी कमिश्नर को तार दूँगा।”

“आप चाहे भी कुछ करें।”

“सरकारी काम में यदि विलम्ब हुआ, तो उसके जिम्मेदार आप होंगे।”

“इन बातों से मुझे कोई सरोकार नहीं।”

“खैर, मेरे साथ मेरी स्त्री और नौकर है, उन्हें आप मेरे साथ रहने की व्यवस्था कर देंगे?”

“यह असम्भव है।”

“तब वे लोग अलहदा ठहरेंगे कहाँ?”

“यह मेरे विचार का विषय नहीं।”

“आप बड़े निर्दयी प्रतीत होते हैं।”

डॉक्टर क्रुद्ध हो कर बिना जवाब दिये कान्स्टेबल को संकेत कर, गाड़ी से उतर गये। विवश होकर, बाबू साहब को उतरना पड़ा। उन्होंने स्त्री से कहा—“तुम भोलू के साथ धर्मशाला में ठहरो, मैं तार भेजकर सुबह तक सब प्रबन्ध कर लूँगा।”

कुमुद ने धैर्य से पति की विवशता देख, आज्ञा माँगी, और पुलिस के पहरे में बाबू साहब अस्पताल में पहुँचाये गये।

बाबू साहब की रात कैसे कटी—यह जानने का कोई उपाय बेचारी कुमुद के पास न था। नौकर इतना योग्य न था, कि वह कुछ खबर लाता। फिर, वह उसे भेजते हुए भय खाती थी, कि

वह अकेली कैसे रहेगी ? विवश होकर वह बच्चे को छाती से लगा, धर्मशाला में रात काटने चली गई और बड़ी कठिनाता से उसने रात कटी ।

अभी प्रभात हुआ ही था, कि पुलिस के दो-तीन आदमी वहाँ आये और सूचना दी, कि आपके पति को प्लेग का आक्रमण हुआ है और उनकी हालत खतरनाक है । कमिश्नर साहब ने तार के जरिये उनके ठहरने और चिकित्सा का पृथक् प्रबन्ध कर दिया है । अब आप चलकर उनके पास ठहर सकती हैं ।

सब-कुछ सुनकर कुमुद को काट मार गया । वह मानो संज्ञा-विहीन हो गई । ईश्वर को ध्या करना है—इसकी किसे खबर ? वह झटपट पति की सेवा में जाने को तैयार हो गई ।

अस्पताल के एक पृथक और प्रशस्त कमरे में बाबू साहब का प्रबन्ध किया गया था । वे मूर्छित अवस्था में पड़े हुए थे । कुमुद उनकी तरफ दौड़ी । परिचारिका ने कहा—“उत्तम हो, आप इनसे सस्पर्श न करें । यह छूत का भयानक रोग है, आप पर आँच आने का भय है ।”

“ओह, मुझे उसका भय नहीं, यह समय इन बातों के विचार करने का नहीं ।”

“परन्तु बच्चे का खयाल तो आपको रखना है ।”

कुमुद कुछ क्षण रुकी । इसके बाद उसे नौकर की गोद में देकर कहा—“इसे दूसरे कमरे में ले जा ।” इसके बाद ही वह पति का सिर गोद में लेकर बैठ गई ।

दो दिन व्यतीत हो गये । कुमुद ने अन्न-जल भी नहीं ग्रहण किया है । वह परमेश्वर से लौ लगाये बैठी है । उसके सौभाग्य पर भयानक संकट आया है । क्या यह समय टल जायगा ? वह

बारम्बार ईश्वर को पुकारती थी, रोती थी, और स्वयं ही ढाँढ़स बाँध लेती थी। ईश्वर को छोड़कर उसका कहीं ठौर न था।

दूसरे दिन, तीसरे पहर घर के सभी लोग वहाँ आ गये। शहर के आफीसरों ने भी अच्छे-से-अच्छा प्रबन्ध कर दिया। कई प्रतिष्ठित डाक्टरों ने मिलकर चिकित्सा प्रारम्भ कर दी। कुमुद स्थिर होकर पति के पलंग के पास बैठी है। डाक्टर की योजना पर ठीक समय पर दवा और पथ्य देती है। मलमूत्र स्वयं साफ करती है।

परन्तु भावी प्रबल है। सब-कुछ होने पर भी बाबू साहब की दशा क्षण-क्षण पर खराब होती जा रही है। लोगों की आशा भी टूटने लगी। लोग हताश और अनमने होने लगे। कुमुद के लिये यह मानों वज्र-सम्वाद था। वह आशा के कच्चे तार के सहारे चुपचाप बैठी अपना कर्त्तव्य-पालन कर रही थी। एक बार वह बैठी-बैठी चक्कर खाकर गिर पड़ी। सिर से रक्त की धार वह चली। वह बेहोश हो गई। डाक्टरों ने उपचार किया पर होश में आते ही वह फिर पति के पलंग पर आ-बैठी। वह कई दिन से सोई न थी, और नींद उसपर आक्रमण कर रही थी। उसकी आँखें भूषी पड़ती थीं, और सिर लटका पड़ता था। सभी लोग उससे जरा सो रहने के लिए आग्रह करते थे, परन्तु इस समय उसके सोभाग्य-सिंदूर पुछने की घड़ी निकट आ रही थी। सदा के लिये उसके प्रिय पति की जुदाई का समय आ रहा था। उसके जीवन की तमाम आशा और भरोसों का सुख-सूर्य डूबने वाला था। वह सोती कैसे? पलक भी कैसे मारती? न-जाने कब वह घड़ी आजाय, और कब उसके जीवन में वह दारुण क्षण टूट पड़े! अन्त में वह क्षण भी उसी के नेत्रों के देखते-देखते आ गया, और उसके परम प्रिय पति ने अपनी अन्तिम श्वास पूरी

की ! कुमुद एक बार एकाएक खड़ी होकर चीख उठी, फिर वह धड़ाम से धरती पर गिर गई । डाक्टरों ने समझा, कि यह भी मर गई । परन्तु फिर देखा, साँस चल रही है । वे उसे होश में लाने के उपचार करने लगे । एक घन्टे में उसे होश आया । होश में आते ही प्रथम तो वह कुछ देर विमूढ़-सी बनी बैठी रही । उसने चारों तरफ आँखें फाड़-फाड़कर देखा, मानों वह उस भयानक दुर्घटना को भूल गई थी, पर जब उसकी दृष्टि पति की लाश पर पड़ी, तो वह एकदम कपड़े फाड़ने और पागल की तरह असम्बद्ध बकने लगी । उसकी दशा देखकर देखनेवालों का कलेजा मुँह को आता था । पर उसे समझाना-बुझाना सम्भव ही न था । दो-तीन स्त्रियाँ उसे कसकर पकड़े हुई थीं । वह बीच-बीच में जब बेहोश हो जाती, तब कुछ मिनिट को वह शान्त हो जाती, पर होश में आते ही वह फिर उसी भाँति चिल्लाने लगती ।

अन्ततः बाबू साहब की अन्त्येष्टि-क्रिया की गई । तीन दिन सब वहीं रहे । इसके बाद अर्द्धविक्षिप्त कुमुद, रूप, शोभा, सौभाग्य सबको खोकर विधवा वेश में पति-घर को लौटी ।

१४

कुमुद की ससुराल बहुत बड़ी थी । ससुर, सास, जिठानी, झोरानी, देवर, जेट, उनके बच्चे, दो कुँवारी एक ब्याही, एक विधवा ननंद और एक विधवा मौसी थी । दो-चार दास-दासी भी थे । बड़ी भारी हवेली थी ।

कुमुद की सभी खातिर करते थे । सास उसे कमाऊ पुत्र की बहू समझकर आँखों पर रखती थी, कुमुद जब कभी दस-बीस

दिन को जाती, हाथों-हाथ उसकी खातिर होती। ननंद-जिठानी उससे कुछ प्राप्त करने के लालच में उसकी लल्लो-चप्पो में लगी रहती। नोकर-दासी इनाम-कपड़ा पाने के लोभ में उसकी बड़ी सेवा बजाते। कुमुद मन की उदार, हृदय की मधुर और हाथ की खुली थी। वह बड़ी हँसमुख भी थी। हास्य का फव्वारा सदैव उसके मुख से झड़ा करता था। उसकी सखी-सहेलियों की-भी कमी न थी। जब-जब वह ससुराल में रहती—बस, एक जमघट उसके कमरे में दिन-भर बना रहता था।

वह वास्तव में उदार और मिष्ट-भाषिणी ही न थी। वह सास, ससुर, जिठानी और ननंदों की छोटी-बड़ी सेवायें दास-दासी के रहते अपने हाथों से करती। एक वक्त का भोजन भी स्वयं बनाती। घर की किसी भी स्त्री को काम ही न करने देती। जिठानियों के बच्चों का लाड़-प्यार करते उसका दिन बीतता था। उन्हे नये-नये वस्त्र पहनाना, खिलाना, नहलाना-धुलाना उसका धन्धा था। सबसे 'जी' कहकर बोलना और हुक्म के साथ उठ खड़ा होना उसका व्यवहार था।

जिठानी-शोरानी कुम्ह देहाती स्त्रियाँ थीं। सास भोली और वृद्धा थी। प्रायः घर गन्दा, अव्यवस्थित और देहती ढंग पर पड़ा रहता। उसे आदत थी, अँग्रेजी ढंग से सजे वँगले में रहने की—बड़ी नफासत और सुघराई के साथ। सो, वह आते-ही घर का संस्कार शुरू कर देती। उसने नौकरों के वेतन भी बढ़ा दिये थे। गरज, घर में सभी उससे सन्तुष्ट और प्रसन्न थे, और वह सबकी प्रिय पुतली, सबके हृदय की दुलारी, और सबकी आँख की नूर थी। वह साध्वी, गुणवती, सौभाग्यवती स्त्री आज कुछ और ही वेश में उस घर में आ रही थी। वह 'विधवा' थी, अब उसका सर्वस्व नष्ट हो चुका था। क्या संसार में हिन्दू स्त्रियों के वैधव्य

से भी भयानक कोई वस्तु है—जहाँ सब संसार पलट जाता है ? वह मलिन वस्त्र पहने, धरती में पड़ी रहती है । पास-पड़ोसिन, सहेलियाँ, ननंद, जिठानी-धोरानी—मानो उसके लिये कोई नहीं । सब आइं, सब ने भिन्न-भिन्न भाँति से सहानुभूति प्रकट की, पर वह धोली नहीं, रोई भी नहीं, कुछ कहा भी नहीं—जड़वत धरती में पड़ी रही । वह कभी-कभी अपने बच्चे को और जिठानियों के बच्चों को अत्यन्त सत्पुण नेत्रों से देखा करती, पर उन्हें छूती नहां, बात भी नहीं करती । सर्दी-गर्मी, भूख-प्यास, सुखदुःख से परे—मानो वह विदेह-रूपमें साँस ले रही थी । जीवनबन्धन उसका टूट चुका था, वह मानों जीवन्मुक्त थी । धीरे-धीरे शोक पुराना होने लगा । कुमुद कुछ खाने और अति संक्षेप में बातचीत करने लगी । घरकी स्त्रियाँ भी धीरे-धीरे उस दुखिया के दारुण दुःख को उपेक्षा से देखने लगीं । करोड़ों ही विधवाएँ हिन्दू-घरों में इस दारुण दुःखको लेकर जी रही हैं । फिर इसमें नवीनता क्या है ?

दो मास व्यतीत हो गए । इसी बीच में मुकुद में यह परिवर्तन आ गया कि उसका वह हास्य सदा को उड़ गया । दूसरे वह किसी भी सखी-सहेली से बात तक न कर, प्रायः मौन ही रहने लगी । उस घर की सभी स्त्रियों के मन में उसके प्रति आदर और प्रेम का भाव नष्ट हो गया । कुमुद विदुषी थी । वह सब-कुछ समझ गई; और सब-कुछ सहने को तैयार भी हो गई । पति को सभी कमाई अपने आभूषण-सहित उसने दान-पुण्य में खर्च कर दी । सिर्फ उनके बीमे के १० हजार रुपये, बच्चे के समर्थ होने पर उसकी शिक्षा के लिये बैंक में उठा रक्खे । धीरे-धीरे रामायण के पढ़ने में उसने मन लगाया । वह प्रायः उसे चुपचाप पढ़ा करती, और आँसू बहाया करती थी ।

उसकी यह एकान्तप्रियता और मौनावलम्बन घर की स्त्रियों

को खटकने लगा । शीघ्र-ही उसपर ताने कसे जाने लगे, वह घर का कुछ भी धन्धा न करके पुस्तक पढ़ा करती है—इसपर खुल्लम-खुल्ला आक्षेप होने लगे ।

कुमुद ने सब-कुछ सहने का निश्चय कर लिया था । वह एक बार भोजन करती, और चटाई पर बैठी रामायण-पाठ करते-करते उमीपर सो रहती । भोजन ताजा है या बासी, रुखा है या सूखा, कम है या यथेष्ट—इसकी विवेचना से उसे कुछ प्रयोजन नहीं । अन्त में एक दिन वह भी हुआ, जो बहुधा होता है । कुमुद को ज्वर आ गया था, वह चटाई पर चुपचाप पड़ी थी । जिठानी ने कहा—“बहू, इस तरह पड़े-पड़े तो शरीर मिट्टी हो जायगा; कुछ काम धन्धा किया करो ।”

कुमुद बोली नहीं, चुपचाप एकटक देखती रही । जिठानी ने जरा-उच्च स्वर में कहा—“क्या गूंगी हो, जवाब ही नहीं देती ? या हम तुमसे बोलने के योग्य नहीं ?”

कुमुद अब भी चुप रही । यह देख, जिठानी क्रोध से थर-थर काँपने लगी । उसने चिल्ला चिल्लाकर कहना शुरू किया—“अरे ! देखो, इस राँड़ की आँखों, इसका खसम कमाकर रख गया है, रानी पड़ी-पड़ी खायेगी । घर का काम-धन्धा तो करेगी नहीं, किसी आदमी से बात भी न करेगी ।”

घर-भर में हल्ला मच गया । सभी अपनी अपनी बकती थीं, पर कुमुद ने एक शब्द भी नहीं कहा । वह चुपचाप चटाई पर पड़ी रही ।

वृद्धा सास ने आकर कहा—“क्या है री, क्यों उसे तङ्ग कर रही है ?”

“उसे अम्माजी—तुम माथे पर रख लो ।”

“वह तुम्हारा क्या खाती है ?”

“उसका खसम तो बहुत कमाकर रख गया है न ।”

बृद्धा ने उन्हें ए. ५ फिड़की दी, और कुमुद के माथे को छुसा ।
उससे कहा—“बहू उठ, खाट पर सो रह; तुम्हें ज्वर हो रहा है ।” कुमुद मोली नहीं, उठी भी नहीं । हाँ, उसकी आँखों से टप-टप आँसू टपकने लगे ।

२२

गर्मी के तो दिन थे ही, सन्ध्या को भोजन करके हरनारायण कोठे पर मजे से पड़े पान कचर रहे थे । तभी श्रीमती हरदेई ने पहुँचकर कहा—

“बड़े सुख से लेट रहे हो !”

हरनारायण आज जरा खुश थे । उन्होंने हँसते-हँसते कहा—

“सुख से लेटना तो कोई पाप नहीं है ।”

“तुम्हारे घर में पाप है ही क्या ?”

“बड़ी आफत है—तुम्हारी एक-एक बात गर्मा-गर्म होती है ।”

“पर तुम ऐसे शीतल परसाद—कि गर्मी छू नहीं जाती ।”

हरनारायण ने देखा यह केवल उपहास ही नहीं है—जरूर कोई बात है । हँसी रोककर बोले—“आज फिर कोई सुखी लाई हो क्या ?”

अब हरदेई ने एकदम मामला साफ करने की गरज से एक तोड़ा-मरोड़ा कागज उनके हाथ में देकर कहा—“लो, इसे पढ़कर तो देखो ।”

हरनारायण ने उसे हाथ में लेकर हँसते-हँसते कहा—“हम बिना पढ़े ही समझ गये—तुम्हारे भाई साहब की चिट्ठी आई है। कह डालो, कब की तैयारी है? मुझे तुम्हारी खसती मन्जूर है—बस, अब तो खुश हो?”

हरदेई ने कपाल ठोककर कहा—“हाय कर्म! इसे पढ़ो तो, या मनमाना मतलब समझकर ही छुट्टी पाई?”

हरनारायण अभीतक मौज में आ रहे थे, बोले—“तो इस अँधेरे में कैसे पढ़ा जाय? जरा मुँह पास लाओ, शायद उसकी रोशनी में पढ़ सकूँ।”

हरदेई ने झुँझलाकर कहा—“भाड़ में जाय तुम्हारी हँसी! आठ पहर को क्या हँसी?”

“तो फिर तुम्हीं सुना दो—इसमें क्या लिखा है।”

अब की बार हरदेई को क्रोध चढ़ आया। उसने तड़पकर कहा—“जरा होश में आकर बैठो, सर्वनाश हो गया! अपनी इज्जत की-भी कुछ खबर है?”

अब हरनारायण उठकर कहने लगे—“कहती क्या हो? क्या सर्वनाश हुआ?” वे बिना ही उत्तर की प्रतीक्षा के कमरे में आकर पुर्जा पढ़ने लगे।

पुर्जे पर पेन्सिल से लिखा था—

प्यारी भगवती!

दो दिन जी ललचाकर तुमने एकदम इधर की सुध ही भुला दी। उस दिन तुम परसों जरूर-जरूर आने का वादा करके गई थीं, पर वह ‘परसों’ आज तक न आई—१५ दिन बीत गये हैं। छजिया रोज हारकर लौट आती है। तुम भाई के डर का बहाना करके टाल देती हो। पर यह डर तुम्हारा फजूल है। अब तक

जैसे चुपचाप काम हुआ है, वैसे ही सदा होगा। मैंने ब्याह की बावत आर्य-समाज के पंडित से पूछा था, सो उसने कहा कि उसके माँ-बाप को राजी कर लो, ब्याह हम करा देंगे। अब तुम मौका पाकर उनको टटोलना। पक्का बायदा करो—कब मिलोगी। मेरा एक-एक पल सौ-सौ वर्ष का कटता है। ज्यादा क्या लिखूँ ? आज थोड़ा कुछ भेजता हूँ। छजिया को जवाब देना। चिट्ठी पढ़कर फाड़ डालना।

तुम्हारा दास,

हरगोविन्द

चिट्ठी पढ़कर हरनारायण के तो होश उड़ गये। वे भौंचक-से खड़े, खी की ओर ताकते रहे। हरदेई ने कहा—‘क्यों ? समझे न अब बहन की करतूत ?’

उसकी बात मानों अनसुनी करके उन्होंने पूछा—‘यह पुर्जा तुम्हें मिला कहाँ ?’

‘सुखिया कहीं से आई थी—वह खेलती फिर रही थी। किरपू उससे छीनने-भगड़ने लगा। सुखिया मचलकर धरती पर पड़ गई। तब मैं किरपू से छीनकर उसे बहलाने लगी ? अचानक लिखावट पर नजर पड़ी। पहले तो समझा, कोई रद्दी कागज होगा। पर छजिया का नाम लिखा देखकर जो पढ़ा, तो पता लगा कि इसमें कौतुक भरे पड़े हैं।’

हरनारायण बिना कुछ कहे, भगवती के कमरे की ओर दौड़े ! उस समय वे क्रोध से पागल हो रहे थे।

भगवती बैठी हुई हरगोविन्द की भेजी हुई मिठाई खा रही थी। अभी रसगुल्ले का एक टुकड़ा उठाकर मुँह में रखा ही था, कि इतने में उसके कान में आवाज पड़ी—“भग्गो ! भग्गो ! अरी भग्गो ! कहाँ गई ?”

भगवती भाई की आवाज पहचानकर, एकदम घबरा उठी। उसका खून थम गया। उसने मुँह की मिठाई खाट के नीचे थूककर और जल्दी-से मुँह पोछकर कहा—“हाँ भाई ! आती हूँ।” इतना कहकर, और जल्दी-से मिठाई को बिस्तरे में छिपाकर बाहर को दौड़ी। बाहर हरनारायण को देखकर कहा—“क्यों भैया ! क्या है ? तुमने मुझे पुकारा था !”

हरनारायण ने कड़ी नजर से उसकी ओर देखकर कहा—“तू कर क्या रही थी ?”

भगवती ने सिटपिटाकर कहा—“मैं ? मैं कुछ नहीं—पढ़ रही थी।”

“हूँ, पढ़ रही थी ? अँधेरे में बिना दिये-बत्ती के क्या पढ़ रही थी ?”

भगवती का खून सूख गया। उसने सम्हलकर कहा—“भैया ! मुझे पढ़ते-पढ़ते अभी नींद आ गई थी। तुमने क्या मुझे कई आवाजें दी थीं ?”

इतना कहकर उसने भाई के क्रुद्ध मुख को देखा। उसे देखकर उसके रहे-सहे होश भी जाते रहे। हरनारायण ने उसे अग्नि-मय दृष्टि से देखकर कहा—“अभागिनी ! तू वहाँ क्यों गई थी ?”

अब तो भगवती थर-थर काँपने लगी । पर उसने सावधान होकर जवाब दिया—“कहाँ भैया ?”

“कम्बख्त लड़की ! तुझे यहीं जमीन में गाड़ दूँगा । इस बहानेवाजी को छोड़कर जवाब दे । सच बता, तू वहाँ क्यों गई थी ? नहीं तो आज तेरी शामत आई रखी है ।”

भगवती के सारे शरीर में आग-सी लग रही थी । घर के छप्पर, द्वार घूमते दीखते थे । अब की बार वह कुछ न बोल सकी । हरनारायण और क्रुद्ध होकर बोले—“जिन्दी है, कि मर गई ? मेरी बात का जवाब दे !”

भगवती ने रोकर कहा—“मैं तो कहीं नहीं गई भैया !”

“तू कहीं भी नहीं गई ? सच कहती है ? अच्छा, इस चिट्ठी में क्या लिखा है ?”

अब तो भगवती का चेहरा पीला पड़ गया । उसका सारा शरीर पसीने से शराबोर हो गया । वह चिट्ठी को हाथ में लिये नीची दृष्टि किये खड़ी रही । हरनारायण ने कड़ककर कहा—“बोल—इस चिट्ठी में क्या है ?”

“मैं क्या जानूँ ?”

“तू कुछ नहीं जानती ? इसमें क्या लिखा है ? पढ़ तो सही ?”

भगवती चुपचाप नीचा सिर किये खड़ी रही ।

हरनारायण ने उसकी गरदन में झटका देकर कहा—“बोल, तेरी जवान दूट तो नहीं गई ?”

भगवती ने रोते-रोते कहा—“मुझे क्या खबर ?”

अब हरनारायण अपना क्रोध न रोक सके । उन्होंने तड़पकर दो थप्पड़ उसके मुँहपर जड़ दिये, और दाँत कटकटा

कर कहा—“अभागिनी कलंकिनी ! तेरे ये लच्छन ? अच्छा, भीतर तो चल ।”

भगवती का शरीर सौ मन का हो रहा था । हरनारायण उसका हाथ घसीटकर ले चले । सबसे प्रथम उनकी दृष्टि मिठाई पर पड़ी, बिस्तरे में से दोना चमक रहा था । उसे निकालकर हाथ में लेते ही वे भौंचक-से रह गये । उनके मुख से निकल पड़ा—“सर्वनाश ! हत्यारी, तू इसी ग्रन्थ का पाठ कर रही होगी ?”

फिर उन्होंने दूसरी चीजों को देखना शुरू किया—लेवण्डर, कंधे, शीशी, इत्र, और तरह-तरह के सामान । इन सबको देखकर हरनारायण के होश फाख्ता हो गये । उन्होंने दुखी होकर, रुंधे कण्ठ से कहा—‘हाय, ! हम क्या अब तक सो रहे थे ?’

इतने ही में उनकी दृष्टि पुस्तकों पर पड़ी । उन्होंने देखा—एक पुस्तक का नाम था, ‘तोता-मैना का किस्सा ।’ दूसरी उठाई, वह थी, ‘हरदेवसहाय का बारहमासा ।’ तीसरी उठाकर देखा, वह था ‘दिल्लगन नावल’ चौथी पुस्तक उठाई, वह थी—‘सच्चा आशिक’ पाँचवीं को देखा, वह थी ‘वहारे बुलबुल ।’ अब हरनारायण उन्हें बिना देखे ही फाड़-फाड़कर फेंकन लगे । क्रोध में आकर बोले—“हत्यारी, डायन ! तुझे यही सब किताबें पढ़ने को रही थीं ? इसीलिये तूने पढ़ना सीखा था ?” इतना कहकर हरनारायण रस्ती लेकर उसे मारने को दूट पड़े ।

बालिका, पापिनी बालिका, अपराविनी बालिका, अपना अपराध समझ गई थी । वह किस मुँह से रोती—क्षमा-प्रार्थना करती, हाय-हाय करती—वह केवल छटपटा कर भूमि पर लोटने लगी । हरनारायण आपे में नहीं था । वह पशु की तरह उस भूमि पर लोटती हुई को सपासप रस्ती की मार दे रहा था । बालिका ने रक्षा के लिये दोनों हाथ उठा दिये । हाथ जोड़कर,

गिड़गिड़ाकर दया-प्रार्थना चाही, पर उसके मुहँ से एक भी शब्द न निकला। उसकी जीभ तालू से सट गई थी। उसके डबडबाये हुए करुणापूर्ण नेत्र, अध-खुले दाँत, बँधे हुए हाथ निरन्तर भाई से दया की प्रार्थना कर रहे थे। पर भाई का लक्ष्य क्या उधर था ? उसके हाथ इस प्रकार चल रहे थे, मानो कोई लकड़हारा कुल्हाड़ा से लकड़ी काट रहा हो। बालिका अन्ततः हाड़माँस की बनी थी। दुखिया तो थी, पर कोमलाङ्गी भी थी; परन्तु कोमलाङ्गी होने से क्या हुआ ? कठोर लोहा भी स्थिर होकर चोट को नहीं सह सकता है। मार लगते लगते उसकी चमड़ी उमड़ गई। पीठ पर, छाती पर, गले में, मुँह पर नीले-नीले दाग उभर आये। बाँहें खून से लतपत हो गईं। उसके दोनों हाथ, जो अनुनय को भीख माँगने को ऊपर उठे हुए थे, शिथिल होने लगे, और अन्त में धरती में आ-गिरे। छटपटाना भी कम हुआ। आँखें बन्द हो गईं। बालिका मूर्च्छित होकर निश्चेष्ट पड़ गई। दया के धाम, संसार के स्वामी ने ऐसे ही अवसर के लिये मूर्छा की सृष्टि की है। निर्बल, निस्सहाय प्राणी जब किसी तरह वेदना को सहन नहीं कर सकता, तब मूर्च्छा कैसी प्यारी सखी का काम देती है—यह वर्णन करने की बात नहीं है।

हरनारायण ने देखा, कि लड़की मूर्च्छित हो गई है। तब उसका हाथ धीमा पड़ा—वह रस्सी एक ओर फेंककर हाँफते और बड़बड़ाने लगे—हतभाग्य, कुलबोरनी ! कलङ्किनी ! तू जन्मते ही क्या न मर गई थी !!!

ठीक है महाशय ! उसका वश चलेगा तो वह मर जायेगी। पर, मैं यह पृच्छता हूँ कि इस पाप-पथ पर अग्रसर होने का सब अपराध क्या उसी का है ? इतना कठोर दण्ड ! ऐसा अमानुषिक व्यवहार ! ऐसी राक्षसी मार जो तुमने उसको दी है—उसका

अपराध क्या ऐसा था ? उसमें तुम्हारा, तुम्हारे बाप का, तुम्हारे परिवार का, तुम्हारी जाति का और तुम्हारे धर्म का कुछ भी अपराध नहीं है ? जिस प्रकार मोरी और नवादान में घर-भर की सारी गन्दगी डालकर घरको स्वच्छ रखते हैं—हिन्दू-धर्म में इसी प्रकार स्त्रियाँ भी सब के पाप को अपने सिर ओढ़े रहती हैं । इससे उनका परलोक तो नष्ट होता ही है—इस लोक में भी भगवती की तरह दलित होती हैं । अच्छा है—चलो, पुरुष तो निष्कलङ्क और स्वच्छ दूध धोये रहते हैं !

२४

उपरोक्त घटना यद्यपि चुपचाप ही हुई थी, भगवती न तो रोई, न विल्लाई; उसके मुँह से कोई शब्द ही निकला । फिर भी उस छोटे-से घर में वह घटना छिपी न रही । जिस समय वालिका भगवती धरती पर मूर्च्छित पड़ी हुई थी, और हरनारायण क्रोध में आग-बबूला होकर अनाप-शनाप धक रहे थे, उसी समय उसकी माता ने कमरे में प्रवेश किया । कोठरी का रँग-ढँग देखकर उसने अकचका कर पूछा—“यह क्या हुआ रे ?”

हरनारायण कुछ देर तक ज्वालामय नेत्रों से माँ की ओर ताककर बड़बड़ाता रहा । गृहिणी ने देखा मासला कुछ संगीन है । उसने गम्भीरता से कहा—“अरे बता तो, कह-हुआ क्या ?”

हरनारायण ने लड़खड़ाती हुई जबान से कहा—“हुआ तेरा सिर ! तुम सब जाकर कुएँ में डूब मरो !”

इतने में हरदेई और नारायणी भी वहीं आ पहुँचीं । हरदेई ने कहा—“माँजी ! क्या पूछती हो, कहने की बात ही नहीं रही !”

गृहिणी ने बहू की ओर फिरकर कहा—“तू हो कुछ बत, बात तो मालूम हो !”

हरदेई ने धीमे स्वर में कहा—“तुम्हारी धी ने खूब जस कमाया है !”

गृहिणी ने झुँझलाकर कहा—“बेहूदी ! क्यों जवान चलाती है, साफ-साफ क्यों नहीं कहती ?”

हरनारायण ने तमककर कहा—“तेरी आँखें तो नहीं फूट गईं । यह देख; अपनी लाड़िली बेटी को, ये सामान तैने ही खरीद कर दिये थे न ?” इतना कहकर उसने एक-एक चीज साबुन, लेवेण्डर, कंधी, इत्रदान, उठा-उठाकर माता के सामने पटक दिये ।

वृद्धा ने पुत्र की ऐसी कड़ी बात कभी नहीं सुनी थी । सुनकर जो उसे क्रोध हुआ था, वह इन चीजों को देखकर काफूर हो गया । वह आतङ्क से आँखें फाड़-फाड़कर पुत्र के मुख को ताकने लगी ।

हरनारायण ने कहा—“अब भी समझी कि नहीं, या और समझाऊँ ?”

इतना कहकर उसने पत्र निकालकर अपनी स्त्री के हाथ पर धरके कहा—“इसे भी सुनादो, जिससे इसके कान खुल जायँ ।”

हरदेई ने पत्र ज्यों-का-त्यों सुना दिया । गृहिणी का माथा घूमने लगा । वह सिर पकड़कर वहाँ बैठ गई । घर में गोल-माल देखकर जयनारायण भी वहाँ आ गये थे, और सब कथा सुन रहे थे । परन्तु उन्हें किसी ने देखा नहीं था । सब-कुछ सुनकर ठण्डी साँस लेकर नीचा सिर किये, वे घर से बाहर निकल गए ।

गृहिणी के हृदय में बड़ी चोट लगी थी । वह कुछ देर तक चुपचाप बज्राहत की भाँति बैठी रही । घर-भर में सनाटा

छा गया। अन्त में वृद्धा अत्यन्त दुःख से छटपटाकर रोने और 'हाय-हाय' करने लगी। हरदेई ने उसका हाथ पकड़कर कहा—
“अब उठो। यह तो जन्म-भर का रोना है—अच्छी तरह आराम से रोना—कर्मों के पाप क्या बिना फले रह सकते हैं।

गृहिणी ने दाँत पीस और छाती कूटकर कहा—“छजिया बन्दी ! तेरे कोढ़ चुए—तेरे मांस को कौवे चील खाँय—तेरे कीड़े पड़ें !! मेरी दूध की बच्ची को तैने जहर पिलाया है। हत्यारी ! मुझे क्या खबर थी, कि इसीलिये तेरे पैर इस घर में पड़े हैं ! हाय हत्यारी, तेरा सर्वनाश हो जाय !” इतना कहकर गृहिणी बिलख-बिलखकर रोने लगी।

हरदेई ने कहा—“मैं रोज देखती थी—जब देखो, खुसुर-फुसुर; जब देखो, तभी जाने क्या-क्या मन्सूबे गाँठा करता था। हमें क्या खबर थी कि यह गजब ढाया जा रहा है !

इतने में हरनारायण ने माता का हाथ पकड़कर कहा—
“चल उठ यहाँ से, देखें—भगवान् की क्या मरजी है।” वृद्धा ने देखा कि पुत्र के मुख पर अब कठोर भाव नहीं है, उसके नेत्रों में आँसू छलछला रहे हैं। वृद्धा उठ खड़ी हुई। सब कमरे से चल दिये।

पाठक, भगवती का क्या हुआ ? उस समय वह सभी के क्रोध और घृणा की पात्री थी। उस घृणित अपराधिनी को कोई क्यों आँख उठाकर देखता ? किसी को क्यों उसपर ममता आती ? वह मरी है या जीती है—इसे जानने की कौन चिन्ता करता ! मार से उसकी चमड़ी उधड़ गई है, मांस निकल आया है, अधमरी हो गई है, प्यास से कण्ठ सूख रहा है, प्राण कण्ठ में आ रहे हैं; फिर भी वह किसी की दया और अनुकम्पा की अधिकारिणी नहीं है। वह पापिनी जो है !

पापिनी पर दया और सहानुभूति दिखानेवाला भी पापी समझा जाता है ; चाहे वह उसका माँ, बाप, भाई, बहन ही क्यों न हो। पाठक ! मनुष्य-समाज की सभ्यता का ऐसा ही नियम है। कोई करे भी तो क्या ? इसीसे उसकी तरफ एक-आँख धिना देखे ही सब चले गए !!!

तब क्या भगवती अकेली मूर्छिता पड़ी है ? नहीं पाठक, एक प्राणी है, जो उसे प्यार करता है। क्यों प्यार करता है, सो हम नहीं जानते। दो बातें हो सकती हैं—या तो वह उसके पाप को नहीं समझती और या उसे उसकी परवाह ही नहीं है। जो हो, वह प्यार करता अवश्य है। तब वह व्यक्त कौन है ? वह है हृत्भागिनी बालिका की अभागिनी बहन नारायणी।

जब तक यह काण्ड होता रहा, वह चुपचाप पत्थर की तरह खड़ी रही। जब सब चले गये, तब वह धीरे-धीरे धरती पर पड़ी हुई बहन के पास घुटनों के बल जा बैठी।

भगवती बड़ी देर की होश में आ गई थी। पर वह कुछ तो भय और लज्जा के मारे चुपचाप पड़ी हुई थी, कुछ तकलीफ के कारण उठने की शक्ति भी उसमें नहीं थी। नारायणी ने धीरे-धीरे उसकी पीठ पर हाथ फेरते-फेरते कहा—“जीजी !”

भगवती ने सुन लिया, पर न वह बोली, न मुँह ऊपर को उठाया।

नारायणी यद्यपि रोने और दुःख से छुटकारा पा चुकी थी, फिर भी उसको आकृति और वाणी अत्यन्त करुणापूर्ण थी—इस समय वह अत्यन्त दुःखी हो रही थी। उसने अत्यन्त करुणाद्रि स्वर से फिर पुकारा—“जीजी !” पर भगवती वैसी ही मौन बनी रही।

अब नारायणी रोने लगी। सब रो चुके थे, वही बच रही

थी, अब उसकी भी बारी आई। वह चुपचाप बहन के ऊपर मुककर रोने लगी, उसके गर्म-गर्म आँसू जब भगवती की पीठ पर गिरे, तो भगवती ने मुँह उठाकर क्षीण स्वर से कहा—“क्यों रोती है नारायणी ?”

नारायणी रोती रही।

भगवती ने उसका हाथ पकड़कर कहा—“अरी, रोती क्यों है ?”

भगवती उठकर बैठ गई। उसने नारायणी के आँसू पोंछकर कहा—“रो मत, अब मैं बैठ गई।”

नारायणी और जोर से रोने लगी।

भगवती ने बार-बार आँसू पोंछकर कहा—“चुप हो जा, न रो ! इतना क्यों रोती है, बता तो ?”

नारायणी ने हिचकी लेते-लेते कहा—“तुम्हारे भाई ने इतना क्यों मारा था ?”

भगवती का कलेजा मुँह को आ गया। उसने जल्दी-से बहन को छाती से चिपका लिया। दोनों में कौन अधिक रो रहा था, यह बताना कठिन है। पर उनका तार टूटता ही न था। दोनों एक-दूसरे को धीरज देने के लिए रोना बन्द करना चाहते थे, पर रोए ही जाते थे। अस्तु, अवसान सबका है—रोने का भी अवसान हुआ। नरो ने बहन की छाती में से सिर निकालकर कहा—“जीजी ! चल, खाट पर सो रह।”

भगवती ने बहन को बहलाने के लिए उसकी बातको स्वीकार कर लेना ही उचित समझा, भगवती चलकर सो रही, नारायणी पास-बैठकर पङ्खा करने लगी।

भगवती ने कहा—“नरो। आ, तू भी यहीं सोजा।”

नारायणी चुपके से बहन के पास जा पड़ी।

प्रभात होने में देर है। ऊषा का उदय हो गया है। तारों की ज्योति फीकी पड़ गई है। पूर्वाकाश में पीली प्रभा की झलक दिखाई दे रही है। शीतल-मन्द सुगन्ध बयार वह रही है। समस्त विश्व सुख की नींद ले रहा है। पर एक एकान्त कोठरी में एक बालिका भयङ्कर ज्वर में तड़पती हुई बेहोश पड़ी है, और दूसरी अत्यन्त बेसवरी के साथ दिन निकलने को प्रतीक्षा में बैठी उसका मुँह निहार-निहार कर और बीच-बीच में उसका शरीर छू-छूकर रो रही है।

धीरे-धीरे और भी कुछ उजाला हुआ। बालिका नारायणी धीरे-से उठकर कोठरी से बाहर हुई। सब पड़े सो रहे थे। नारायणी चुपचाप पैर दबाये माता की कोठरी में घुस गई। देखा, माता बेसुध पड़ी सो रही है। उसने उसका कन्धा हिला-कर कहा—“माँ, माँ जरा उठ तो।”

वृद्धा ने आँख खोलकर कहा—“कौन-नारायणी ? क्या है ?”

“माँ, जीजी को तो चलकर देख—वह कैसी हो रही है ?”

वृद्धा ने माथा सिकोड़ कर कहा—“क्या, कैसी हो रही है ? चल, परे हो यहाँ से ! मरने दे—खबरदार ! जो यहाँ आई !!” इतना कहकर वह मुँह फेरकर पड़ रही। थोड़ी देर तक नारायणी खड़ी-खड़ी सोचती रही, कि अब क्या करे। एकबार उसने फिर माँ का कन्धा छूकर कहा—“माँ ! वह बहुत बीमार हो गई है।”

बुढ़िया ने झुँझला कर कहा—“वह मरे भी किसी तरह ! जब वह मर जाय, तब मुझे खबर देने आना।”

बालिका हताश होकर लौट चली। सोच-विचार कर उसने पिता के पास जाना निश्चय किया। वह डरते-डरते पिता के कमरे में घुस गई।

जयनारायण की आँखों में उस दिन नींद नहीं आई थी, उसने कन्या को देखते ही कहा—“कौन-नरो ? क्यों बेटा, क्या हुआ ?” इतना कहकर वे उठकर पुत्री के पास आ खड़े हुए ।

नारायणी ने काँपते स्वर से कहा—“जीजी बहुत बीमार हो गई है, रात-भर बकती रही है । कभी-कभी उठकर भागती थी । मैंने बड़ी मुश्किल से रोका है । सारा बदन आग की तरह तप रहा है ।”

जयनारायण ने एक ठण्डी साँस लेकर द्वार की तरफ देखा, और चुपचाप भगवती के कमरे की ओर चल दिये । देखा, भगवती ज्वर में बेहोश पड़ी है । तब तक कुछ प्रकाश हो गया था । उसके वस्त्र को उठाकर जो उन्होंने उसका शरीर देखा, तो उनके सिर में चक्कर आ गया । हाय ! शरीर-भर में चमड़ी नहीं बची थी । जयनारायण थोड़ी देर तक अपनी अभागिनी पुत्री की दशा देखते रहे—मानो वह कोई भयङ्कर स्वप्न देख रहे थे । उनका मुख रह-रहकर भयङ्कर होता जाता था । जयनारायण से वहाँ ठहरा न गया । उन्होंने नारायणी से कहा—“बेटी, मैं अभी बैद्य को बुलाता हूँ, तू यहीं बैठ ।” इतना कहकर वे बाहर आये । देखा, हरनारायण लोटा लेकर शौच जाने की तैयारी में हैं ।

जयनारायण ने दुखी स्वर से कहा—“अरे ? उसे तैने जान से ही मार डाला होता तो अच्छा होता—जिन्दी क्यों छोड़ दिया ! तुझे उस पर कुछ-भी दया नहीं आई ?”

हरनारायण ने कुछ जवाब नहीं दिया । वह ज्वालाभय नेत्रों से पिताको घूरते हुए लोटा लेकर बाहर निकल गया ।

जयनारायण पुत्री के औषधोपचार में लगे ।

विजली के ज्वलन्त प्रकाश में कमरा धक-धक चमक रहा था। उसमें खूब ठाठ से विलायती वस्तुओं की सजावट भी हो रही थी। कमरे के बीचो-बीच एक कोच पर एक सुन्दरी लेटी थी, और एक युवक पास-ही एक आरामकुर्सी पर सामने बैठा उसे मना रहा था। सुन्दरी के वस्त्र महीन और सुगन्धि से तर थे। वे अस्त-व्यस्त बिखर रहे थे। वह युवक पर मान कर रही थी। उसकी किसी आज्ञा का पालन युवक नहीं कर पाया था—यही इस मौन-कोप का विषय था। युवक ने कहा—

“नाराज न हो बसन्ती, मैं इसी हफ्ते में तुम्हारी मनचाही चीज जरूर बनवा दूँगा। अभी रुपये की जरा कमी आ पड़ी है।”

स्त्री ने मुँह फुलाकर कहा—“चलो हटो, आजकल भूठों का बाल भी बाँका नहीं होता। पहिले भूटे भट मर जाया करते थे।”

“लो, अब भूठा समझने लगी।”

“खैर, तुम बड़े सच्चे आदमी सही, परन्तु मिहरबानी करके हमसे न बोलो।”

“तो यों रूठा करोगी।”

“कैसे हमारे रूठने की परवाह है?”

“क्या तुम नहीं जानती, मैं तुम्हें कितना चाहता हूँ?”

“मैं खूब जानती हूँ, तुम अपने रुपयों को चाहते हो।”

“यह भूठ है।”

“ऐ न होता, तो क्या २-३ सौ रुपये के लिये इतना कहलाते?”

“प्रिये, इस वक्त कार-बार का हाल ऐसा ही हो रहा है।”

“तब तुम कार-बार का फिक्र करो।”

“अब गुस्से को थूक दो, मैं इस हफ्ते में जरूर तुम्हारी चीजें ला दूँगा।”

मैं गुस्सा करके कर ही क्या सकती हूँ ? मेरी किस्मत में ही जो नहीं, उसकी क्या बात है ?” इतना कहकर सुन्दरी ने लम्बी साँस खींची ।

“तब मैं समझ गया—तुम मुझसे तनिक भी प्रेम नहीं करती ।”

“तुम्हारी समझ पर पत्थर पड़े !”

“अब यों जली-कटी सुनाओगो ?”

“दिल जजेगा, तो जली ही बात निकलेगी ।”

“अच्छा मैं आग पर पानी डाल देता हूँ ।” इतना कहकर युवक ने एक प्याला शराब का भर उसके ओंठों से लगा दिया । युवती गटागट पी गई । इसके बाद युवक ने कहा—“लो अब एक मुझे पिला दो, फिर हम लोग रस रंज में डूब जायँ ।”

युवती ने प्याला भरकर युवक के होठों से लगा दिया । इसके बाद और एक-एक प्याला चढ़ाकर, दोनों अनाप-शनाप बकने लगे !

युवक ने कहा—“प्यारी बसन्ती, उस छोकरी का भी फिर कुछ हाल-चाल मिला ?”

“उस दर्जिन की बात कहते हो—वह तो उस दिन जो छिटककर भागी, तो फिर दिखाई ही नहीं पड़ी । मैं उस दिन गई भी थी, पर उसने तो रुख ही न मिलाया ।”

उसे मिला लिया जाय, तो मजा ही मजा है । कुछ लोभ लालच दो ?”

“इसका उस पर कुछ असर न पड़ेगा ।”

“यही हाल भगवती का भी था, पर अन्त में आ गई हाथ में या नहीं ?”

“तब इसी तरह तुम मेरा भी जिक्र दूसरी जगह करते होगे ?”

“नहीं, तुम्हें तो मैं दिल से प्यार करता हूँ ।”

“और मुझे नहीं देखते ? घर-द्वार-इज्जत सभी पर लात मार कर आ बैठी हूँ ! तुम्हारे सिवा किसी को जानती तक नहीं ।”

“पर मेरी तिल्ली, उस दर्जिन को हथियाओ, तो बात है ।”

“यह मुश्किल है ।”

“क्यों ?”

“वह किसी और के हथ्ये चढ़ चुकी है ।”

“क्या सच ?”

“एक गबरू जवान रोज ही उसके घर आता है ।”

“ईश्वर की कसम—उसे मैं जान से मार डालूँगा ।”

“क्यों तुम उस अभागिनी के लिये किसी को मारोगे ? और फिर मैं कहाँ जाऊँगी ?”

“तुम्हारे लिये तो जान हाजिर है ।”

“फिर उस पर इतना मन क्यों ?”

“बस, दिल की हालत ही ऐसी हो रही है । नई सूरतें दिल को हमेशा भाती हैं ।”

“तो अब मैं पुरानी हो गई ।”

“लो, तुम तो फिर उखड़ी-उखड़ी बातें करने लगी ! लो, एक प्याला और चढ़ा लो ।”

और एक-एक प्याला दोनों ने साफ किया । इसके बाद क्या बातें हुई—क्या हुआ—उनमें हमारे लिये कुछ सार नहीं ।

२७

ग्यारह बज चुके हैं । जयनारायण के घर में किसी की आँखों में नींद नहीं है—सब मुँह लटकाये उदास मन बैठे हैं । जयनारायण धीरे-धीरे लम्बी साँस ले रहे हैं । उसके साथ ही न-जाने कितने

दुःखोद्गार वायु-मण्डल में मिल जाते हैं ! पास ही उनकी स्त्री बैठी आँसू बहा रही है, और बार-बार भगवान् से मौत की प्रार्थना कर रही है। हरनारायण क्रोध से बेचैन होकर टहल रहे हैं। मालूम होता है, उनके सारे शरीर में आग लग रही है। अन्त में जयनारायण ने करुण दृष्टि से पुत्र की ओर देखकर कहा—
“अब क्या होगा हरनारायण ?”

हरनारायण ने चञ्चल दृष्टि से पिता को घूरते हुए कहा—
“क्या होगा ? जो होना था, सो हुआ है, और जो होना है, वह होगा। इसे भी देखा है—उसे भी देखेंगे।”

जयनारायण मुँह लटकाकर बैठ गए। उन्होंने माथा ठोककर कहा—“हाय ! इसीलिये मैं बूढ़ा हुआ था ? मेरे भाग्य में मरना भी नहीं था—मौत भी माँगने से नहीं आती !”

हरनारायण ने बीच में ही बात काटकर कहा—“मरने से क्या कुल-कलंक धुल जावेगा ?”

“मैं तो न देखूँगा, मेरा आँखें वन्द होने पर जो हो, सो, हो।”

जयनारायण की स्त्री ने बात काटकर कहा—“इन बहकों बातों में क्या धरा है ? काम की बातें करो, जिससे मामला बराबर हो जाय। जो हुआ, सो हुआ अब इस बात पर धूल डालना चाहिए। कुल-स्वानन्दान की लाज सब गई—चुल्लू-भर पानी में डूब मरने की बात हो गई। भगवान् ! यह क्या हुआ !!”

जयनारायण ने मुँह झुकाकर कहा—“क्यों नाहक भगवान्-भगवान् चिल्ला रही हो ? तुम्हारा ही तो पाप है ! अब भगवान् को पुकारने में क्या रक्खा है ? जैसा किया, वैसा भोगो।”

“मैंने क्या किया ?”

“भगवती के पुनर्विवाह का नाम सुनते ही तो ऐसे उछल पड़ी थीं जैसे बिच्छू ने डंक मार दिया हो !”

“और सुनो ! अधरम की बात कैसे मानी जा सकती है ?”

“अब तो तुमने धर्म की रक्षा कर ली ? अब तो तुम्हारा दूध-धोया धर्म फूल उठा ?”

“हमारी तकदीर लूट गई—कपाल में जो लिखा था, सामने आया ।”

“तो उमे भुगतो—फिर यह हाय-हाय क्या ?”

गृहिणी ने करुण दृष्टि से पति की ओर देखकर कहा—“कुछ उपाय करो ।”

“क्या उपाय करूँ ?” यह कह कर जयनारायण ने नर्मी से स्त्री की ओर देखा । अब गृहिणी ने धीरे-से स्वामी के पास खिसकर उनके कान में मुँह रखकर कहा—“अभी घात फूटी नहीं है । एक काम करो—इसे हरसोने में छोड़ आओ । वहाँ मेरी विधवा बहन रहती है । सच बात ठीक हो जायगी ।”

“ठीक क्या बूल हो जायगी ? वहाँ भी बदनामी फैल जायगी ।”

“तो करना क्या है ? इस तरह रोने-धोने से तो काम न चलेगा ।”

जयनारायण कुछ चिन्तित होकर बोले—“हरनारायण, इधर तो आ ।”

हरनारायण उद्विग्न मन से पिता के पास आ बैठे । पिता ने कहा—“गोपाल पोंडे से जाकर सब बात कहनी चाहिये । असल बात तो खोलना नहीं, कहना किसी के लिये जरूरत है ।”

हरनारायण ने मुँह मलाकर घृणा से कहा—“मैं इस कान के लिये कभी न जाऊँगा । सुनेगा—तो क्या कहेगा ? और वह है पूरा लालची, एक बात हाथ लगते हो ‘हो-हुल्लड़’ मचाकर गाँव-भर में बात फैला देगा ।”

“दस रुपये पाते ही ठण्डा पड़ जायगा । मैं उसे खूब जानता हूँ, उसने कितने ही ऐसे काम किये हैं ।”

हरनारायण चुपचाप पिता का प्रस्ताव सुनने लगा । उसके चेहरे का रंग गिरगट की तरह बदलने लगा । क्रोध, भय, घृणा, ग्लानि और दुःख के भाव उसके मन में उथल-पुथल मचा रहे थे । कुछ ठहरकर उसने कहा—“उससे तो अच्छा यही है, कि शहर के डाक्टर-हकीम को कुछ लालच देकर काम निकाल लिया जाय ।

“शहर के डाक्टर-हकीम ! बेटा, उनका मुँह तो बहुत बड़ा होता है । इतना रुपया कहाँ है ? (कुछ पास आकर) मालूम है खूबचन्द चौधरी की बात ? २००) ले लिये, और लड़की को घर बुलाकर इज्जत-आबरू बिगाड़ी । फिर पुलिस में खबर कर दी । देखा था ? कितना थक्कम-फजीता हुआ था ?”

हरनारायण एक-दम हत-बुद्धि हो, बैठ रहे । बड़ी देर तक उनके मुख से शब्द न निकला । उनकी आँखों में अधेरा छा रहा था । जयनारायण बोले—“इससे तो गोपा ! पाँड़े से ही काम लेना ठीक है ।”

“तो तुम्हीं यह काम करो । मेरा तो साहस नहीं होता ।”

जयनारायण कुछ देर ठहरकर और ठण्डी साँस लेकर बोले—“अच्छा बेटा, अपनी सुलच्छनी बेटी के लिये वह काम बूढ़ा बाप ही करेगा । तुम सुख से आराम करो ।” इतना कहकर हृदय के अगाध दुःख को छिपाने के लिये जयनारायण वहाँ से उठ चले ।

उनकी स्त्री अब तक चुपचाप बैठी, बात सुन रही थी । अब उसने भी एक साँस खींचकर कहा—“हा भगवान् ! तुमने यह क्या किया ?”

जयनारायण उसकी ‘आह’ सुनकर लौट पड़े और क्रोध

से पागल होकर बोले—“हत्यारी ! तू बहुत ‘भगवान्-भगवान्’ चिल्लाती है। जो अब की बार तैने भगवान् का नाम, लिया, तो तेरा सिर फोड़ दूँगा।” इतना कह, कुछेक क्षण ज्वाला-भय नेत्रों से स्त्री को देखते रहे, फिर झपट कर बाहर निकल गये। हरनारायण भी सिर नीचा किये घर से बाहर हुए। अकेली गृहणी रोती हुई पड़ी रही।

—:०:—

२८

गोपाल पाँडे का परिचय दिये बिना नहीं चलेगा। इसलिये प्रथम उनका परिचय ही सुनिये। आजकल के कोष के अनुसार इन्हें ‘महात्मा’, ‘हजरत’, ‘देवता’—जो चाहे कह सकते हैं। उम्र इनकी ५५ से ऊँची नहीं है, पर लम्बी दाढ़ी और बड़े-बड़े सिर के बालों से, जो जटा का काम देते हैं, इनकी शोभा और-ही हो गई है। पढ़ने के नाम आप अटक-अटककर कुछ अक्षर उस्ताड़ लेते हैं। आपको दो बातों का बड़ा शौक है, एक भङ्ग पीने का, दूसरा साँप पालने का। दिन-भर में दस-पाँच बार की कोई गिनती नहीं। जब कोई भगत आ जाता, तभी घोटना चलने लगता। इसके सिवा आप को और कुछ काम भी नहीं था। बस, दिन-भर घोटना। यो तो चरस का भी एकाध दम लगाने की आप को कसम नहीं थी, पर शराब के आप एकदम विरोधी थे। उसके गुण-दोष बखानने जब आप बैठते, तो आप की वक्तृता सुनने ही योग्य होती थी। पर किसी-किसी का कथन था, कि जब उनका सम्बन्ध छद्ममोजान से था, तो उन्होंने सब-कुछ खाया-पिया था। भोला का तो यहाँ तक कहना है, कि पाँडेजीको अपनी

आँखों से हमने बोतल लिए छद्मो के घर जाते देखा है। और मछली तो उसने स्वयं कई बार उनके हाथ बेची है। अपनी आयु में उन्होंने तीन बार ब्याह किया, पर न-जाने क्या दैव-कोप था—किसी का सुख इन्हें बड़ा ही नहीं था। साल-डेढ़ साल से अधिक कोई स्त्री नहीं जीवित रही। गिजाज इनका जरा तुर्श है। पहली स्त्री ने एक बार शाक में नमक अधिक डाल दिया; घस, चाकू गर्म करके उसके नाखूनों में घुसेड़ दिया, जिससे फिर ऐसी भूल न हो। पर वह बेचारी अस्पताल में छः मास तक पड़ी रहकर मर गयी।

दूसरी स्त्री को न-जाने क्या हुआ कि भयानक खून थूकने लगी, और दो-ही दिन में मर गई। पड़ोसियों का कहना है कि पाँडेजी की राक्षसी मार का ही कारण था। तीसरी बेचारी के पेट में बच्चा उलट गया, उसी वेदना में परलोक सिधारी। तब से उन्होंने फिर ब्याह नहीं किया। उसके बाद छद्मोजान से उनकी जान-पहचान हुई। पर एक दिन घर में उसकी लाश पाई गई। इसके खून का मुकदमा पाँडेजी पर चला भी, पर सबूत न मिला। फिर भी न-जाने किस सन्देह पर छः मास उन्हें 'बड़े घर' में रहना पड़ा। उसके बाद ही वह महात्मा हो गये। अब जीव के नाम पर इनके घर में साँप ही हैं—साँप पकड़ने में इनका बड़ा नाम है। अनेकों प्रकार के साँप इनके घर में रखे हैं। जब बाजार में महात्माजी निकलते हैं, एक-दो साँप गले में, या कमर में अवश्य सुशोभित रहता है। आँखें आपकी छोटी-छोटी साँप की जैसी ही हैं। शरीर कसरती, बलिष्ठ और रङ्ग गहरा है। बन्धों में साधारण कुतरा, धोती, खड़ाऊँ और गले में रुद्राक्ष की माला, साथे पर भस्म का बड़ा-सा त्रिपुण्ड्र रहता है। कभी-कभी सिर पर साफा भी बाँध लेते हैं। आस पास के गाँवों में सभी गोपाल पाँडे-

को जानते हैं। उनके इनसे अनेक काम निकलते हैं ! सच तो यों है, कि, गोपाल पाँड़े न होते, तो इन गाँववालों का जीना मुश्किल हो जाता। इनमें अनेक गुण हैं। भूत-प्रेत निकालना, जादू-टोना, मन्त्र-ईलाज करना, प्रेम की चुटकी, मारण-मोहन, वशीकरण उच्चाटन—आदि सब प्रयोग इन्हें सिद्ध हैं। स्त्रियों के तो एक-मात्र सब-कुछ पाँड़ेजी ही हैं, और वे उन्हें मानती भी बहुत हैं। नित-नये अनेकों व्यञ्जन, सब से प्रथम पाँड़ेजी की सेवा में पहुँच जाते हैं। फिर भी कुछ लोग इन्हें महा-धूर्त, पाखण्डी, नीच और कुमार्गी कहकर इन्हें गालियाँ दिया करते हैं। कुछ का तो यहाँ तक कथन है, कि उन्होंने उनकी बहू-बेटियों को पथ-भ्रष्ट कर डाला है; जिससे वे कुएँ में गिरकर मर गईं। जो हो, ऐसे ही हमारे गोपाल पाँड़े हैं। अपना मान, सम्मान, इज्जत और कुल-कान बचाने के लिये जयनारायण को इन्हीं की सहायता की जरूरत पड़ी है। न-जाने कितने भलमानसों की पगड़ी ऐसे 'पूतों' के अपवित्र चरणों में ठुकराया करती होगी !!

दोपहर ढल चुका था। एक चेला बैठा था। पाँड़ेजी धीरे धीरे गुनगुनाते हुए पानी में भङ्ग धो रहे थे। ऐसे ही समय में जयनारायण ने उनकी कुटी में प्रवेश किया। जयनारायण को देखते ही उन्मत्त-जैसे नेत्रों को उनकी ओर घुमाकर पाँड़ेजी ने कहा—“ओ हो, दीवानजी ! आओ। अरे गोविन्दा ! जरा एक चटाई तो उठाले !”

जयनारायण संकुचित भाव से प्रणाम करके आस-ही एक चटाई खींचकर बैठ गए, और बोले—“नाहक क्यों तकलीफ करते हैं ? मैं अच्छी तरह बैठ गया हूँ।” पाँड़ेजी ने हँसते-हँसते कहा—“अच्छा ! अच्छा ! आज किधर रास्ता भूल गए ?

जयनारायण ने हृदय का उद्वेग छिपाकर कहा—“कल अमा-

वस्या है न; हरनारायण की माँ ने ज़िद की, कि पाँड़ेजी को नौता दे आओ ।”

पाँड़ेजी ठठाकर हँस पड़े, और बोले—“ओहो ! उतनी-सी बात ! किसी से कहला भेजते, तू मैं आप-ही चला आता ।”

“मैं, इधर माधोदास की ओर चला था । सोचा, कि लगे-हाथ इस काम से भी निपट चलूँ । दर्शन ही होंगे ।”

पाँड़ेजी फिर हँसकर बोले—“दर्शन तो महन्त-महात्मा के होते हैं, बाबा, हम तो आप के दास हैं । जब याद कीजिए, तभी झ्योदी पर जा पहुँचे ।”

“आप क्या किसी महन्त से कम हैं ?” यह कहकर जयनारायण मुस्कराने की चेष्टा करने लगे, पर उनके नेत्रों में घृणा का भाव आ गया ।

पाँड़ेजी दोनों दानों पर हाथ धरकर बोले—“हरे कृष्ण ! हरे कृष्ण ! हम नरक के कीट हैं ! साधू-महात्मा कैसे हो सकते हैं ?”

मन की घृणा को मन ही में दबाकर जयनारायण बोले—“आप चाहे-जो कहें—पर लोग तो ऐसा ही समझते हैं ।”

पाँड़ेजी भंग धोकर इकट्ठा करते-करते बोले—“यह तो उनकी भगती है ।” इतना कह, ऊँचे स्वर से पुकारा—“अरे गोविन्दा ! इधर तो आ । दीवानजी के लिए दूधिया बना ले । भपाके से तैयार कर ।”

जयनारायण ने विनय से हाथ जोड़कर कहा—“मुझे तो माफ़ करें । मुझे जाना है ।—और आप जानते ही हैं, मैं यह सब पीता-बीता नहीं हूँ ।”

पाँड़ेजी ने अत्यन्त आग्रह से कहा—“यह सब न चलेगा । और न हो, आवमन ही कर लेना, पर ठण्डाई पीनी अवश्य पड़ेगी । यह तो देवादिदेव की बूटी है, इसका तिरस्कार क्या ?”

जयनारायण उठते-उठते बोले—“नहीं-नहीं—इसके लिए मुझे कसम समझिए । जिद्द न करें ।” कहकर लगे जूता पहनने ।

पाँडेजी ने कुछ ढीले पड़कर कहा—“यह बात तो अच्छी न रही । बड़ी मुश्किल से तो आए, और योंही चल दिए,—न खातिर न तवाजा !”

जयनारायण ने मुस्कराकर कहा—“सब वहाँ भी आप ही का है, और यह तो मेरा घर है ।” इतना कहकर जान लेकर वे भागे । उनके जाने पर पाँडेजी एक आँख से उनकी ओर घूरते रहे । उनके लाल-लाल मदमाते नेत्र खुशी से फूल उठे थे । इतने में हरिया ने आकर कहा—

‘गुरु, आज यह खुसट क्यों आया ? कैसा नौता है ? आज तक तो साला गालियाँ देता था !’

पाँडेजी ने चेले की ओर झुककर कहा—“इसी के घर न दो दो हथिनी पल रही हैं ? अच्छा, कल देखा जायगा । अब मार लिया है !!”

चेले ने धीरे से कहा—“अब देखेगा गुरु के हथकण्डे ! बड़ी लड़की बड़ी चटक्की है—उसी पर हाथ साफ करना चाहिये । (कुछ पास सरककर) सरनीवाले गोविन्दा से उसकी नैन-सैन है ।—वस, एक इशारे में डोरी पर चढ़ जायगी ।”

महात्माजी ने दबी जवान से पूछा—“सच ! यह कैसे मालूम हुआ ? चीज तो बढ़िया है, पर उस दिन तो राँड गालियाँ देने लगी थी । तुम्हें क्या गोविन्दा ने कुछ न कहा था ?”

“वह साला बड़ा विज्जू है । उसके पेट से बात नहीं फूटती । पर वह छजिया ही उसकी भी खबर लाती है ।” इतना कहकर उसने भेद-भरी दृष्टि से पाँडेजी की ओर देखा ।

पाँडेजी फूलकर कुप्पा हो गए । उन्होंने उमंग से हरिया के

हाथ-में-हाथ मारकर कुछ कहना ही चाहा था, कि पीछे से किसी ने कहा—“जय शंकर बाबा की !”

पाँड़ेजी ने देखा—बन्सी भगत खड़े हैं ।

अब वे हरिया से चटपट ठण्डई बनाने को कहकर हँस-हँस-कर भगतजी से बातें करने लगे ।

२६

आज जयनारायण के घर में पाँड़ेजी का निमन्त्रण है । खाने-पीने का विशेष आयोजन किया गया है । समय पर पाँड़ेजी ने हँसते-हँसते घर में प्रवेश किया । आज वे खूब धन-ठनकर आये थे । रेशमी धोती, हरी फलालेन की बखडी, सिर पर रेशमी साफा, पैरे में खड़ाऊँ और माथे पर भस्म का धड़ा-सा टीका । उन्हें देखते-ही जयनारायण ने बड़े आव-भगत से कहा—“आइए, आइए ! मैं आपका इन्तजार ही कर रहा था !”

पाँड़ेजी ने धरौआपन जताकर कहा—“कुछ ज्यादा देर तो नहीं हुई ?”

“नहीं-नहीं, आइए, भीतर चलिए, सब तैयार है ।”

पाँड़ेजी चारों तरफ भेदभरी-दृष्टि से ताकते-ताकते चले । भीतर आँगन में पहुँचते-ही कहा—“आपके लड़के-बच्चे कहाँ हैं ? सब राजी तो हैं ? लड़की तो दोनो यहाँ हैं ?”

जयनारायण मन का दुःख दबाकर बोले—“हाँ यहीं हैं । सब आपकी दया है ।”

“उन्हें बुलाओ तो—जरा गुरु की भभूत तो दे दूँ ।” इतना कहकर उन्होंने एक पोटली निकाली ।

जयनारायण ने अत्यन्त विनय से कहा—“नरो ! भगो ! यहाँ आओ ! देखो पाँडेजी क्या देते हैं ।” नारायणी चौके में काम कर रही थी, पिता की आवाज सुनते ही आ खड़ी हुई । पाँडेजी ने चट-से उसके माथे पर टीका लगा दिया । फिर चारों तरफ घूरकर देखा, और कहा—“अरे दूसरी कहाँ गई ? अरी आ जल्दी—ले, गुरु का परसाद लेजा ।”

भगवती भीतर चुपचाप उदास बैठी थी । अन्त में वह धीरे-धीरे सकुचाते हुए सामने आ खड़ी हुई । उसे देखते ही पाँडेजी ने कहा—“अरी बावली ! तू अब तक कहाँ थी ? ले !” कहकर उसके माथे पर भी टीका लगा दिया, और जयनारायण से कह—“यह लड़की बड़ी सीधी-सादी दीख पड़ती है, दीवानजी ।”

जयनारायण भगवती को आती देख, मुँह फेरकर खड़े थे । अब उन्होंने बात टालने की गरज से कहा—तो अब भोजन करें, देर हो गई ।” कहकर वे चौके की ओर लपक गये । इससे पाँडेजी का कटाक्ष तथा संकेत, जो उन्होंने भगवती से किया, वे न देख सके । भगवती भी घबराकर भीतर चली गई । पाँडेजी मुस्कराते हुए रसोई की तरफ बढ़े । भोजन के उपरान्त अच्छी दक्षिणा पाकर, पाँडेजी चलने को ही थे, कि जयनारायण ने कहा—“थोड़ी देर बैठक में चलकर विश्राम कीजिये न ?”

पाँडेजी बोले—“बस, अब चलने दो, फिर देखा जायगा ।”

मुझे कुछ जरूरी बातचीत करनी है, क्या आपको बहुत जल्दी है ?”

“ऐसा ? अच्छा चलो—जरूरी काम है, तब भी तुम्हारे लिए छोड़ सकता हूँ ।”

“घात कुछ ऐसी आ पड़ी है, कि आपको तकलीफ दिये बिना न चलेगा ।” यह कहते-कहते जयनारायण के होठ सूख गये ।

“अच्छा, क्या है ? देखता हूँ, आप बुरी तरह घबरा रहे हैं। मेरे लायक कोई काम हो, तो बे-खटके कह डालिए। आपके लिये जान तक हाजिर है, दीवानजी !”

“इसमें क्या शक है, मुझे तो आप पर पूरा भरोसा है !” इतना कहकर जयनारायण ने मन की बात छिपाने के लिये जरा दाँत दिखा दिए।

पाँडेजी बोले—“तो खड़े-खड़े कब तक बातें करेंगे ? चलकर बैठक में बात-चीत करें।”

जयनारायण उन्हें लेकर बैठक में आए।

कुछ देर सन्नाटा रहा। जयनारायण यही सोच रहे थे, कि किस तरह काम की बात चलायें। पाँडेजी बोले—“हाँ, तो अब कहिए, क्या मामला है ?”

जयनारायण कुछ झिझकते हुए बोले—“बात पेट में ही रखने की है, पाँडेजी !”

अब रंग-ढंग देखकर पाँडेजी समझ गए, कोई रङ्गीन मामला है। उन्होंने कहा—“इस पेट में जो बात जाती है, वह जीते-जी बाहर नहीं निकलती। आप बेखटके कह डालिए।”

“काम होने पर आपकी खिदमत भी की जायगी।”

“खैर, तो बात कहिए ?” यह बात धीरे-से कहने के लिए पाँडेजी जयनारायण के और पास खसक आए, और उनके मुँह से अपना कान सटा दिया।

जयनारायण कुछ ठहरकर बोले—“आपकी दवा-दारु से बहुतों का भला होता है, आस-पास के गावों तक में यह बात छिपी नहीं है।”

“यह तो गुरु की कृपा है, हम तो अधम कीट हैं।”

“यह तो आपका बड़प्पन है, पर आज मुझे भी आजमाने की जरूरत पड़ी है.....”

जयनारायण का रङ्ग-ढंग और बात-चीत सुनकर पाँडेजी असल मामला भाँप गए। उन्होंने बीच में बात काटकर धीरे-से कहा—“तो तुम्हें धोखा न होगा, दीवानजी ! गुरु की कृपा से मेरे पास भी वह-वह लटके हैं, कि बस !” इतना कहकर पाँडेजी ने जयनारायण की जाँघ पर हाथ रखकर टीप दिया, और आँखें चलाईं।

जयनारायण बोले—“यही आशा थी, तभी तो आपको तकलीफ दी गई।”

“तो कहिए, मामला क्या है, काम फतह समझो।”

“बात बड़ी बेढंगी है।” इतना कहकर जयनारायण अनुनय और करुणा की दृष्टि से पाँडेजी की ओर देखने लगे। आगे उन्हें कहने का साहस भी न होता था।

पाँडेजी ने कुछ साहस बढ़ाते कहा—“खैर, जो हुई सो हुई, पर उपाय सब बात के हैं। कुछ लड़कियों को हुआ है क्या ? हरवंश चौधरी की बात याद है ? उसकी लड़की का ऊँचा-नीचा पैर पड़ गया, बड़ी मुश्किल पड़ी; उसकी माँ ने मुझे खबर दी, बस, चुटकी बजते-बजते सब ठीक हो गया। जो पीछे से पुलिस आती, तो किसी को इस बात की खबर भी न होती। पर उस झमेले में मेरे भी २००) बिगड़े। साले मेरे ही पीछे पड़ गये।”

जयनारायण काँपकर बोले—“नहीं-नहीं, एक और आदमी है; उसका यही मामला है। इसका तो उपाय करना-ही होगा पाँडेजी। आप पर विश्वास है, तभी यह बात कही है।”

पाँडेजी बड़े घाघ थे। जरा गम्भीर बनकर बोले—“जैसा विश्वास है, वैसा काम भी होगा। पर दीवानजी ‘नाराज न होना,

आप बात छिपाते हैं। (कान में) मुझे तो भगवती के पैर भारी मालूम होते हैं।”

जयनारायण अत्यन्त चंचल हो उठे। उन्होंने रोककर पाँड़ेजी के पैर पकड़ लिए, और हाथ जोड़कर बोले—“मेरी पगड़ी आप के हाथ में है। जैसे हो, इज्जत बचाइए। जन्म-भर अहसान न भूलूँगा।” यह कहकर वे उसके अपवित्र चरणों में लिपट गए।

अब जैसे सिंह अपने छटपटाते शिकार को देखता है, वैसी-ही दृष्टि से उन्हें देखते हुए पाँड़ेजी ने कहा—“इस तरह छटपटाने से तो काम न चलेगा। जब मैं हूँ, तो डर किस बात का है? पर एक बात है।”

“क्या बात?” जयनारायण ने कातर दृष्टि से उसे देखकर कहा। “रुपये १००) खर्च होंगे आपके। हाँ—मामला साफ ही अच्छा होता है।”

“सौ रुपये?” कहकर जयनारायण ऐसी अनुनय दृष्टि से देखने लगे, कि पत्थर भी पसीज जाता।

पर पाँड़ेजी ने अन्यत्र देखते हुए कहा—“यह अधिक नहीं है। कभी-कभी झमेले में पड़कर इससे दूना खर्च कर देना पड़ता है। चौधरो का ही मामला देखिए न?”

“वह तो ठीक है, पर मेरी हैसियत को देखकर माँगिए।”

“अच्छा, और १०) रुपये कम सही। पर इससे कम तो न होगा।” इतना कहकर पाँड़ेजी उठने लगे।

जयनारायण ने पैर पकड़कर कहा—जरा ठहरिए तो सही, अच्छा २५) ले लीजिये।”

“नहीं जी।” इतना कह, और अवज्ञा की हँसी हँसते हुए पाँड़ेजी चलने के लिये अपना दुपट्टा सम्हालने लगे।

जयनारायण उनके पैरों पड़कर गौ की तरह डकाराने और विनती करने लगे। पर उस पत्थर के पसीजने का लक्षण नहीं दीखा। बड़ी खींच-तान से ४०) में फँसला हुआ। बात यह ठहरी, कि २०) पहले दिये जायँ, और बीस काम होने पर।

अब पाँडेजी जेब से तम्बाकू की डिविया निकाल, चूना मलते-मलते बोले—“बस तो करार के रुपए जब पहुँच जावेंगे, का गुरू हो जायगा।”

इस पर जयनारायण ने गिड़गिड़ाकर कहा—“देवना किसी को कानों-कान न मालूम हो, वरना मुझे डूब मरने को जगह न रहेगी।”

“नहीं, ऐसा भी हो सकता है? ऐसी-ऐसी कितनी बात पेट में छिपी पड़ी हैं, पर किसी से कहते थोड़े ही हैं?”

जयनारायण काँप उठे! पाँडेजी के जाने पर उन्होंने सोचा—कैसे भयङ्कर और नीच आदमी को उन्होंने अपनी इज्जत सौंप दी हैं। इसे याद करके वे ऐसे घबराये, कि उस रात एक पल को उनकी आँखें न लगीं।

१६

कुमुद स्नान कर, एक स्वच्छ साड़ी पहिनकर अपनी कोठरी में पूजा करने बैठी थी। वह आँख बन्द किये चुपचाप पति-परमेश्वर का ध्यान कर रही थी। सामने एक चौकी पर राधाकृष्ण की युगल-मूर्ति थी। उससे तनिक हटकर नीचे की ओर खड़ाऊँ का भी एक जोड़ा धरा था, जो भल्ली भाँति

घों-पोछकर धरा गया था उनपर ताजे फूलों का ढेर पड़ा था, सुगन्धित धूप जल रही थी। कुमुद मानस-नेत्रों से पति के दर्शन कर, पुलकित हो रही थी। वह अपनी समस्त वेदना और अपमान भूल गई थी। वह मन-ही-मन कह रही थी—हे स्वामी, हे परमेश्वर, हे शरीर और आत्मा के स्वामी ! जब मैंने यह शरीर और आत्मा, आपको प्रदान ही करदी, तब यह आपकी वस्तु यहाँ रही तो क्या, और वहाँ रही तो क्या। आपकी इस प्यार की वस्तु को मैं क्यों नष्ट करूँगी। क्यों, उस स्मृति-मन्दिर को विध्वंस करूँ, जिसमें गत १२ वर्षों से उस देवता की प्रतिमा मैंने स्थापित की है, जिसने मुझे सौभाग्य दिया, स्त्रीत्व दिया, जीवन दिया और अन्ततः जगत् का एक अनमोल लाल दिया ?

वह अपने मानसिक भावावेश में विभोर हो रही थी। उस समय जीवन और मृत्यु उसकी दृष्टि में कोई घटना ही न थी। वह प्रत्यक्ष अपने प्रिय पति को, अपने अत्यन्त निकट देख रही थी—इतने निकट, जितना कभी भी पति की जीवित अवस्था में वह नहीं देख सकती थी। वह और उसके पतिदेव अब एक थे, शरीर और आत्मा एक हो गई थी। उसने बड़ी देर तक आत्मविवेचन किया, और फिर आँखें खोल दीं। उसने झुककर उन खड़ाऊँओं को छाती से लगा लिया। वह आँखें बन्द कर, बहुत देर तक उसी स्थिति में बैठी रही। थोड़ी देर में उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। परन्तु यह आँसू प्रेम और आनन्द के थे, शोक और उद्वेग के नहीं।

उसने रामायण की पोथी निकाली और धीरे-धीरे उसने उसका पाठ आरम्भ किया। वह अनुसूया-वर्णिता पतिव्रत-धर्म को पढ़ रही थी। उसकी बाणी कोमल, विश्वस्त और स्निग्ध थी। उसे इस बात का तनिक भी गुमान न था, कि अचानक कौन

उससे पीछे चुपचाप आ-खड़ा हुआ है। जब वह तन्मय होकर रागायण-पाठ कर रही थी, तब किसी ने पीछे से एक सुन्दर फूल-माला उसके गले में डाल दी।

कुमुद ने पीछे फिरकर देखा, मालती थी। मालती उसके पड़ोस की एक वकील की विधवा कन्या थी। कुमुद से उसका कुछ वर्ष का स्नेह था। जब मालती विधवा थी, और कुमुद सधवा तथा प्रतिज्ञा और अधिकार की देवी थी, तभी से मालती पर उसका बहुत प्रेम था। मालती चपल स्वभाव की स्त्री थी। उसके पास रूप था, आयु थी, स्वास्थ्य था, धन था, पीहर का निरविरोध वातावरण था, तिसपर नई शिक्षा। वह वैधव्य-धम पर अश्रद्धा करती थी। वैधव्य उसपर अचानक आप हो कर पड़ा था। उसे वैधव्य की चाह न थी। उसकी आँखों में सुन्दर जगत् रम रहा था। उसकी प्रत्येक इन्द्रियाँ चैतन्य और भोग की अभिलाषिणी थी, परन्तु शिक्षा और उच्च परिवार की मर्यादा ने उसे संयमित कर दिया था।

वैधव्य उसपर सजता न था। कुमुद इसीलिये उसे अत्यधिक प्यार करती थी। प्यार को प्यार जानता है ! वह कुमुद की प्राणों से प्यारी सखी थी। जब-जब कुमुद यहाँ आती, मालती का अधिकांश समय यहाँ ही व्यतीत होता। इसके लिये किसी की रोक-टोक न थी कुमुद, मालती को वैधव्य-जीवन की पवित्रता बताता। वह आत्मा का आत्मा के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध पर व्याख्यान देती। वह मृत्यु के हस्तक्षेप को नगण्य बयान करती। यह सब सुनकर मालती कभी तो हँस देती, कभी गम्भीर होकर सुनती। परन्तु वह जब कुमुद के पास से लौटकर जाती, तब बहुधा एकान्त में रोती थी। क्यों ? इसलिये कि वह उन पवित्र विचारों और उच्च आदर्शों के अनुकूल अपने

विचारों को न बना सकती थी। वैधव्य के दुःख से उसका हृदय हाहाकार करता था। वह उस सुखद मनोहर मूर्ति के अभाव को सहन न कर सकती थी, जिसे उसने जी भरके देखा भी न था। उसके चर्म-चक्षु प्रबल थे, वे ज्ञान को भीतर नहीं धँसने देते थे।

परन्तु जब उसने सुना, कि कुमुद पर भी वही वज्र दूट पड़ा—वह विधवा होकर आई है, तो वह कुछ दिन तक तो उसके सम्मुख आने का साहस ही न कर सकी। वह सोचती—कुमुद, मेरी प्यारी सखी अब कैसी हो गई होगी ! पर जब एक दिन उसने उसके समक्ष आने का साहस किया, तो देखा—समुद्र के समान गम्भीर, कुमुद खड़ी है। उसने मालती को प्रेम से गले लगाया, और कहा—“बहन, अब हम तुम परस्पर बहुत ही निकट हो गये।”

मालती फूट पड़ी। वह अपना, और अपनी सखी का दुःख कैसे सह सकती थी ? उसने कहा—“जीजी, तुम कैसे सहोगी ? मैं तो तुम्हारे आसरे सह सकी थी।”

कुमुद ने करुण नेत्रों से मालती को देखा, और कहा—“मालती, अब तू सत्य बात को देख सकेगी। मेरे जान तां मेरे स्वामी मेरे अत्यधिक निकट हो गये हैं।” कुमुद ने बारम्बार मालती को वैधव्य-तत्त्व समझाया।

वैधव्य के कारण कुमुद को तिरस्कार और लाञ्छना की मार पड़ी, उसने कुमुद के सत को मानों अग्नि पर तपा दिया। कुमुद की आँखों में तपस्विनी के समान तेज उत्पन्न हो गया। गम्भीर विवेचना; सहिष्णुता, पवित्रता, धैर्य, यह सब मिलकर कुमुद के चरित्रवान् सौन्दर्य में जब रम गये, तो उसमें एक अद्भुत माधुर्य और तेज आ गया।

मालती पर उसका बहुत-ही प्रभाव पड़ा। कुमुद ने मालती का संकोच और श्वेद—जो उसे कुमुद के दुर्भाग्य पर हुआ था—उसे शीघ्र ही दूर कर दिया, और कुमुद से मालती वैसी-ही प्रसन्नतापूर्वक मिलने लगी। अलवृत्ता उसके मन में कुमुद के प्रति श्रद्धा तथा आदर और बढ़ गया। वह कुमुद की-ही भाँति पूजा-पाठ और रामायण-पाठ में मन लगाने लगी। वह उस अदृष्ट पति का मानस चक्षु से दर्शन पाने की भी इच्छा करने लगी—जिसे उसने वास्तव में कभी भली-भाँति देखा भी न था।

आज अभी वह पूजा से उठकर, उसी पूजा स्थान पर एक माला गूँथकर कुमुद को पहनाने आई थी। माला उसने गूँथी थी—उस अदृष्ट पति-परमेश्वर के लिये, पर वह उस अमूर्त मूर्ति को बहुत चेष्टा करके भी न देख सकी। वह कुछ खिन्न हुई अवश्य, पर बिना देखे वह उस परिश्रम और प्रेम के सम्पुट से युक्त माला को यों-ही नष्ट न कर सकी। उसने सोचा—इस समय उसके हृदय में जो सबसे अधिक निकट है, सबसे अधिक प्रिय है, सबसे अधिक सुन्दर और स्नेहवती है, वही क्यों न इस कोमल-सुरभित-माला को ग्रहण करे ?

वह माला को आँचल में छिपाकर वहाँ ले आई, और रामायण-पाठ करती, कुमुद के गले से उसे पीछे-से पहना दिया। इसके बाद उसने अपने मृणाल-से भुज उस स्नेहवती सखी के गले में डाल दिए।

मालती का ऐसा प्यार पाकर कुमुद गद्गद् हो गई। उसने खींचकर उसे अपनी गोद में बैठा लिया। वह बड़ी देर तक उसे प्रगाढ़ प्रेमके आवेश में हृदय से लगाए रही। फिर उसने कहा—
“मालती, मेरी प्यारी सखी ! मैं तुझे कितना चाहती हूँ ! मैं

अत्यन्त असहाय और अबला हूँ। तू इतना स्नेह इस नन्हें-से हृदय में लिये फिरती है। तू आनन्द और प्रेम की प्रतिमा है। मेरी प्यारी मालती, मेरी इच्छा होती है, तुझे हृदय में रख लूँ।”

मालती की आँखें भर आईं। आज वह अमूर्त-दर्शन करने में अक्षम हो कर अस्वाभाविक रीति से गम्भीर हो गई थी। उसने कहा—“जीजी ! मुझे अपने-जैसा पवित्र बना दो। मेरे हृदय की आग बुझा दो। मुझे शान्त कर दो। मैं जितना-ही शान्त होना चाहती हूँ, उतनी ही अशान्ति मुझे आ-दवाती है। मेरे चर्म-चक्षु और इस अधम शरीर का रोम-रोम उनका भूखा है। मैं उस अमूर्त के दर्शन तो कर-ही नहीं पाती—जिसे तुम अब प्रथम से भी अधिक निकट समझती हो। जीजी, जैसे बने, उनका दर्शन मुझे करा दो।”

कुमुद कुछ देर चुपचाप इस विकल बालिका की बात सुनकर सोचती रही। उसने सोचा, इस प्रेम और आनन्द की मूर्ति पर वैधव्य शाप हो कर गिरा है। यह उसका तेज सहन नहीं कर सकती। वैधव्य का धर्म सहन करने योग्य क्षमता उसमें नहीं है। उसने कुछ न कहा। केवल गले से वह अम्लान पुष्प माला निकालकर मालती की ओर देखने लगी।

मालती ने उसे रोककर कहा—“उसे जीजी, गले ही में पहिने रहो—अभी मत निकालो। मैं हाथ जोड़ती हूँ।”

कुमुद ने कहा—“सुन मालती, देवता के भोग को मनुष्य नहीं ग्रहण कर सकता। यह मनुष्य का अक्षम्य अपराध है।”

मालती इसका अर्थ नहीं समझी। उसने कहा—“देवता का भोग क्या !”

“यह माला; यह देवता के निमित्त की पवित्र वस्तु है। क्या इसे तूने उस अदृष्ट पति के नाम पर ही नहीं बनाया था, जो तेरी

नस-नस में रम रहे हैं, पर जिन्हें तू देख नहीं पाती—जिन्हें देखने को तू कितनी व्याकुल है ?”

मालती ने स्वीकार किया ! उसने कहा—“उस अदृष्ट मूर्ति को किसी भाँति न देखकर मैं यह माला तुम्हारे लिये ला' हूँ, क्योंकि उसके बाद तो फिर तू ही है।”

कुमुद ने माला को आँखों से लगाया, और कहा—“प्यारी मालती, देव-पूजा के फूल विलास के काम नहीं आ-सकते। विलास से, देव-पूजा प्रथम वस्तु है। विलास वह है, जिसमें इन्द्रियाँ अपनी तृष्णा को तृप्त करती हैं। पर देव-पूजा से आत्मा तृप्त होती है; मेरा तेरा सहयोग-सम्बन्ध-सम्भाषण सब विलास है।—क्योंकि उससे इन्द्रियों के विषयों का अत्यन्त सान्निध्य है। देव-पूजा इन्द्रियों की वस्तु नहीं। इस अदृष्ट को तू भी देख सकती है, जब अपनी दृष्टि को चर्म-चतुर्ओं से दूर कर दे। उस वाणी को तू तभी सुन सकती है, जब तेरी श्रवण-शक्ति कान के यन्त्र से अलग हो जाय। वह अन्तर्नाद है; वह तुझमें है। बाहर से भीतर को जा, तुझे वह अनायास ही दीवेंगा। जल्दी न कर। धबरा नहीं। यह माला ले, और उस अदृष्ट देव को अर्पण कर, जो इसका वास्तविक अधिकारी है।”

मालती कुछ भी नहीं समझी। उसने माला, खड़ाओं पर एकत्रित फूलों के ढेर पर डाल दी, और फिर फूट-फूटकर कुमुद के गले से लिपटकर रोने लगी। कुमुद भी निरुपाय हो, मालती के दुख को न सहन कर, फूट पड़ी। दोनों खी-हृदय से रो रहे थे—एक अपने लिये, एक दूसरे के लिये।

राजा साहब ने सुशीला का हाथ पकड़कर कहा—“बेवकूफ लड़की, अब तू जाल में फँस गई !”

सुशीला ने अपना हाथ भटक कर कहा—“आप-जैसे प्रतिष्ठित पुरुषों को गरीब लोगों पर इतना जुल्म करते दया नहीं आती ‘जूआ-चोरी’ करते और भूट धोलेते शर्म नहीं आती ?”

राजा ने निर्लज्जता से हँस दिया। हँसकर कहा—“जुआ-चोरी कैसी ?”

“धोखा देकर जो मुझे बुलाया गया।”

“धोखा दिया किसने ? तू राजी से तो आई है, और अब नखरे करती है !”

“मुझे मालूम न था, कि वह पापिनी बुढ़िया भी इतना दुष्ट है !”

“अब उसे क्यों कोसती है ?”

“आप मुझे चली जाने दीजिये।”

“यह अच्छी कही !”

“मैं कहती हूँ, कि चली जाने दीजिये।”

“वरना ?”

“मैं जान पर खेल जाऊँगी।”

“बाहरी हिम्मत ! मगर साहब, हमारी मुराद तो पूरा कर दो !”

“जीते-जी यह नहीं होगा।”

“तब तू मुझे जोर-जुल्म पर मजबूर करेगी ?”

“भगवान् सहायक हैं।”

“उस दिन तो तू सीधी-साधी मालूम होती थी; आज तू

तू बड़े-बड़े पण्डितों के कान काटती है।” इतना कहकर राजा साहब ने फिर उसका हाथ पकड़ लिया। इस बार जोर करने पर भी सुशीला हाथ छुड़ा न सकी। उसने बहुत जोर लगाया। अन्त में उसने जोर से उनके हाथ में काट खाया।

राजा साहब ने झल्लाकर एक लात सुशीला को मारी। लात खाकर वह दूर जा पड़ी। राजा बाघ की तरह उसपर दूट पड़ा। बड़ी देर तक बेचारी बालिका उस नर-पशु के पंजे से छूटने की चेष्टा करती रही, पर उस पापिष्ठ से उसकी कुछ भी न बसाई। इस बार उसने अवसर पाकर जोर से उनकी नाक पर दाँत गड़ा दिये। दर्द से राजा चीख उठा। वह छूटने को छटपटाने लगा। सुशीला उसके छूटते ही दर्वाजा लाँघ कर बाहर भागी।

बादर जंगल था। वह असहाय बालिका किससे मार्ग पूछे ? जाय कहाँ ? पद-पद पर विपत्ति थी। पीछे राजा का भय और आगे अन्धकार का भयङ्कर मुख-गह्वर ! मार्ग पूछने में भय था ! फिर वहाँ कोई मनुष्य था नहीं। वह चुपचाप एक तरफ को तेजी से चलने लगी। अन्त में चलते-चलते वह एक बड़ी सड़क पर आई ! वहाँ एक पत्थर के ढोंके के सहारे पीठ लगाकर सुस्ताने लगी। यह सोचने लगी कि अब कहाँ जाय ?

घर किधर है, यह मालूम न था। पर जिस घर की विश्वासिनी वृद्धा ने इतना विश्वासघात किया, अब उसपर कैसे विश्वास किया जाय ? वहाँ कैसे अकेले रहा जाय ? तब वह जाय कहाँ ? हठात् उसे स्मरण आया—वह तो प्रकाश को देखने आई थी। वे बहुत बीमार हैं ? वृद्धा की चालाकी को देखते तो यह बात भूठ मालूम होती है। पर वे बीमार हों या नहीं, हर हालत में मुझे वहीं चलना चाहिए। वे जैसा कहें, वह करना चाहिये। इसके सिवा निरापद रहने का और कोई उपाय नहीं।

पर कालेज-होस्टल है कहाँ ? सामने एक कान्स्टेबिल पहरा दे रहा था। सुशीला हिम्मत करके पास जाकर बोली—“भाई, क्या तुम बता सकते हो, कि कालेज-होस्टल यहाँ से कितनी दूर है, और किस तरफ है ?”

सिपाही ने उसे गौर से देखा, और होस्टल का पता बता दिया।

सुशीला को अधिक दूर न चलना पड़ा। एक खाली गाड़ी उधर से आरही थी। उसने उसे रोककर कहा—“चलो कॉलेज-होस्टल।”

सुशीला बैठ गई। गाड़ी घड़घड़ाती चल दी, और शीघ्र ही कालेज-होस्टल आ गया। गाड़ीवाले ने कहा—“यही है कॉलेज-होस्टल।”

सुशीला ने कहा—“तुम उतर कर किसी चपरासी को बुलाओ।”

गाड़ीवाला चपरासी को बुला लाया। सुशीला ने उससे कहा—“प्रकाश बाबू को जानते हो ? लॉ-क्लास में पढ़ते हैं।”

“जी हाँ जानता हूँ।”

“वे हैं ?”

“हैं।”

“तबियत कैसी है ?”

“अभी पढ़ रहे हैं।”

“जरा उन्हें खबर करदो—सुशीला बहन आई हैं, वह तुम्हें बुला रही हैं।”

प्रकाश बाबू चपरासी से सुशीला का आगमन सुनकर अवाक् रह गये। इतनी रात गए एकाएक वह आई क्यों ? वे दौड़कर गाड़ी के निकट आए।

देखा—सुशीला बैठी रो रही है उसने सारी घटना प्रकाश

बाबू को कह सुनाई। प्रकाश की आँखों में खून उतर आया। वे सोचने लगे—अब क्या करना चाहिए। क्षण-भर सोचकर उन्होंने कुछ निश्चय किया, और गाड़ी में बैठकर गाजीवान को शहर चलने की आज्ञा दी। गाड़ी फिर घड़घड़ाती हुई तंग और पेचीले बाजारों में से चली।

एक मकान के द्वार पर गाड़ी रोककर प्रकाश ने पुकारा—
“श्याम ! श्यामनाथ !”

एक मनुष्य-मूर्ति ने खिड़की से सिर निकालकर कहा—
“कौन है ?”

“मैं हूँ प्रकाश, जरा नीचे आओ।”

श्यामनाथ तत्काल नीचे आकर बोले—“खैरियत ?”

“खैरियत ही है। मेरी बहन आई हैं, इन्हें घर में अभी यहाँ रखना होगा। यही कष्ट देने आया हूँ।”

श्यामनाथ ने कहा—“वाह ! कष्ट क्या है। यह क्या तुम्हारा घर नहीं है ? चलो, भीतर माँ है, भाभी तो अभी नैहर गई हैं।” प्रकाश ने कहा—“मैं तो अभी वापस लौट जाऊँगा। होस्टल से यों-ही चला आया हूँ। मैं सुबह मिलूँगा।” इतना कह प्रकाश ने सुशीला की ओर मुड़कर कहा—“सुशीला, ये मेरे परम मित्र श्याम बाबू हैं। घर में इनकी माता हैं। अभी तुम्हें उनके पास कुछ दिन रहना पड़ेगा। उनके साथ भीतर जाओ।” इतना सुनकर सुशीला गाड़ी से उतरकर चुपचाप भीतर चली गई। प्रकाश गाड़ी में बैठ, होस्टल को लौट गये।

रात-भर प्रकाश को नींद नहीं आई। एक भयानक विचार रह-रहकर उनके मन को विचलित करता रहा। वे क्रुद्धसिंह की भाँति अपने कमरे में द्वार बन्द करके टहलने लगे। वे सोच रहे थे—ये कमीने राजा और रईस यहाँ तक क्यों गिर जाते हैं, कि वे न गैरत की परवाह करते हैं, न इज्जत-आबरू की ? पराई बहिन-बेटियों की इज्जत लूटना मानो उनका साधारण काम है। हम चाहते हैं कि समाज में स्त्रियों को स्वाधीनता मिले। जब तक ये नीच शिकारी रहेंगे—स्वाधीनता मिलेगी कैसे ? कानून एक छल है। मैं कानून पढ़कर पछता रहा हूँ। मैं समझता था, इससे गरीबों का भला होगा। पर इससे सदा ही चालाकों और चुस्तों का ही भला होता है। कानून चुपचाप देखता रहता है, और सभी पाप उसके सामने होते हैं। फिर इन आतताइयों से बचने का उपाय क्या ? क्या मर्द का यह कर्तव्य नहीं, कि वह पापियों के दण्ड को अपने हाथ में ले ले ? कानून क्या अपूर्ण नहीं ? और कानून पर निर्भर रहना क्या कायरता नहीं ?

प्रकाशचन्द्र बड़ी देर तक यही सोचते रहे। धीरे-धीरे कोई भयानक संकल्प उनके मन में घर करने लगा। वे उद्वेग में आकर जोर-जोर से पैर पटककर जल्दी-जल्दी टहलने लगे। उन्होंने सोचा—इतिहास के उदाहरण कैसे हैं ? स्त्रियों के सम्मान की रक्षा के लिये खून की नदियाँ बह जाया करती थीं। आज हम ऐसे कायर और पोच हो गये, कि हम या तो चुपचाप लोहू के घूँट की तरह उस अपमान को पी जाते हैं, या पुलिस और कानून की मदद से उसकी मरम्मत करते हैं, जो प्रायः ही भूयों

और चालबाजों की सहायता किया करता है। मैं निश्चय ही कानून को अपने हाथ में लूँगा। लम्पट और कामुक पुरुष जगत् के सबसे बड़े भारी अपराधी हैं। उन्हें समाज में कदापि न रहना चाहिए। मैं उस पतित नर-पशु को अपने हाथों से दण्ड दूँगा, जो इतना दुस्साहस कर सकता है कि किसी की बहू-बेटी को जबरदस्ती अपनी वासना की पूर्ति के लिये कब्जे में कर ले।”

रात बीत गई। प्रातःकाल होते ही प्रकाश ने स्नान करके भगवान् का असाधारण रीति से स्मरण किया; और अपने संकल्प की पूर्ति का दृढ़ निश्चय करके वह होस्टल से बाहर निकला।

श्याम के घर पहुँचकर देा—सुशीला, वृद्धा माता के पास बैठी कुछ बातचीत कर रही है। वे श्याम बाबू को लेकर नीचे बैठक में आये।

श्याम बाबू प्रकाश के बाल-सहचर, और सहपाठी थे। उनसे उनकी कोई बात छिपी न थी। परन्तु सुशीला का भेद उन्होंने होठ से बाहर नहीं किया था। श्याम बाबू भी इस भेद से अवगत न थे। बैठक में आकर उन्होंने संक्षेप से सुशीला की सभी बातें श्याम को समझा दीं। अन्त का इरादा ही उन्होंने छिपा लिया, और कहा—“अब कहो—क्या तुम इसे तब तक अपने यहाँ आश्रय दोगे, जब तक हमारे घर जाने का उसका प्रबन्ध न हो जाय ?”

श्याम बाबू ने सहमति जताते हुये कहा—“इसमें आपत्ति क्या है ? परन्तु यह सोच लो, कि क्या यह ठीक होगा ?”

“ठीक-बेठीक क्या ?”

“तुम्हारा मन चाहे जितना शुद्ध हो, परन्तु सबका मन तो वैसा नहीं हो सकता।”

“क्या तुम इसकी इतनी परवाह करते हो ?”

“अब तुम मुझसे बिगड़ने लगे !”

“मैं सिर्फ यह पूछता हूँ, कि क्या तुम कुछ दिन इसे आश्रय दोगे ?”

“यह बात क्यों पूछते हो ? क्या तुम मुझे अपने-से भिन्न समझते हो ?”

“नहीं, परंतु यदि कोई भगड़ा-झंफट या बदनामी सिर पड़े ?”

श्याम बाबू हँस पड़े। उन्होंने कहा—“वह भी सहूँगा। और बोलो ?”

“बस, और कुछ नहीं।” प्रकाश उठ खड़े हुये; मित्र के साथ हँसे भी नहीं। उनकी आँखों और होठों पर एक कठोर छाया व्याप्त हो रही थी। श्याम बाबू ने इसपर लक्ष्य किया, और प्रकाश का हाथ पकड़कर कहा—“मुझे तुम्हारे रँग-ढँग अच्छे नहीं मालूम होते। तुम्हारा इरादा क्या है ?”

प्रकाश ने संयत भाषा में कहा—“मेरा इरादा बहुत पवित्र है, और वह तुम्हें शीघ्र ही मालूम हो जायगा।”

“अभी क्यों नहीं बता देते ?”

“इसके कारण हैं।”

श्याम ने गहराई तक जाने की चेष्टा ही नहीं की। वे हँसकर चुप हो गए। प्रकाश चलने लगे, तब श्याम ने कहा—“क्या सुशीला से मिलोगे नहीं ?”

“नहीं, इस समय नहीं।”

वे चल दिए। ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ रहे थे, उनकी चाल में तेजी आ रही थी। वे शहर की गलियों को पार करके सड़क पर आये, और सड़क को पार करके आये शहर के बाहर। शीघ्र ही वे राजा साहब की आलीशान कोठी पर पहुँचे। वहाँ आकर

वे क्षण-भर ठहर गए। फिर उन्होंने पहरेदार से कहा—“क्या राजा साहब भीतर हैं ?”

“हमारा कार्ड उन्हें दो, और सलाम बोलो।”

पहरेदार कार्ड लेकर भीतर गया, और शीघ्र ही बुलाकर भीतर ले गया।

राजा साहब अकेले बैठे, चाय पी रहे थे, और अखबार उनके हाथ में था। युवक को देखकर कहा—“आपका क्या काम है ?”

“मुझे आप से कुछ जरूरी बातें करनी हैं।”

“कहिए।”

“मैं उस लड़की के विषय में बात किया चाहता हूँ, जिसे आपने धोखे से कल रात उठवा मँगवाया था।”

राजा साहब के हाथ से चाय का प्याला और अखबार दोनों छूट गए। वे अचकचाकर युवक की ओर देखने लगे। उन्होंने कहा—“आप का मतलब क्या है ?”

“यही, कि आपने एक गरीब बेगुनाह असहाय लड़की के साथ ऐसा असभ्य व्यवहार क्यों किया ?”

“आप इस बात के पूछनेवाले कौन हैं ?”

“मैं एक साधारण आदमी के नाते आप से पूछता हूँ।”

“साधारण आदमियों से मैं बात नहीं करता। आप अभी बाहर चले जाइए।”

“मैं जब तक अपना काम पूरा न कर लूँगा, बाहर न जाऊँगा।”

“वह काम क्या है ?”

“या तो आप साबित कीजिये, कि आप बे-कसूर हैं, वरना मैं आपको सजा दूँगा।”

“मुझे सजा दोगे, तुम—बदमाश……!”

“मैं तुम्हारी गाली को क्षमा करता हूँ।”

“चुप रहो, अभी बाहर निकल जाओ ! वरना नौकर बुलाता हूँ ।” इतना कहकर राजा साहब ने घण्टी पर हाथ धरा ही था, कि युवक ने उठकर घण्टी उनके हाथ से छीन ली, और कहा—“यह गाली भी मैंने माफ की, पर अब और गाली न देना !”

राजा थोड़ा भयभीत होकर युवक को देखने लगा । उसने कहा—“पराई पञ्चायत में पड़ने से तुम्हें फायदा ?”

“मैं फायदे-नुकासान के लिए कोई काम नहीं करता । तुम झूटपट जबाब दो !”

“तुम्हें पूछने का कोई हक नहीं ।”

“तुम्हारे लिये बेहतर है, कि तुम मेरी बात का ठीक-ठीक जबाब दो !”

“वह लड़की चाहशा है । लालच में आकर स्वयं आई थी ।”

“इसका सबूत ?”

“तुम क्या कोई मजिस्ट्रेट हो, कि सबूत तुम्हारे सामने पेश किया जाय ?”

“परन्तु मैंने कहा न, या तो बेगुनाही साबित करो, या दण्ड भोगने को तैयार हो जाओ ।”

“मैं सफाई नहीं दूँगा ।”

‘तब दण्ड भोगो ।’

“क्या दण्ड दोगे ?”

“मैं अभी तुम्हें मार डालूँगा ।” इतना कहकर युवक ने चम-चमाता छुरा हाथ में लेकर, मजबूती से कलाई में पकड़ लिया ।

राजा साहब काँप उठे । वे कमरे से बाहर भागे, पर युवक ने एक लात मारकर गिरा दिया, और छाती पर सवार होकर कहा—“अब भी समय है !”

राजा चिल्लाने लगा । युवक ने मुँह पर हाथ धरकर कहा—
“क्या वह लालच से स्वयं आई थी ?”

राजा ने सिर दिखाकर कहा—“नहीं । मुझे छोड़ दो ।
छोड़ दो !”

“अरे पापी ! पाप किया, और भूठ बोलकर कलङ्क लगाया ।
तेरे लिए क्षमा नहीं है ।” उसने बल पूर्वक छुरा राजा की छाती
में घुसेड़ दिया । एक हल्की चीत्कार कर, राजा ठण्डा पड़
गया । फफड़े को आर-पार चीरता हुआ वह छुरा बाहर निकल
आया था ।

छुरे को वहीं छोड़कर युवक कुर्सी पर आ बैठा । मेज पर
पड़े वस्त्र से उसने अपने हाथ का रक्त पोंछ लिया । अब भी रक्त
की वेगवती धारा राजा के शरीर से बह रही थी, और उसका
शरीर हिल रहा था । उधर ध्यान न देकर युवक ने घण्टी बजा
दी । नौकर ने प्रवेश करके जो देखा—उसके होश उड़ गए । वह
थर-थर काँपने लगा । युवक ने सहज-शान्त स्वर में कहा—
“डरो मत, मैंने उसे मार डाला है ! वह पापी था । पराई
बहू-बेटियों की इज्जत धिगाड़ता था । तुम जाओ, और पुलिस
में इत्तला दे दो ।”

नौकर भागा—क्षण भर में भगदड़ मच गई । पुलिस दल-
बल सहित आ गई । एक मोटे-से इन्स्पेक्टर साहब पिस्तौल ताने
कमरे में घुस आए । उन्होंने चिल्लाकर कहा—“खुनी, खबरदार !
भागने की चेष्टा न करना, वरना गोली मार दूँगा ! चुपचाप
हिरासत में आ जाओ !”

युवक ने बैठे-ही-बैठे आवाज दी—“इन्स्पेक्टर साहब, मैं
यहाँ हूँ । इधर आ जाइए !”

इन्स्पेक्टर ने देखा—युवक निर्भय कुर्सी पर बैठा है । उसके

हाथ में कोई हथियार नहीं है। वे डरते-डरते उसके पास तक पहुँचे।—और भी दो काँसटेबिल घुस आए और युवक को देखकर खड़े हो गये।

यह देखकर युवक ने मुस्करा दिया। इन्स्पेक्टर ने भौं चढ़ाकर कहा—“क्या खून तुमने किया?”

“जी हाँ।”

“क्यों?”

“सजा देने के लिए।”

“किस बात की सजा?”

“यह पराई बहू-बेटियों का धर्म बिगाड़ता था।”

“तुम्हें यह मुनासिब नहीं था, कानूनी कार्यवाही करते?”

“कानून सम्पूर्ण नहीं है।”

“फिर भी तुम्हें अधिकार न था।”

“खैर, आप अपनी कार्यवाही कीजिये।”

“मैं तुम्हें गिरफ्तार करता हूँ।”

“कीजिए न, मैं तो स्वयं बड़ी देर से आप की इन्तजारी में बैठा हूँ।”

तुरन्त युवक को हथकड़ियाँ लगा दी गईं। इसके बाद लाश की जाँच परताल होने लगी। फिर युवक को घेरकर पुलिस थाने में जा पहुँची। राजा साहब के खून की खबर आग की तरह शहर में फैल गई, और शहर-भर में एक आतङ्क छा गया।

३३

कुमुद का जेठ रँडू था। उसकी स्त्री का देहान्त हुए दो वर्ष हो गये थे। यह व्यक्ति साधारण लिखा-पढ़ा था, और एक कपड़ेवाले की दूकान पर मुनीमगिरी करता था। इस बार कुमुद के घर में आते-ही इसकी कुदृष्टि उसपर पड़ी। जब-जब कुमुद पर अत्याचार होता—वह उसका पक्ष लेकर सबसे लड़ता। पर उसे कुमुद से मिलने, बात करने और अपनी अभिसन्धि प्रकट करने का अवसर नहीं मिलता था। उस दिन कोई पर्व था। कुमुद को छोड़कर सभी पर्व नहाने गये थे। घर में कोई स्त्री न थी। तब वह साहस करके भीतर घुस आया। उसे देखकर कुमुद सहम गई, पर बोली नहीं। उसने कहा—“बहू, तेरे ऊपर बड़ा जुल्म होता है, यह तो मुझसे सहा नहीं जाता।”

कुमुद जेठ से बोली नहीं—वह चुपचाप खड़ी रही। उसने फिर कहा—“इस तरह कब तक चलेगा ? तू कब तक यह सब कुछ सहेंगी !”

कुमुद को बोलना पड़ा।

उसने कहा—“जब ईश्वर ने यह दिन दिया है, तो सभी कुछ सहना पड़ेगा।”

“मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ।”

“कहिए ?”

“चल कहीं भाग चलें, मैं तुम्हें जान से ज्यादा करके रखूँगा, अभी सारी उम्र पड़ी है, इस तरह थोड़े-ही कट जायगी ?”

कुमुद के सारे शरीर से पसीना बह निकला। उसने कम्पित स्वर-से कहा—“कृपाकर आप यहाँ से अभी चले जाइए, और ऐसी बात फिर कभी जबान पर भी न लाइएगा !”

“क्यों, ऐसा क्या होता नहीं ?”
 “आप चले जाइये !”
 “क्या भाई मुझसे ज्यादा सुन्दर थे ?”
 “मैं कहती हूँ, आप यहाँ से चले जायँ ।”
 “बेवकूफ औरत, यह मेरा घर है । मैं कहाँ चला जाऊँ ?
 तू बता, कि मेरी बात मानती है, या नहीं ?”
 “मैं आपकी बात पर धिक्कार भेजती हूँ ।”
 “अब तू इस घर में न रह सकेगी !”
 “ईश्वर के राज्य में मेरे लिये बहुत जगह है ।”
 “मैं तुम्हें बदनाम कर दूँगा ।”
 “गरीब अनाथ स्त्री को सताकर आपको क्या मिलेगा ?”
 “तुम्हें राजी से या जोर से मेरी बात माननी पड़ेगी ।”
 “प्राण रहते यह नहीं होगा !”
 “और जो मैं जबर्दस्ती करूँ ?”
 “आप पूज्य हैं, बड़े हैं, आपको क्या ऐसी बातें शोभा देती हैं ?”
 “मैं तेरा उपदेश सुनना नहीं चाहता ।”
 “आप चले जाइए ! मैं भी आपकी बात नहीं सुनना चाहती ।”
 “तुम्हें मेरे हाथ से कोई नहीं बचा सकता ।”
 “परमेश्वर सभी को बचाते हैं ।”
 “देखें, परमेश्वर कैसे बचाता है ?” इतना कहकर वह दुष्ट
 उसपर दूट पड़ा । बच्चा रो पड़ा, उसे छीनकर उसने अलग
 ढकेल दिया ।

कुमुद ने अपना पूरा बल लगाकर दुष्ट को गिरा दिया, और बाहर आँगन में आकर ‘दौड़ो-दौड़ो’ चिल्लाने लगी ।

इतने-ही में घर की स्त्रियाँ आ गईं । यह माजरा देखकर वृद्धा बोली “यह क्या बात है ?”

जेठ ने कहा—“एक सण्डा घर में घुस रहा था, मैंने उसे पकड़ लिया, तो इस पापिनी ने उसे भगा दिया, और मेरे हाथ में काट खाया ।”

सभी अवाक रह गए ।

जिठानी और ननंद ने भौं चढ़ाकर कहा—“इसके ये लक्षण तो अब तक मालूम ही न थे ।”

बड़ी ननंद बोली—“बैठी-बैठी बच्चा खिलाने का बहाना था । यार को चिट्ठी लिखा करती थी ।”

वृद्धाने कुमुद के पास पहुँचकर कहा—“अभागिनी, अभी उसकी चिता भी ठण्डी नहीं हो पायी, और तूने यह झश कमा लिया !”

कुमुद को तो बोलने का अवसर ही नहीं मिला । वह चुपचाप खड़ी आँखें फाड़ कर उनको देखती रही ।

धीरे-धीरे घर के सभी स्त्री-पुरुषों को यह बात विदित हो गई । ‘वह कौन था ? वह कौन था ? सबके मुँह पर एक-ही बात थी । मगर वह दुष्ट यह कहकर चुप होगया,—“मैं उससे सप्रभ लूँगा, पर बताऊँगा नहीं । अपने ही खानदान की बदनामी है ।”

श्वसुर ने जय सुना, तो आगबबूला हो गए । गालियाँ दीं, और मारने का भी उपक्रम किया । गहना-पताई और रकम जो पास था, छीन लिया, और कह दिया—“इसका यहाँ एक मिनट रहना नहीं होगा । यह जहाँ चाहे, चली जाय ।”

अन्त में यह निश्चय हुआ, कि उसके भाई को तार दे दिया जाय, कि वह इसे आकर ले जाय ।

तार दे दिया गया, और वह दिन गाली-गुफता में कटा । कुमुद ने न कुछ खाया, न एक बूँद पानी पिया । वह बच्चे को छाती से लगाये पड़ी रही ।

शाम हुई कुमुद ने सोचा—अब क्या करूँ ? इस पृथ्वी पर मेरा सहायक कौन है ? उसे यह खबर न थी, कि उसके भाई

को तार दिया गया है। उसने भाई के पास जाने का निश्चय किया, पर जाय कैसे ? पास में पैसा नहीं और वह कभी अकेली गई भी न थी, फिर जब घर में इतने शत्रु हैं, तो बाहर का ठिकाना क्या है ? पर इस वातावरण में एक क्षण भी ठहरना उसके लिये अशक्य था।

मालती ने जब यह सुना, तो दौड़ी-दौड़ी आई, दोनों लिपटकर खूब रोईं। कुमुद ने चले जाने का इरादा प्रकट किया ! मालती ने कहा—“जीजी, मेरे घर चल कर रहो। रूखी-सूखी जो जुड़ेगा खा लेंगे। मैंने माँ से पूछ लिया है।”

कुमुद ने कहा—“नहीं मालती, यह समय ऐसा नहीं है, अब तो मुझे मुँह छिपाना ही सार है। तेरे घर जाने में और भी बदनामी होगी। मेरे साथ तू भी बदनाम होगी, पर मेरा एक उपकार कर। एक टिकिट का प्रबन्ध करके मुझे गाड़ी में बिठलवादे, मैं भाई के पास चली जाऊँगी।”

मालती ने वचन दिया। वह चली गई। उसी रात को जब सब घर सो रहा था—कुमुद उठी। चुपचाप बच्चे को छाती से लगाया, और घर से बाहर चल दी। मालती के भाई ने टिकिट लेकर उसे गाड़ी में चढ़ा दिया।

प्रभात हुआ। कुमुद नदारद। घर-भर में ढूँढ़-खोज मच गई। चारों तरफ को आदमी दौड़े। ‘हाय-हाय ! नाक कट गई ! इज्जत बिगड़ गई !’ के वाक्य कानों के पर्दे फाड़ रहे थे। दोपहर तक दौड़-धूप हुई। इसके बाद सब शान्त हो बैठे। सबने यही तात्पर्य निकाला, कि कुल-कलङ्कनी यार के साथ भाग गई। उसके भाई को दूसरा तार दे दिया गया—“तुम्हारी बहन किसी के साथ भाग गई। अब आना व्यर्थ है।”

जिस समय भूखी-भ्यासी थकित कुमुद भाई के द्वार पर पहुँची, उस समय रात हो चुकी थी। उसके पास दूसरा तार भी पहुँच चुका था, और भाई-भावज कुमुद को विविध रीति से कोस रहे थे। कुमुद ने धीरे-से द्वार खटखटाया, और आवाज दी। स्वर पहचानकर कहा—“कुमुद तो आ गई दीखाती है ?”

भोजाई ने घृणा से मुँह सिकोड़ लिया। रक्त के आवेश में भाई ने नीचे दौड़कर द्वार खोल दिया। देखा—वह कुमुद, डिप्टी साहब की स्त्री, जिसके घर आने पर गाँव-भर में धूम मच जाती थी, एक मैली साड़ी पहने, गोद में बच्चे को लिये, नंगे पैर द्वार पर भिखारिन के वेश में खड़ी है। भाई ने उसे चुपचाप घर में ले लिया। कोई कुछ बोला नहीं। किसी ने कुछ पूछा भी नहीं। कुमुद ने देखा, यह क्या बात है, सारा संसार ही विमुख हो गया है। उसने कहा—“भाई, मैं बड़ी विपत्ति में पड़कर यहाँ आई हूँ।”

भाई कुछ भी बोले नहीं, वे उठकर बाहर चले गये।

अन्त में भावज का मुँह खुला। उसने कहा—“साखा रच आई बीबीजी ?”

कुमुद का हृदय हिल गया। पर वह बोली नहीं। बच्चे को धरती पर बैठकर वह स्वयं भी बैठ गई। बच्चे ने कहा—“अम्मा, पानी !”

कुमुद ने इधर-उधर देखा। वह स्वयं उठकर घड़े के पास गई। यह देख भावज ने गर्जकर कहा—“यह क्या किया, घड़ा छू लिया। तुम्हें कुछ अच्छे-बुरे का खयाल भी है ?”

उसने उठकर घड़ा फोड़ डाला। पानी सारे घर में फैल गया।

कुमुद ने देखा—यहाँ तो एक क्षण भी कटने का ढँग नहीं

है। उसने कहा—“भाभी, मुझे माफ करना। दुःख ने मेरी मति हर ली है। मुझे भले-बुरे का ज्ञान नहीं रहा। तुम मुझ दुखिया को क्षमा करना। सिर्फ रात-भर काटकर सुबह मैं चली जाऊँगी।”

कुमुद ने वहीं धरती पर अपनी साड़ी का पल्ला बिछाकर बच्चे को सुला दिया, और स्वयं भी जमीन पर ही सो गई।

प्रातःकाल हुआ। भाई ने देखा—कुमुद सूखकर कौटा हो गई है। उसके फूले हुए गाल पिचक गये हैं, रँग पीला हो रहा है, आँखें गढ़ों में घुस आई हैं। भाई के हृदय में दर्द हुआ। उसने कहा—“कुमुद, इतने ही दिन में तुम्हारी यह दशा हो गई?”

कुमुद बोली नहीं। एक बूँद आँसू भी उसकी आँख में आकर सूख गया। उसने कहा—“भाई, मैं जो अपने दुःख में तुम्हें कष्ट देने आई, इसके लिए माफ करना। पृथ्वी पर मेरा तुमसे बढ़कर कोई सगा न था। तुम इतना कष्ट करो, कि मुझे काशी पहुँचा आओ। खर्च-पानी का सब प्रबन्ध मैं कर लूँगी। तुम्हें कुछ भी न करना होगा।”

भाई की आत्मा द्रवित हुई। उसने कहा—“कुमुद, इस तरह पराई की तरह बातें क्यों करती हो? चाहे भी जो हो, तुम हमारी बहन हो। हम लोग एक माँ के पेट से जन्मे हैं। क्या एक मुट्ठी अन्न तुम्हें यहाँ नहीं मिलेगा?”

कुमुद के होठों पर बात आई, पर वह पी गई। उसने कहा—“नहीं भाई; मुझे उचित नहीं, कि किसी पर भी अपने दुर्भाग्य की छाया डालूँ। तुम कृपा कर मेरी इच्छा पूर्ण कर दो।”

अभी तक भाई के मन में तार की दुर्भावना थी, पर वह कुछ कह सकता न था। उसे बहन पर क्रोध था, पर उसकी आकृति देखकर उससे कुछ कहा न गया। फिर भी वह बोला—“कुमुद, जो-कुछ सुना है, वह क्या सच है?”

“तुमने क्या सुना है ?”

भाई ने दोनों तारों का परिचय दिया। कुमुद ने सुनकर कहा—“तुम मेरे भाई हो, इस असहाय अवस्था में मेरे रक्षक हो। तुम्हें उचित है, कि इस बात की सचाई की जाँच करो, और अपनी बहन का भूटे कलंक ने उद्धार करो।”

“तब यह सब दुष्टों का उड़ाया हुआ है ?”

“यह तुम खोज कर निश्चय करो।”

“मैं तो तुझे देखते ही समझ गया था। पर कुमुद, अब तुम यहीं रहो।”

“नहीं भाई; इसका हठ न करो, तुम मुझे काशी पहुँचा आओ।”

भाई ने बहुत कहा, पर उसने एक न सुनी। विवश भाई को राजी होना पड़ा। उसने कहा—“अच्छी बात है, खा-पीकर रात की गाड़ी से चल देंगे।”

“रात की नहीं, जो गाड़ी सर्व-प्रथम जा रही हो, उसी से चलना होगा।”

“भला बिना खाये-पिये.....।”

“मैं अन्न-जल तो काशी पहुँचकर ही करूँगी।”

इतनी देरमें भाई को खयाल आया—इससे रात भी किसी ने भोजन के लिये नहीं पूछा। सम्भवतः यह यात्रा में भी भूखी ही रही है ! न जाने कब से भूखी है ? यह तो बुरा हुआ। उसने कहा—“कुमुद, तुमने कब से खाया नहीं ?”

“कुछ हर्ज नहीं, न खाने से मैं मरूँगी नहीं। मरना चाहती भी नहीं। मेरे पति का पुत्र मुझे पालना है !”

“तब भोजन कर लो।” यह कहकर वह भीतर लपके।

परन्तु कुमुद ने बाधा देकर कहा—“मैं कह चुकी; मैं अब जल काशी पहुँचकर पियूगी।”

“तुम भाई को कष्ट न दो, स्वयं भी परेशान न हो !”

“पर यह कैसे सम्भव हो सकता है ?”

“इसमें कठिनाई ही क्या है ?”

भाई-बहन में यह हुज्जत चल ही रही थी, कि उनकी स्त्री वहाँ आकर बोली—“मान-मनौवल अभी खत्म नहीं हुई ?”

भाई ने रुक्ष होकर कहा—“तुमने रात कुमुद से खाने-पीने को भी नहीं पूछा ? तुम्हारी अकल पर पत्थर पड़ गये दीखते हैं !”

“पत्थर नहीं ओले । उनसे पूछनेवाले लाख हैं, अकेली क्या मैं ही हूँ ?”

भाई ने क्रुद्ध होकर कहा—“बकती क्या है ?”

“एक मेरा मुँह रोक लोगे । और किस-किस का रोकेगे ?” स्त्री तेजी से कहकर चली गई ।

भाई ने स्त्री को गालियाँ देना प्रारम्भ किया । कुमुद ने खड़ी होकर कहा—“बोलने दो भाई, उसे कुछ मत कहो । अच्छा, अब तुम चलते हो, या मैं अकेली चली जाऊँ ?”

भाई ने बहिन के पैर छूकर कहा—“कुमुद, इतनी हठ न कर, उस दुष्टा की तरफ न देख । तू कब को भूखा-प्यासी है, अब यों बिना खाने-पिये मेरे घर से न जा । मैं वास्तव में अमवश तुझपर अत्याचार कर बैठा ।

कुमुद ने धैर्य से, किन्तु दृढ़ स्वर में कहा—“भाई, हम रक्त और एक हृदय हैं, हमीं जब एक-दूसरे को न समझेंगे, तो कौन समझेगा ? तुम हठ न करो, बहिन की रक्षा करो । मैं जरा भी नाराज नहीं, पर आत्म-प्रतिष्ठा का मैं अवश्य खयाल रखूँगी । मैं एक प्रतिष्ठित पुरुष की पत्नी, और एक होनहार बच्चे की माता हूँ, यह मैं नहीं भूल सकती । तुम मेरी इच्छा-पूर्ति करो, वरना मैं अकेली ही अपनी इच्छानुसार करूँगी ।

अधिक हठ व्यर्थ देख, भाई सहमत हुए। दोनों व्यक्ति उसी क्षण घर से बाहर होकर काशी की ओर जानेवाली गाड़ी में बैठ चले।

— — —

३५

कुमुद के जेठ का नाम रामनाथ था। कुमुद के साथ मालती की घनिष्ठता को वह जानता था। घर-भर को यह बात मालूम थी। यह लम्पट आदमी उस बालिका के ऊपर भी कुदृष्टि रखता था। परन्तु मालती शिक्षिता और प्रतिष्ठित घर की बेटी थी। रामनाथ का साहस उसके सामने पड़ने का नहीं हुआ था। इस बार उसने मालती पर दृष्टि डालने का साहस संचित किया। मालती नित्य-ही स्थानीय कन्या-पाठशाला में नियमित समय पर पढ़ने जाती थी। उसने मैट्रिक परीक्षा पास करने की ठान ली थी। यह सब उसने कुमुद के अनुरोध से किया था। कुमुद चलते-चलते उससे कह गई थी—“पढ़ना न छोड़ना, पढ़ने में एकदम डूब जाना, परमेश्वर पर भरोसा रखना, इतना धीरज न हो, तो मुझपर रखना। तेरे संकट अवश्य-ही कटेंगे।”

मालती को सखी की इस बात से बहुत ढाँढ़स बँधा था। वह सब बातों से मन हटाकर पढ़ने में लग गई थी। उसके चित्त में वासना थी, चंचलता भी थी। परन्तु वह उच्च घराने की लड़की थी। पतित होने योग्य उसके संस्कार न थे। साहस भी न था। संस्कार और स्वाभाविक भीरुता उसके रक्षा-कवच थे।

रामनाथ ने अब यह नियम बना लिया, कि मालती जब स्कूल जाने लगती तो वह द्वार पर खड़ा हो जाता। स्कूल से

आने के समय भी, वह उसे एक बार देखने को घण्टों खड़ा रहता था। स्त्रियाँ चाहे और बातें न समझ सकें, पर-पुरुष की पाप वासना को जरूर समझ लेती हैं। मालती ने भी रामनाथ की कुदृष्टि को भाँप लिया। पहले वह कभी आवश्यकतानुसार रामनाथ से बात कर भी लेती थी, अब वह बिल्कुल उधर दृष्टि-पात न कर सीधो निकल जाती।

रामनाथ बड़ा-ही निर्लज्ज था। वह साहस करके खाँसने-खखारने और संकेत भी करने लगा। पर मालती के मन में उसके प्रति उपेक्षा और घृणा के भाव भरते ही गये। परन्तु यह बात उसने किसी से कही नहीं। कुमुद के ससुराल में आना तो उसने बिल्कुल ही छोड़ दिया था। अब उसने पाठशाला जाने का भी दूसरा मार्ग तलाश कर लिया।

मालती की एक भौजाई का नाम कामलता था, पर उसे लता ही के नाम से सब पुकारा करते थे। यह स्त्री नव-वयस्का थी। इसका विवाह हुए दो ही वर्ष हुए थे। इसके पति, मालती के भाई 'इलाहाबाद-लॉ-कालेज' में पढ़ते थे। फलतः लता अकेली ही रहती थी। वह मालती की समवयस्का भी थी। वह मालती के साथ सोती, खाती और बहुधा रहती थी। मालती की अपने घर में एक उसी से घनिष्ठता थी। मन के आवेग को रोक रखने में असमर्थ होकर मालती ने रामनाथ की कुदृष्टि की बात उससे कह दी।

लता भी दुर्भाग्य से चञ्चलवृत्ति की स्त्री थी। वह सधवा थी, परन्तु विपत्ति के अभाव से उसकी चपलवृत्ति अधिकाधिक व्यग्र रहती थी। वासना-सम्बन्धी बातों का उसके पेट में खजाना भरा रहता था। वैसी बातें कहने-सुनने में उसे बड़ा रस आता था। वह मालती के प्रति रामनाथ की चेष्टाओं को बड़े ध्यान से

देखने-सुनने लगी। इसके मन में रामनाथ को एक बार देखने की बड़ी इच्छा हुई, और उसने उसे देख भी लिया।

रामनाथ को देखकर भी उसके मन में रामनाथ के प्रति घृणा के भाव नहीं उत्पन्न हुए। उसने रामनाथ को नहीं, उसकी आँखों में नाचती हुई वासना को देखा। एक बार उसने हँसकर मालती से कहा—“तेरे उस बूढ़े नैया को मैंने देख लिया है। क्यों तेरे को इतना सताता है? और कुछ नहीं, तो जरा एकाध बार हँस दिया कर।”

मालती ने क्रोध करके कहा—“भाभी, ऐसी बात न किया करो। उसी पापी ने कुसुम जीजी को बे-घरवार का किया है। मुझे उससे बड़ी घृणा है।”

“घृणा की क्या बात है री, अगर तेरा दूल्हा ऐसा ही होता, तब?”

मालती वहाँ से रिसाकर उठ गई। लता ने देखा, यह उतनी रसिक नहीं हैं, पर फिर भी उसने साहस नहीं छोड़ा। वह समय पर उसकी चुटकियाँ लेती ही गई।

रामनाथ की दोस्ती मि० कालीप्रसाद से थी। इसे दोस्ती न कहकर मुसाहिबी कहें, तो अच्छा है। इसी मुसाहिबी की वदौलत उसका नाच-मुजरा; खेल-तमाशों का शौक पूरा हो जाया करता था। काली बाबू बस्ती के रईस युवक, सुन्दर, हँसमुख और उन सब गुणों में पूरे थे, जिनसे लम्पटों की शोभा होती है। एक बार बातों-ही-बातों में रामनाथ ने कालीबाबू से मालती का जिक्र कर दिया। तब से तो मालती की स्मृति काली बाबू के दिमाग में घर कर गई, और रामनाथ को इज्जत भी उनकी दृष्टि में बढ़ गई। वे बहुधा मिलकर उसे वश में करने के मंसूबे बाँधा करते, और घण्टों मालती के ध्यान में डूबे रहते

थे । कुछ दिन बाद उन्होंने मालती के नाम पत्र भोजना प्रारम्भ किया, जिसकी चर्चा भी मालती ने लता से की; परन्तु और कोई इस बात को न जान सका । अब मालती के लिये स्कूल आना-जाना भी भारी हो गया । स्कूल की एक महरी को भी इन पापियों ने गाँठ लिया, और एक दिन जब वह स्कूल से घर लौट रही थी, उसी महरी की सहायता से फुसलाकर उसे उड़ा लिया । उड़ाकर उसे कालीबाबू के बगीचे की कोठी में बन्द कर दिया गया । वहाँ वह ३,४ दिन बन्द रही । उसे वश में लाने के लिये उसपर काफी अत्याचार किए गए, परन्तु मालती ने भी प्राण दे देने का संकल्प कर लिया था ।

इस प्रकार मालती-जैसी प्रतिष्ठित घराने की लड़की के एकाएक गायब होने से शहर में हलचल मच गई । चारों तरफ खोज-पड़ताल होने लगी । मालती के घर के लोगों का तो बुरा हाल था । पापी रामनाथ भी दो बार उनसे समवेदना प्रकट कर आया था ।

मालती राजी न होगी—यह उन दोनों को मालूम हो गया था, परन्तु कालीबाबू ने भी निश्चय कर लिया था, कि या तो उसे वश में करेंगे, या मार ही डालेंगे । इस प्रकार आसुरी भावना धारण कर, दोनों पापिष्ठों ने बगीचे में प्रवेश किया ।

मालती दो-तीन दिन की भूखी-प्यासी थी । क्षण-क्षण उसे अपनी प्रतिष्ठा भंग होने का भय था । उसने निकल भागने के यथा-सम्भव उपाय किये थे, पर वे कुछ भी कारगर न हो पाये थे । वह बहुत-कुछ रो चुकी थी । कुमुद के वचन उसके साथ थे । अतः उसने एक उपाय स्थिर किया । जिस कमरे में वह बन्द थी, उसमें ऊपर की ओर एक खिड़की थी, उसी के द्वारा वह बगीचे के पिछले हिस्से में सड़क पर आते-जाते स्त्री-पुरुषों को अपनी

और आकृष्ट करने की चेष्टा करती, परन्तु एक तो वह स्थान ही कुछ निर्जन था, दूसरे, उस तरफ किसी का ध्यान ही नहीं जाता था। मालती को इसमें कुछ सफलता नहीं मिली।

उसी खिड़की की राह वह निकल भागने की भी बहुधा सोचा करती। पर वह दूसरे मञ्जिल पर थी, और खिड़की के नीचे का स्थान भी सुरक्षित न था। कोमल और निरुपाय बालिका मालती उस रास्ते नीचे उतरने का साहस न कर सकी।

सन्ध्या हो गई थी, और उसकी कोठरी में अन्धकार था। उसके द्वार खुलने की कुछ आदृष्ट प्रतीत हुई। पहले उसने सोचा, वह कुटिल मालिन खाना लेकर आई होगी, जो यहाँ उसकी देख-रेख पर नियत है, और जिससे वह हजारों मिन्नते कर चुकी थी। पर जब उसने साक्षात् पिशाच के समान कालीबाबू और उससे भी घृणास्पद रामनाथ को लैम्प हाथ में लिये मुस्कराते हुए कोठरी में आते देखा, तो वह स्तब्ध रह गई। परन्तु समय और अवसर मनुष्य को साहस प्रदान करता है। मालती ने भी साहस का संचय किया। उसने भयभीत स्वर में कहा—“मैं हथा जोड़ती हूँ, मुझे यहाँ से निकाल दो।”

कालीबाबू ने जोर से हँसकर कहा—“समझ गया, अब सीधी राह पर आ गई मालूम होती है। रामनाथ, तुम जरा बाहर बैठो। लैम्प को यहीं रख दो। मैं देखता हूँ, कि यह पालतू बिल्ली कितनी उछल-कूद मचाती है।”

रामनाथ लालटेन वहीं रखकर चुपचाप बाहर चला गया। कालीप्रसाद ने कमरे का द्वार बन्द करते-करते कहा—“तो अब राजी हो न ?”

कालीप्रसाद ने खब शराब पी हुई थी, यह मालती अनायास ही समझ गई। वह पलंग से पीठ सटाकर चुपचाप इस

भाँति खड़ी हो गई, जैसे एक खूँखार भेड़िये के आक्रमण के मुकाबले की तैयारी हो ।

कालीप्रसाद ने दोनों हाथ फैलाकर कुछ अनर्गल शब्द मुँह से कहे, और मालती की ओर बढ़ा । मालती ने साहस किया । वह एक कदम पीछे हटी, और फिर उसने उस कमरे में पलंग के सिरहाने रक्खी हुई एक चिलमची उठाकर पूरे वेग से काली-बाबू के सिर पर दे मारी । कालीप्रसाद 'हाय' भी न कर सका । वह तुरन्त घूमकर धरती पर गिर पड़ा । खून का फौवारा सिर से बह चला ।

मालती ने अब और साहस किया । उसने कम्बल और चादर को पलंग से उठाया । उसे फाड़कर और गाँठ बाँधकर रस्सी बनाई, तथा पलंग की पाटी में बाँध, वह उस खिड़का की राह, उसी के सहारे उतर चली । धरती तक पहुँचते-पहुँचते वह अर्द्ध-मूर्च्छित अवस्था में थी । जब उसके पैर धरती पर टिक गये, तब उसने कुछ सम्भलने की चेष्टा की, पर सम्भल न सकी । एक सज्जन उधर से आ रहे थे । उन्होंने दूर से ही उसे साहस-पूर्ण ढँग से उतरते देखा, और लपककर उसे सम्भाल लिया । उस रात्रि के धुँधले प्रकाश में उन्होंने भाँप लिया, कि कोई आफत की मारी बालिका है । वे उसे हाथों का सहारा दिये, एक ओर को ले गये । पास-ही एक ताँगा जा रहा था । उसे बुला, उसमें उसे लिटाकर वे एक तरफ चल दिये ।

मालती एक विपत्ति से बचकर दूसरी में आ गिर-पतार हुई ।

साक्षात् नर-पिशाच चाण्डाल-स्वरूप गोपाल पाँडे के साथ में सुजन जयनारायण की सारी इज्जत-आवरण चली गई थी। उन्हें पुत्री का पाप कहना पड़ा, और उस पापी की शरण लेनी पड़ी, बदले में देनी पड़ी दक्षिणा। एक पिता का इससे अधिक क्या अपमान हो सकता है ?

परन्तु बात अपमान-ही तक सीमीत न थी, उसे पुत्री को वह भयानक दवा स्वयं खिलानी भी पड़ी। कैसी भयानक बात है ! मनुष्य की आत्मा की यह अद्भुत दुर्बलता है, कि वह अपराध के बीज से बचाता है, पर अपराध में साहसपूर्वक डूबता है।

दवा खाने में भगवती ने बहुत-ही आना-कानी की, पर जयनारायण ने उसे खिला-ही दी। उसे खून की उल्टियाँ आने लगीं और वह बेहोश हो गई। उसके मूत्र-मार्ग से भी रक्त का प्रवाह बह निकला। तीन दिन बीतने पर भी जब हालत खराब होती ही गई, तब जयनारायण पास के नगर से सरकारी डाक्टर को बुला लाए। डॉक्टर ने सहज-ही में असली घटना का अनुमान लगा लिया। भगवती उससे कुछ छिपा भी न सकी। डाक्टर क्रोध-से लाल मुँह किए बाहर आया, उसने जयनारायण को एकान्त में लेजाकर कहा—“मुझे तुम्हारी हालत पर अफसोस है, मगर मैं इस केस को बिना पुलिस में दिए नहीं रह सकता।” जयनारायण पर वज्र गिरा। वह पत्थर की भाँति निश्चल खड़ा, डॉक्टर का मुँह देखता रहा।

डॉक्टर ने वहाँ से हट, हरनारायण को दवा दी। विधी भी बता दी, और जाकर गाड़ी में बैठ गया। जयनारायण दौड़कर

गाड़ी के सामने आ-खड़ा हुआ। उसने कहा—“डाक्टर साहब, इस बदनसीब बूढ़े की सफेदी का कुछ ध्यान कीजिये।”

डाक्टर ने देखा, दृष्टा फेर ली, और कोचमैन को बढ़ने का हुक्म दिया।

क्षण-भर में गाँव-भर में बड़े डाक्टर के आने की बात फैल गई। ‘भगवती को क्या हुआ है?’—इसकी आलोचना होने लगी। भाँति-भाँति की चर्चा उठने लगी। जयनारायण आनेवालों विमति से सामना करने और सबकी आलोचनाओं से मुक्ति पाने के विचार से घर में जाकर बैठ रहे।

दिन ढलते-ही दलबल-सहित पुलिस आ धमकी। गाँव-भर जयनारायण के द्वार पर इकट्ठा हो गया। स्त्री और पुरुष सब काम छोड़कर इस मनोरम दृश्य को देखने के लिये आ-जुटे।

जयनारायण के पैरों से धरती निकल रही थी। उसने मुँह ढाँपकर, पड़े हुए हरनारायण से कहा—“चलो बेटा, जो भाग्य में भोगना वदा है, भोगें। इस तरह पड़े रहने से क्या काम चलेगा!” उन्होंने बाहर आकर दारोगाजी को सलाम किया।

दो भलेमानसों को साथ लेकर दारोगाजी ने भगवती के बयान लिये। वह सत्य बात न छिपा सकी। देखते-ही-देखते छजिया, गोबिन्दा और गोपाल पाँडे के नाम सिपाही छूट गये, और ये लोग भी पकड़े गए। सब के इजहार हुए। छजिया और पाँडेजी ने एकबारगी ही इस मामले में कुछ जानने से इन्कार कर दिया! फलतः इन लोगों की खूब पूजा भी हुई।

जिस समय छजिया और पाँडेजी पर पुलिस के सिपाहियों की चरणदासी की वर्षा हो रही थी, तो सारे गाँव पर भयङ्कर आतङ्क आ गया। वृद्धजन सिर मुकाकर खड़े हो गये, किशोर

पितादादा की छाँह में छिपने लगे, और अबोध बच्चे गिल्ली-डण्डा फेंक-फाँककर घूँघटवाली माताओं की गोद में जा छिपे।

जयनारायण चुपचाप वज्राहत की भाँति एक तरफ बैठा सब कौतुक देख रहा था। शिवसहाय चौधरी ने पास आकर धीरे-से कहा—“अब इस तरह पत्थर की तरह कब तक बैठे रहेंगे? ज्यादा फजीता कराने का काम नहीं; हुआ-सो-हुआ—मामले को रफा-दफा करो।

जयनारायण मुँह उठाकर चौधरी की ओर देख भी न सके।

वह दोनों हाथों से मुँह ढाँपकर रोने लगे। चौधरी ने उनके पास बैठकर कहा—“कुछ रुपये-पानी का प्रबन्ध करो, मामला यों नहीं तै होगा।”

जयनारायण ने रोते-रोते कहा—“आपको किसी तरह मेरी इज्जत बचती दीखे, तो बचाइए, वरना बर्बाद तो हो ही चुका हूँ।”

चौधरी साहब चुपके से बाहर उठ गए। देखा—हरगोविन्द को बुलाने गया हुआ सिपाही लौट आया है। उसने कहा—“वे घर पर नहीं हैं।”

चौधरी साहब उस कॉस्टेबल को संकेत करके एक तरफ ले गये, और कहा—“थानेदार साहब से कहकर मामला रफा-दफा करो।”

“अरे—राम का नाम लो बाबा !”

“क्यों ?”

“वे तो रिसवत का नाय सुनकर काटने दौड़ते हैं।—राम दुहाई !”

“भट, यह काम तो किसी तरह करना ही होगा।”

“मामला संगीन है, इनका मिजाज कड़ा है। मामला बनता दीखता नहीं।”

“कोशिश तो करो, तुम्हारा भी हक मिलेगा।”

सिपाही चुपचाप थानेदार के पास जाकर कान में कुछ कहने लगा। थानेदार ने चमकर कहा—“नहीं जी, हमारे पास कोई मत आओ; हम किसी की नहीं सुनेंगे।”

सिपाही ने निराशा का भाव दिखाते हुए कहा—“चौधरी साहब, देखा आपने ? वे तो हाथ भी नहीं रखने देते।”

चौधरी साहब चुपचाप सोचने लगे। सिपाही महाशय बोले—“यह तो कहो, रकम कितनी मिलेगी ?”

“जो-कुछ भी तय हो जाय।”

“पाँच-सौ रुपये का गामला है।”

चौधरी साहब बोले—“अजी—इतना उसके पास कहाँ है ?”

“है क्यों नहीं—गाँव का सब से तगड़ा आसामी है।”

“बाबले भाई—दूर के ढोल सुहावने लगते हैं।”

“तो तुम जानो।”

“देखो सन्त्री, बूढ़े की सफेदी की लाज रक्खोगे, तो बड़ा जस पाओगे।”

अन्त में दो सौ रुपये पर मामला तय हुआ।

सिपाही थानेदार को एक तरफ ले गया। वह मिन्नत-खुशामद करता है, हाथ जोड़ता है, और थानेदार साहब तन-तनकर उठते हैं। बड़ी देर में कब्जे में आये, तब सिपाही ने चौधरी साहब को सामने पेश किया।

उन्होंने सामने आते ही झुककर सलाम किया।

थानेदार ने मुस्कराकर कहा—“चौधरी साहब, सिर्फ तुम्हारे

लेहाज से यह काम हुआ है; वरना खुदा की कसम, हम अपने आप की भी नहीं सुनते हैं।”

चौधरी साहब ने कहा—“हजूर की मेहरबानी है।”

“अच्छा तो विदा करने का प्रबन्ध करो।”

चौधरी साहब न भीतर आकर सब हाल जयनारायण को सुनाया, तो उन्हें काठ मार गया। पर चौधरी ने साफ कह दिया—“अब दूसरा कोई चारा नहीं है।”

लाचार बाप-बेटों ने सलाह करके कर्त्तव्य स्थिर किया। हरनारायण चुपचाप अपनी स्त्री की कोठरी में घुस गया, और थोड़ी दूर में एक छोटी पोटली लेकर बाहर आया। जयनारायण ने वह पोटली लेकर चौधरी साहब से कहा—“इन्हें गिरवी रख माना चाहिये।

“.....”

×

×

×

×

आध घण्टे में सब मामला तय हो गया। पुलिस ने उस गृह का पिण्ड छोड़ा। उस दिन से जयनारायण ने घर से निकलना ही छोड़ दिया। हरनारायण भी शहर में मकान लेकर जा-रहा। एक बात और रह गई। श्रीगुरु गोपाल पाँडे की अगणित जूतियों और हथरों से खूब पूजा हुई, जिससे प्रसन्न होकर उन्होंने १००) नकद दारोगा देवता की सेंट चढ़ाये। हरगोविन्द की बात कुछ साफ-साफ नहीं मालूम हुई, पर पीछे सुना, कि वह आठ दिन तक कच्ची ससुराल में सम्मानित हुआ था, और पाँच सौ रुपये चलती बार साल-सालियों को बरूशीस दे आया था !!

सेशन-जज की कचहरी खचाखच भर रही थी। आदमी-पर-आदमी दूट रहा था। आज राजा साहब के खून का मुकद्दमा था। मैजिस्ट्रेट की अदालत में कई पेशियाँ लगने पर मामला सेशन-सुपुर्द हो गया था। नीचे की अदालत में प्रकाशचन्द्र ने जो बयान दिया था, समाचार-पत्रों की कृपा से जनता पर उसका बिजली का-सा असर हुआ था। इसीलिये आज अदालत के कमरे में कंधे से कंधा छिल रहा था। जज-बेरिस्टर, वकील-सिपाही, अपनी अपनी जगह उपस्थित थे। कचहरी में बाहर-भीतर भारी भीड़ थी। सब के मुख पर एक-ही बात थी।

ठीक १२ बजे गाड़ी आकर कचहरी के पोर्टिको में आ लगी, और उसपर से हथकड़ियों से जकड़ा हुआ प्रकाशचन्द्र उतरा। उसका चेहरा गम्भीर किन्तु प्रफुल्लित था—नेत्रों में निर्भयता थी, और वह गर्दन ऊँची किए इस प्रकार जा रहा था, मानों कोई प्रगल्भ व्याख्याता व्याख्यान देने वेदी पर जा रहा हो।

सुशीला, श्याम बाबू, प्रकाश के माता-पिता—आदि सभ अदालत में उपस्थित थे। पिता को देखकर उसने प्रणाम किया और श्याम बाबू को देखकर जरा-सा हँस दिया। वे लोग सब उदास थे। सिर्फ सुशीला रो रही थी। रोते-रोते उसकी आँखें सूज गई थीं। मुकद्दमा प्रारम्भ होते-ही एक वकील ने आकर कहा—“मैं अपने-आपको अभियुक्त की ओर से उपस्थित करता हूँ।”

प्रकाश ने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा—“इसकी आवश्यकत नहीं। जब मैंने कानून को हाथ में ले लिया है, तो अब मैं उसकी सहायता न लूँगा।”

जज ने नाम-धाम पूछकर उसका क्यान लिया । प्रकाशचन्द्र ने बताया—

“मेरा नाम प्रकाशचन्द्र है, आयु २३ वर्ष, जाति हिन्दू । मेरे पिता पञ्जाब में उच्च सरकारी अफसर हैं । मैं ला-कॉलेज का विद्यार्थी हूँ । सुशीला मेरी बहिन है । उसे मृत राजा ने फुसलाकर बलपूर्वक घर मँगवा लिया था । वह साहसपूर्वक भाग न आती, तो उसकी पवित्रता अवश्य लूट ली जाती । उसने और भी कई हमले उक्त बालिका पर किये । वह प्रसिद्ध दुराचारी रईस था । बालिका ने रोकर अपने पर अत्याचार होने की घटना सुनाई । मैंने देखा, कानून इस विषय में अपूर्ण है । और उसके आसरे बैठना मनुष्यत्व के विपरीत है । मैं राजा के पास गया । उससे पूछा, कि तुम अपराधी हो, या नहीं ? उसने अपराध स्वीकार किया, और मैंने उसे मारकर उचित दण्ड दे दिया । इसके बाद अपने को पुलिस के हवाले कर दिया ।”

कमरे में सन्नाटा छा रहा था । जिरह में उसने कहा—
“सुशीला मेरी धर्म-बहिन है । मैं ईश्वर और संसार के सामने उसका भाई और संरक्षक हूँ । मैं उसका विवाह कर देने की बात सोच ही रहा था । वह मेरी ही जाति की है, पर मैं जातपाँत नहीं मानता । मैंने उससे विवाह करने की इच्छा को गहिँत समझा । पुरुष को स्त्री-जाति की विपत्ति में रक्षा बहिन के नाते ही करनी उचित है । यही सब से पवित्र नाता है । विवाह की भावना स्वार्थमय होती है । सुशीला—परम पवित्र, सर्वगुण-सम्पन्न श्रेष्ठ-कुल की कन्या है । उसने मुझे उत्तेजित नहीं किया । यह खून मैंने उत्तेजित होकर नहीं किया, विचारपूर्वक किया है ।”

क्षण-भर सभी अवाक रहे । जज ने पूछा—“क्या कानून को हाथ में लेना ठीक है ?”

“कानून अपूर्ण है।”

“फिर भी, यदि प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार की चेष्टा करे, तो क्या सार्वजनिक शान्ति रह सकती है ?

“यह प्रश्न गैरत का है, और मैं खुली राय रखता हूँ, कि गैरत का प्रश्न भुज-बल पर ही रहना चाहिये।”

“क्या तुमने अपराध नहीं किया ?”

“नहीं; मेरे मन में न ईर्ष्या थी, न क्रोध। मैंने वहीं किया— जो करना चाहिये।”

“यही काम तो कानून करता।”

“कदापि नहीं; कानून की रू से किसी कुलवती को छल-बल से भ्रष्ट करने की सजा बहुत थोटी है।”

“तुम और कुछ कहना चाहते हो ?”

“कुछ नहीं ?”

इसके बाद अदालत अगले दिन को उठ गई। प्रकाश को परिजनों से मिलने और बात-चीत करने की आज्ञा मिल गई थी।

प्रकाश के पिता ने आगे बढ़कर गम्भीरता से कहा—“पुत्र, कुछ भी परिणाम हो, पर तुम जैसे पुत्र पर मुझे गर्व है।”

माता ने आकर पुत्र के सिर पर हाथ फेरा। प्रकाश ने कहा—“अम्मा ! सुशीला को तुम साथ ले जाना, और उसे तनिक-भी कष्ट न होने देना।” सुशीला अब भी रो रही थी। प्रकाश देर तक चुपचाप उसे देखते रहे। इस बार उनकी आँखों से भी आँसू बह चले। उन्होंने कहा—“सुशीला, तू मुझे प्रसन्न किया चाहती है, तो माता को उदास न होने देना।”

सुशीला प्रकाश के पैर पकड़ कर बैठ गई। श्याम बाबू ने कहा—“प्रकाश, वकील को क्यों नहीं बोलने दिया ?”

“पागल वकील का इसमें क्या काम था ?”

“अब क्या होगा ?”

“चाहे भी कुछ हो ।”

×

×

×

×

जज कुर्सी पर बैठे थे । मुकदमे की कई पेशियाँ लग चुकी थीं । आज फैसले का दिन था । अदालत में सन्नाटा छा रहा था । अन्त में जज ने जलद-गम्भीर स्वर में फैसला सुनाया—

“प्रकाशचन्द्र, इसमें सन्देह नहीं, कि तुम्हारा उद्देश्य पवित्र और वीरोचित है, पर कानून को हाथ में लेकर ऐसी बड़ी घटना, अपराध की श्रेणी में है । तुम्हारे मन में स्त्री-जाति का बड़ा मान है । उसी भाववेश में तुमने यह काम किया है । मैं तुम्हें ६ वर्ष का कठिन कारावास देता हूँ, परन्तु साथ ही सरकार से सिफारिश करता हूँ, कि वह तुम्हारे आली खान्दान, नेक चलनी, सुशिक्षा और सदुद्देश्य का ध्यान रखकर यथा-सम्भव रियायत करे ।”

जज के बैठते ही पुलिस अभिमुक्त को ले चली । बाहर भीड़ ने “प्रकाशचन्द्र की जय !” “वीर भाई की जय !” के नारे बुलन्द करने आरम्भ किये । प्रकाश एक बार हँसकर और सब को प्रणाम करके जेल की गाड़ी में जा बैठा । गाड़ी एक झटके के साथ जेल की ओर चल दी ।

प्रकाशचन्द्र के जेल जाने के बाद सुशीला स्थिर भाव से प्रकाश के पिता के सम्मुख जा खड़ी हुई। अब उसके नेत्रों में आँसू न थे। वह उनसे कुछ कहना चाहती थी।

प्रकाश के पिता का नाम था, राय बहादुर मोतीलाल। उनकी आयु ५५ वर्ष से ऊपर होगी। चेहरा भरा हुआ, माथा प्रशस्त और कटी हुई छोटी मूँछें। सुशीला को पास आते देख, वे दो कदम आगे बढ़ आये, और उसके सिर पर हाथ रखते हुये बोले—“बेटी, तू मन में ग्लानि न कर, मुझे पुत्र के इस कष्ट का जरा भी रझ नहीं है। तुझे अब मेरे साथ चलना होगा, और बेटी की तरह रहना होगा।

सुशीला ने कहा—“पूज्य पिताजी, मेरी एक प्रार्थना है।”

“वह क्या?”

“मैं भाई को छुड़ाऊँगी, आप मुझे आझा द जिए।”

“यह किस तरह बेटी?”

“भाई ने कुछ भी अपराध नहीं किया है। उन्होंने स्त्री-जाति की मर्यादा की रक्षा की है, उन्होंने पवित्र कर्म को निवाहा है। यदि अंग्रेजी सरकार का कानून ऐसी सद्भावना को अपराध समझता है, तो मैं जीवन-पर्यन्त उस कानून को भंग करूँगी।

“बेटी, तेरी इच्छा क्या है?”

“मैं स्त्रियों का डैपुटेशन वायसराय के पास ले जाना चाहती हूँ।”

“वह डैपुशन क्या कहेगा?”

“वह कहेगा—यदि यह वीर भाई, अपनी बहनों की रक्षा न करता, तो कानून का, उन अबलाओं को क्या सहारा था। कानून के रहते कितने पाप दुनियाँ में हो रहे हैं, फिर क्यों कानून के नाम पर वीर पुरुष को एक सत्कर्म के लिये दण्ड दिया जा रहा है ?”

राय बहादुर साहब हँस पड़े। उन्होंने कहा—“तेरा साहस तो यथेष्ट है, पर तेरी सहायता कौन करेगा ?”

“प्रकाश की माता पीछे खड़ी-खड़ी सब सुन रही थी। उन्होंने आगे बढ़कर कहा—“मैं सहायता करूँगी।”

सुशीला ने पीछे फिरकर देखा, और वह वृद्धा के चरणों में लोट गई। वृद्धा ने उसे उठाकर छाती से लगाया, और कहा—“बेटी, हम लोग बिना प्रकाश को छोड़ा घर नहीं लौटेंगी ?” रायबहादुर साहब कुछ समयतक गम्भीर होकर देखते रहे। फिर घर जाकर परामर्श किया। रायबहादुर साहब तो घर लौट गये, पर गृहिणी और सुशीला वहीं रह गई। उन्होंने मुहल्ले-मुहल्ले में घूमकर आन्दोलन करना, और सुशिक्षिता स्त्रियों का एक संघ बनाना प्रारम्भ किया। अस्वबारों में भी काफी आन्दोलन उठा। एक दिन तीन हजार स्त्रियों की एक सेना, हाथ में काला झण्डा लिये वाइसराय की कोठी पर जा-खड़ी हुई। सबसे आगे सुशीला और गृहिणी थी। वाइसराय ने तत्काल दोनों को भीतर बुला भेजा, और आदरपूर्वक बैठाकर पूछा—“आप लोगों का उद्देश्य क्या है ?”

“हम चाहती हैं, स्त्री-जाति को अभय प्राप्त हो।”

“स्त्रियाँ ज्यों-ज्यों योग्य बनेंगी, अभय होंगी।”

“योग्य बनने के लिये उन्हें नगर में अभय रहना आवश्यक है।”

“यह तो सत्य है ।”

“इसके लिए सरकार का कर्तव्य ठीक-ठीक रहना चाहिये ।”

“सरकार यथा-सम्भव ऐसा करती है ।”

“फिर भी भारतीय स्त्रियाँ अरक्षित हैं । अंग्रेजी कानून उनकी यथार्थ रक्षा नहीं कर सकता, जैसा कि वह अंग्रेज स्त्रीका, इंग्लैंड और सारी पृथ्वी पर करता है ।”

“मैं यह अनुभव करता हूँ । वास्तव में कानून एक ऐसी वस्तु है, जिसका सदैव संशोधन होता रहना चाहिये ।”

“फिर जब तक कानून अपूर्ण हो, आत्म-रक्षा का क्या उपाय है ।”

“आत्म-रक्षा के लिये अपराध कानून में क्षम्य है ।”

“चाहे वह अपराध खून ही हो ?”

“अवश्य ।”

“और वह अपराध यदि अभिभावक ने किया हो !”

“यह तो बात ही दूसरी हो गई ।”

“पर इसकी आत्मा वही है ।”

“मैं इसे स्वीकार करता हूँ ।”

“कानून का यही अभिप्राय होना चाहिए, कि वह नीति के विरुद्ध न हो ।”

“अवश्य ।”

“तब हम लोग प्रकाशचन्द्र के लिये रिहार्ड को प्रार्थना करती हैं ।”

“किस आधार पर ?”

“उसने नीति के विरुद्ध कोई काम नहीं किया ।”

“परन्तु व्यवस्था और कानून के विरुद्ध... ?”

“कानून तो अपूर्ण है, यह आप अभी कह चुके हैं !”

“फिर भी उसका पालन जरूरी है।”

“वहीं तक, जहाँ तक नीति के विरुद्ध न हो।”

“इसमें नीति-विरुद्ध क्या हुआ ?”

“एक ऐसा व्यक्ति, जो नीति की मर्यादा को पालन करता हुआ दण्डित हो—वह नीति-विरुद्ध हुआ।”

और भी वाद-विवाद के बाद वाइसराय ने महिला-मण्डल को विचार करने का आश्वासन दिया, और इस घटना के एक मास बाद प्रकाश की जेल से रिहाई हो गई।

—:०:—

३६

कुछ लोग बहुत सीधे-साधे गौ की भाँति रहा करते हैं। पर वास्तव में वे सीधे नहीं होते, कमीने होते हैं। आत्म-सम्मान उनमें होता ही नहीं, विवेक और प्रतिष्ठा से भी उन्हें कोई सरोकार नहीं होता। वे बहुधा टुक-खोर कुत्ते होते हैं, और पेट के लिये अच्छा-बुरा सभी-कुछ कर गुजरते हैं। उनका धर्म पेट ही होता है। गोपा ऐसा ही आदमी था। इसकी उम्र ३५ के लगभग होगी। थिलकुल सूखचिड़ी, सुर्दार सी सूरत, मैले कपड़े और गन्दे दाँत, घिनौनी बे-तरतीब मूँछें, चुन्धी आँखें, बड़े हुए मैले सिर के बाल, उनपर एक पुरानी बाहियात टोपी, उस व्यक्ति के नगण्य व्यक्तित्व का परिचय दे रही थी।

यह आदमी वास्तव में कुर्रम था। क्या आप जानते हैं, कुर्रम कौन होते हैं ? दिल्ली में लोग बहुत हैं। कहना चाहिए,

इन लोगों की एक जाति की जाति है। इनका पेशा भले घर की बहू-बेटियों को इधर-उधर अड्डों पर ले जाना, और वहाँ लुच्चे-लफंगों को पहुँचाना है। गोपी ब्राह्मण था, पढ़ा-लिखा भी था। उसका पिता शहर का एक भलामानस नागरिक है, दो वर्ष से यह व्यक्ति घर से बाहर है। प्रथम वेश्या-गमन की आदत पड़ने से यह युवक पढ़ने से रह गया। खर्च की तंगी से घर की चीजें चुराने लगा। जब पिता ने घर से निकाल दिया, तब पेट के लिये इसने यह धन्धा किया। शुरू में वेश्याओं के लिये वह लजीले शिकारों को ताकता रहता। बहुत-से नौसिखिए युवक, जिन्हें पाप के पथ में जाने का अभी अभ्यास नहीं, उसमें प्रसन्न होने योग्य निर्लज्जता भी नहीं—बहुधा गन्दे बाजारों में चक्कर लगाया करते हैं, उन्हें कोठों पर चढ़ने का साहस प्रायः होता ही नहीं। गोपी-जैसे आदमी उनके लिये बड़े काम के होते हैं। गोपी ऐसे ही लड़कों को सड़क के एक किनारे खड़े होकर भाँपता रहता था ! ज्यों-ही वह समझता, शिकार ठीक है, वह फट-से आगे बढ़कर उनके सामने पहुँचता, मुस्कराकर एक सलाम झुकाता और धीरे-से कान में सुखद सम्झाव पहुँचता, तथा जैसे गड़ेरिया भेड़ों को ले जाता है, उन्हें अपने पीछे-पीछे ले जाता।

गोपी का केवल पेट ही नहीं था, उसे चण्डू, मदक पीने और कोकिन खाने की भी आदत पड़ गई थी। रोटी के बिना काम चल सकता था, पर इन चीजों के बिना नहीं। इसलिये उसके गुजारे के लिये यह कुकर्म छोड़, अन्य कोई वृत्ति ही न थी।

परन्तु इस काम में उसे किसी प्रकार की आत्म-ग्लानि होती हो, यह बात न थी। वह बड़े मजे में था। इसमें भी उसने कुछ हथकण्डों के ढंग निकाल लिये थे। अब वह बाजारू वेश्याओं की अपेक्षा खानगियों से ज्यादा सम्बन्ध रखता था। वहाँ उसे

ज्यादा कमीशन मिल जाता था। वह कुछ चालाकियाँ भी कर गुजरता था। चालाकियाँ कैसी, वह भी सुनिए—“किसी अनभिज्ञ, भोले-भाले युवक को उसने फाँसा—“चलिए बाबूजी, एक बहुत बढ़िया घरेलू चीज दिखाऊँ; सिर्फ अठन्ती का खर्च है, पसन्द न हो तो चले आइयेगा।” बाबू साहब साथ हो लिए। वह किसी गली में एक अँधेरे ठिकाने पर ले गया ? अठन्ती वसूत की।—“आप जरा यहीं खड़े रहें।” कहकर एक घर में घुस गया। क्षण-भर बाद बाहर आकर कहा—“एक मिनट यहीं ठहरिये, मैं अभी बुला लाता हूँ।” वह रफूचक्कर हुआ। अब आप की जबतक तबियत हो, खड़े रहिए; वह तो अब आने का नहीं।

अस्तु, यही गोपी बसन्ती के पास बैठा था। ठण्ड काफी थी, बसन्ती चौकी पर पैर फैलाये बैठी, मजे से आग ताप रही थी। उसने एक रेशमी दुलाई बदन पर लपेटी हुई थी। वह पान चबा रही थी, और इतरा-इतरा कर उस घृणित युवक से बातें कर रही थी। वह बात-बात पर कसमें खाता था, हँसता था, मिन्नतें करता था, हाथ जोड़ता था। बसन्ती एक-रस उसकी सब भाव-भंगी देख-सुन रहो थी, वह उसपर प्रकट किया चाहती थी, कि वह उसे घोर घृणा करती है। उसने अब एक अँगड़ाई लेते-लेते कहा—“अच्छा, अब चल, लम्बा बन, उनके आने का वक्त हो रहा है। मगर याद रख, ऐसे-गैरे को यहाँ लाने का काम नहीं है।

गोपी ने हाथ जोड़कर कहा—“भगवान् की कसम, मैं शरीफों से ही वास्ता रखता हूँ। वे मुसलमान हैं तो क्या, मगर एक ही रईसजादे हैं।”

बसन्ती ने होठों में हँसकर कहा—“चल, चल—बहुत रईसजादे देखे हैं। कुछ गाँठ में भी है या कोरे रईसजादे हैं ?”

गोपी ने पास खसककर बसन्ती के पैर दबाने का उपक्रम करते-करते कहा—“पहले ही दिन पचास न गिनवा दूँ, तो बात नहीं।”

बसन्ती की आँखें चमकने लगीं। उसने कहा—“सच ? “गंगा की कसम”। गोपी की घृणित आँखें भी चमकीं। “पर सुनो, दस से कम न लूँगा। मामला साफ अच्छा होता है।”

बसन्ती हँस पड़ी। उसने कहा—“अच्छा, आज नहीं कल। अब तू रास्ता नाप।”

वह स्वयं ही उठ खड़ी हुई। गोपी ने उठते-उठते कहा—“आज तो कुछ भी मिला नहीं। कुछ नशे-पानी को तो दिलवाओ। गङ्गा की कसम, दम निकल जाता है।”

“अरे, मुये, तेरा कलेजा जलकर खाक हो जावेगा।”

इसपर गोपी ने हँसकर जरा ऊँचो गर्दन करके कहा—“इस मजे को तुम क्या जानो ! कहो, तो कल पुड़िया लाऊँ ?”

“क्यों रे ! क्या सचमुच उसमें शराब से भी ज्यादा मजा है ?”

“शराब इसके सामने क्या हस्ती रखती है ?”

“तो कल एक पुड़िया लाना।”

“लाओ, फिर एक चिट्ठा मुकाओ।”

बसन्ती ने एक रुपया फेंककर उसे चले जाने का इशारा किया, और वह चुपचाप पलंग पर जाकर पड़ रही।



पतन भी जीवन का एक अद्भुत स्वरूप है; खासकर यदि नारी का पतन हो। नारी की मर्यादा, उसकी पवित्रता, उसकी प्रतिष्ठा बहुत ऊँची है। अस्मत् उसका सर्वापरि धन है। अस्मत् के लिये नारी-जाति ने सहस्रों बार वीरतापूर्वक प्राण दिये हैं। वही अस्मत् पतन के मार्ग पर चलकर केवल नारी ही बेच सकती है, और उसके मूल्य की गिरती हुई दर पर जब गौर किया जाय, तो फिर खेद को छोड़कर और कुछ हाथ नहीं लगता।

वसन्ती भले घर की बेटी थी। वह पढ़ी-लिखी भी थी; उतनी जितनी हिन्दू-कन्याएँ साधारणतया पढ़ा करती हैं। वह चंचल थी, तिसपर संस्कारों की गुलाम। स्कूल का अध्यापिकाओं और सहेलियों ने उसे पतन की भाँकी कराई। अभागिनी बूढ़े से ब्याही गई, और अति बाल्यावस्था में विधवा भी हो गई। माँ-बाप मर गये। कहिये, अब इस चपल दुर्बल-हृदया हिन्दू-बालिका के लिये कौन-सी गति है? उसने भीख-माँगी, भूखी रही, कष्ट सहे। विपत्ति के साथ यौवन ने भी उसपर आक्रमण किया। उसने विपत्ति से युद्ध का अच्छा अभ्यास नहीं किया था, कि यौवन ने उसे पछाड़ दिया। वह पतन के रास्ते पर बह चली। उसके सामने पेट था, जीवन था। जीवन का आदर्श भी कुछ होता है, वह उसे कौन बताता? वह आदर्श को भूल कर पेट पर झूब गई!

प्रथम बार उसे जिस युवक ने फुसलाया था, उसका उसके घर आना-जाना अब भी जारी था। पर अब गापो-जैसा कीड़ा उसके सामने आ गया था। उसने पाप की दूसरी पोथी पढ़ाना

प्रारम्भ किया। अब वह इस दशा को पहुँच चुकी थी, कि वह कभी उसके विपरीत सोच ही नहीं सकती थी। वह अपनी हालत में खुश थी। वह यह नहीं समझती थी, कि वह अपना शरीर बेच रही है। वह समझती थी, कि मैं शिकार फँसाती हूँ। मनुष्यों को विजय करती हूँ !

वही पतित गोपी और उसके साथ एक मुसलमान युवक वहाँ बैठे थे। शराब का प्याला और बोतल बीच में था। युवक ने शराब प्याले में उँडेलकर कहा—“पीजिये !”

बसन्ती पीती तो थी, पर बहुत कम। आज उसकी मात्रा बढ़ गई थी। उसने कहा—“जी नहीं, मैं इतना ज्यादा शौक नहीं रखती, आप पीजिये।”

पर युवक पूरा चरट था। उसने दो-चार प्याले उसे और पिला दिये ! बसन्ती अनर्गल बकवाद करने लगी। उसे आपे का ज्ञान न था। गुनहगार गोपी मतलब गाँठ रहा था। बसन्ती ने अनायास ही अपना शरीर उस अपवित्र युवक को सौंप दिया।

फिर तो सिलसिला जारी रहा। वह युवक वास्तव में कोई बड़ा आदमी न था; एक निकृष्ट प्राणी था। झूठी शान बनाकर यहाँ आया था। वह शान शीघ्र ही उड़ गई। परन्तु बसन्ती पर उसका प्रभाव था। अपने पुराने प्रेमी के प्रति उसके मन में तिरस्कार उदय हो गया। वह कुछ दिन तक तो अपनी इस पाप-वार्ता को छिपाती रही, पर शीघ्र ही भंडा-फोड़ हो गया। इसी नारकी गोपी ने गोविन्दसहाय को सब भेद बता दिए। गोविन्दसहाय आता, तो प्रायः दोनों में चस्म-चस्म चला ही करती। धीरे-धीरे ज्यों ज्यों गोविन्दसहाय रुखा और सख्त

होता गया, वसन्ती भी उससे तिनकती गई। उसने गोविन्द-सहाय से अलग होने का पक्का इरादा कर लिया।

इधर गोपी ने गोविन्दसहाय को वसन्ती के विरुद्ध भड़काया, उधर वह वसन्ती को भँति-भँति के सब्ज बाग दिखाने लगा। शीघ्र ही वह लुका-छिपाकर और भी निरुष्ट आदमियों को वहाँ लाने लगा। वसन्ती अब गले तक डूब चुकी थी। उसका अन्तर-ज्ञान सो गया था। उसकी शराब की मात्रा भी बहुत बढ़ गई थी, वह कोकीन भी खाने लगी थी। फलतः उसका वह रूप सूख चला। आँखें गढ़े में धँस गईं, होठ सिकुड़ गये, शरीर झुक गया और काला हो गया। चेहरे की कान्ति नष्ट हो गई। इन सभी विनष्ट चीजों के लिये, उसका झार बढ़ गया था। वह पाउडर लगाती, आँखों में काजल और होठों पर सुर्खी लगाती। वस्त्रों का भी वह काफी हेर-फेर रखती। अब वह मनुष्य-मात्र को मोहने का इरादा रखती थी। वह चाहती, कि उसकी मोहने की शक्ति जितनी बढ़ सके, अच्छी है।

वह जिस मोहल्ले में रहती थी, वहाँ अब उसकी गुजर न हो सकी। उसे वह घर छोड़कर नीचे लोगों के महल्ले में हटना पड़ा, जहाँ अबाध रूप से उसका पाप-व्यवसाय चलने लगा। गोपी अब दिन-भर उसी के घर पड़ा गालियाँ और झूठे टुकड़े खाया करता। वह एक प्रकार से उसका गुलाम था। अब वह सोलह-आने उसी का एजेण्ट था। वह दिन छिपते ही शिकार की तलाश में निकलता, और जहाँ तक बनता, दो-चार को रोज फँसा लाता। इस प्रकार वसन्ती पाप की वैतरणी में गोते लगाने और बहने लगी। गोविन्दसहाय बहुत कम आने लगा था। इधर कुछ दिन से, जब से एक बार झड़प हो चुकी थी, वह बिल्कुल नहीं आया था। वसन्ती अकेली बैठी थी। उसकी

तबियत अच्छी न थी। गोपी उसके पास बैठता तलुए सहला रहा था। गोविन्दसहाय ने अचानक कमरे में प्रवेश किया। वह सामने कुर्सी खींचकर बैठ गया, और कड़ी दृष्टि से गोपी की ओर देखने लगा। मामला गहरा देख, बसन्ती ने गोपी को बाहर भेज दिया, और फिर सिंहनी की भाँति धूर-धूरकर गोविन्दसहाय को देखने लगी।



४१

गोविन्दसहाय ने क्रोधावेश में उछलकर बसन्ती को जमीन पर दे मारा। उसकी छाती पर सवार हो जोर-से उसका गला दबाते हुए बोला—“हरामजादी, सब बता, और कौन यहाँ आता है?”

“बसन्ती ने पूरा जोर लगाया, पर छूट न सकी। अन्त में उसने यथा-सम्भव चिल्लाकर कहा—“यहाँ लाख आयेंगे, तुम रोकनेवाले कौन हो? तुम्हारी कोई दबैल हूँ, या व्याहता?”

“मैं उसे भी तुम्हारे साथ मार डालूँगा। बता उसका नाम क्या है?”

“जो न मार डाले, तो तेरी जनती पर धिक्कार है! मैं नहीं बताऊँगी।”

गोविन्दसहाय ने और भी जोर-से गला दबाकर कहा—
“बता लुच्ची, वह तेरा यार कौन है?”

“कभी नहीं, बताऊँगी जान भले-ही चली जाय।”

गोविन्दसहाय ने उसका सिर धरती पर पटककर कहा—
“माल खायेगी मेरा, और मौज करेगी यारों से—क्यों ?”

“करूँगी, क्या करोगे तुम ?” इतना कहते-कहते अवसर पाकर उसने गोविन्दसहाय की कमीज फाड़ डाली, और उसे काट लिया।

अब एक झटके के साथ गोविन्दसहाय उठ खड़ा हुआ। वसन्ती अभी उठे-ही-उठे, कि उसने एक धोती से उसे कसकर बाँध दिया, एक अँगोछा उसके मुँह में दूँस दिया। इसके बाद वह उस घर की तलाशी लेने लगा। नकदी और कीमती सामान सबकी उसने एक गठरी बाँधी। इसके बाद वसन्ती के शरीर के गहने-पाते उतारकर वह लम्बा हुआ। वसन्ती छटपटाती रही, पर उसकी एक न चली।

गोविन्दसहाय के जाने के थोड़ी-ही देर बाद एक युवक ने घर में प्रवेश किया। यह वही मुसलमान था। उसने झटपट उसके हाथ-पैर खोले, और माजरा पूछा। वसन्ती ने छूटते ही कहा—

“वह खनी सब लूट ले गया। कुछ भी न छोड़ा।” वह दोड़ दोड़कर घर-भर में घूमने लगी। इसके बाद चिल्ला कर बोली—
“हाय ! हाय !! कुछ भी न रहा।”

युवक ने कहा—“मैंने तुमसे कहा था न, पर तुमने न माना। अगर तुम सारा माल-ताल मेरे सुपुर्द करती, तो ऐसी जगह रख देता कि किसीको हाथों-हाथ भी खबर न पड़ती।”

“अब क्या करना चाहिये ? क्या उस मूँजी को योंही छोड़ दिया जाय ?”

“अखिर माल तो उसी का था ?”

“उसने क्या अहसान में दिया था, शरीर बेचकर पाया था।”

“फिर क्या करना चाहती है ?”

“उसपर मुकदमा चलाऊँगी।”

“उससे क्या होगा?”

“इस तरह पाई-पाई वसूल करूँगी।”

युवक मूर्ख और कोई नीच आदमी था। सब बातें तो समझा नहीं था, बोल उठा—“अच्छी बात है, सुबह अपने एक वकील दोस्त के पास तुम्हें ले चलूँगा।”

रात-भर दोनों बदनसीब वहीं रहे। सुबह दोनों निकले और वकील साहब की सुध ली। वकील साहब थे नये रँगरूट—न आगे नाथ न पीछे पगहा। न मुवकिल, न मुहर्रिर। एक टूटी-सी मेज, दो तीन-तीन टाँग की कुर्सी, और तीन-चार मैली पुरानी किताबें। युवक पीछे, और बसन्ती आगे-आगे थी। इस अद्भुत मुवकिल को देखते-ही वकील साहब की बाँछें खिल गईं। युवक ने जो पीछे से इशारा किया—तो उसे समझकर वे फूलकर कुप्पा हो गए। मुवकिल को सामने कुर्सी पर बैठाकर कहा—“कहिए, क्या काम है?”

“एक मुकदमा है।”

“कैसा मुकदमा है, बताइये?”

“एक बदमाश कल रात मेरे घर में घुसकर, जोर-जुल्म से सब-कुछ लूट ले गया।”

“ऐं! लूट ले गया?”

“जी हाँ।”

“तुम चिल्लाई नहीं?”

“वह छाती पर चढ़ बैठा, और मुँह में कपड़ा ठूँस दिया।”

“हूँ... कोई गवाह?”

“गवाह कौन होता?”

“बिना गवाह के मुकदमा कैसे चलेगा!”

“अब यह मैं क्या जानूँ ?”

“उसकी और तुम्हारी कुछ आशनाई तो न थी ?”

“यह मैं नहीं बताने की ।”

“लो, जब तक सब बातें न बताओगी, हम समझेंगे क्या, और लड़ेंगे क्या ?”

“आशनाई थी, तभी तो ।”

“कब से आता था ?”

“तीन साल से ।”

“भगड़ा क्यों हुआ ?”

“औरों के आने पर ।”

वकील साहब झिझके । फिर कहा—“बुरा न मानना । बात समझने के लिये पूछता हूँ । तुम कौन जात हो ?”

“बनिया ।”

“क्या पेशा कमाती हो ?”

“पेशा क्या कमाती हूँ ? अपने घर रहती हूँ ।”

“घर में और कौन कौन हैं ?”

“कोई नहीं, अकेली रहती हूँ ।”

“रहनेवाली कहाँ की हो ?”

“यह न बताऊँगी ।”

“यहाँ कैसे आई !”

“यही आदमी उड़ा लाया था ।”

“अच्छा, खुलासा हाल कह जाओ, कैसे-कैसे यहाँ आई ।”

बसन्ती कुछ देर तक चुप रही । फिर कहने लगी—“मेरा घर कहाँ है, यह न बताऊँगी ! घर में सास और पति थे । वह परचूनी की दुकान करते थे । यह गोविन्दसहाय हमारे गाँव में आत-जात था । माल-टाल भी खरीद ले जाता था । मेरे आदमी

को पागल कुत्ते ने काट खाया, और वह कसौली के अस्पताल में जाकर मर गया। तब से हम दोनों सास-बहू रहने लगीं। गोविन्दसहाय का जाना-अना तो लगा ही रहता था। उसने मुझसे आँखें लड़ाना शुरू किया—पहले तो मैं डरी—पर एक दिन जब वह आया, तब मेरी सास कहीं बाहर गई थी। उसने पानी माँगा—मैंने भीतर बुलाकर पिला दिया। बस, इसने हाथ पकड़ लिया। मैंने बहुत नानूँ की; इसने एक न सुनी—जबर्दस्ती मेरा धर्म बिगाड़ दिया, और ५० का नोट देकर चला गया। इसके बाद और दो-तीन बार ऐसा हुआ। अन्त में एक दिन हमारे कौल-करार हो गये। मैं रात को छत पर चढ़कर पड़ोस की एक बुढ़िया के घर में उतर गई। उससे हमने कुछ लालच देकर पहले-ही बन्दोबस्त कर रखा था। वहाँ मैं ३ दिन भुस की कोठरी में छिपी रही। वह तीन दिन तक गाँव में घूमता रहा, जिससे किसी को उसपर शक न हो। जब दौड़-धूप बन्द हो गई; तब रेल में बैठकर यहाँ आ गई। तीन साल से यहाँ रहती हूँ।” वकील साहेब ने सब सुनकर कहा—

“भाड़ें का यही कारण है जो बनाया या और कुछ?”

“कुछ दिन से उसका मन मुझसे उतर गया था। वह एक और लड़की को फुसलाने को कहता था—पर वह हाथ न आती थी, इसपर जब चख-चख चलने लगी, तब मैंने भी अपना रास्ता देखा। बस, बात इतनी-सी ही है।”

वकील साहेब बोले—

“अच्छी बात है, मैं मुकदमा लड़ूँगा। गवाह का प्रबन्ध भी कर दूँगा, मगर फीस क्या दोगी?”

“मेरे पास कुछ नहीं है।”

“वाह, फिर काम कैसे चलेगा?”

“मैं हर तरह से खिदमत में हाजिर हूँ।”

वकील साहेब भेद-भरी आँखां से उसे देखने लगे। बोले—
“एक बात मानोगी?”

“क्या?”

“मुसलमान हो जाओ।”

“उससे क्या होगा?”

“हम घर में डाल लेंगे।”

“मेरा धर्म-ईमान?”

“लो, अभी तुम धर्म-ईमान को साथ ही लिये फिरती हो?”

“और जो फिर धोखा दिया?”

“हादौलबिला-कूबत, ऐसा भी कहीं होता है?”

बसन्ती सोच में पड़ गई। अन्त में दोनों शैतानों ने उस बदनसीब को मुसलमान होने पर राजी कर लिया, और उसी दिन वह मुसलमान कर ली गई। इसके बाद उसे समझा-बुझा-कर मुकदमे के झंकट में न पड़ने को भी राजी कर लिया। वे दोनों कुत्ते उससे अपनी लिप्सा तृप्त करने लगे। खर्च था, तँदूर की दो रोटियाँ, और जरा-सा सालन! अलवत्ता शराब की जो लत उसे पड़ गई थी, वह उससे न छूटी। यहाँ उसके पैर और भी बढ़ गये।

४२

जिस पुरुष ने आकर मालती को सहारा दिया, उसे मालती ने होश-ह्वाश ठीक होने पर गौर से देखा। उसे देखकर वह भयभीत हो गई। उसका ठिगना कद, भरभराया लाल चेहरा, छोटी-छोटी आँखें, खिचड़ी बाल देखकर वह छिटककर जरा अलग जा-खड़ी हुई।

उस व्यक्ति ने यथा-सम्भव अपनी खरखरी आवाज को मधुर बनाकर कहा—“माजरा क्या है बहिन जी; क्या मैं आप की कुछ मदद कर सकता हूँ ?”

मालती पर इस सम्बोधन और भाषण का अच्छा असर हुआ। उसने कुछ रुदन-भरे स्वर में कहा—“मैं दुष्टों के फन्दे में फँस गई हूँ। आप कौन हैं, नहीं जानती—पर मैं यशोदानन्दन-जी की पुत्री हूँ, जो शहर के प्रतापुत वकील हैं। आप कृपाकर मुझे घर तक पहुँचा दें, आपका बड़ा अहसान होगा।”

मालती की बात सुनकर उस व्यक्ति ने कुछ विस्फारित नेत्रों से कहा—“अरे ! आप यशोदानन्दनजी की लड़की हैं ? तब तो अपनी ही लड़की हुई। यशोदानन्दनजी तो अपने पुराने मित्र हैं।” इतना कहकर उस व्यक्ति ने कुछ फासले पर खड़ी एक स्त्री की ओर देखकर कहा—“सुना तुमने देवीजी ? ये बिचारी यशोदानन्दनजी की लड़की हैं—वही यशोदानन्दन, जिन्हें उस दिन तुमने दावत दी थी, जिस दिन डिप्टी साहेब हमारे यहाँ आये थे।”

इसपर देवीजी ने मुस्कराकर सिर हिला दिया, और तनिक निकट आकर कहा—“तुम्हारा नाम क्या है बीबी ?”

“मेरा नाम मालती है !” उसने आश्वस्त हो कर कहा।

“अरे, तुम मालती हो ? मैंने तुम्हें जरी-सी देखा था; अब इतनी बड़ी हो गई ?”

मालती अभी तक घबरा रही थी। उसने कहा—“कृपाकर, आप मुझे घर तक पहुँचा दें।”

अब उस व्यक्ति ने कुछ चिन्तित स्वर में कहा—“पर घर में तो कोई है नहीं, आज-ही सब लोग तुम्हारी खोज में बनारस गये हैं। बेचारों ने धरती-आसमान एक कर डाला है। यह किसे खबर थी, कि तुम यहीं छिपी बैठी हो ?”

मालती ने धवराकर कहा—“अब क्या होगा ?”

“यही तो सोचना है ।” यह कहकर वह व्यक्ति गम्भीर सोच में पड़ गया । फिर उसने देवीजी को सम्बोधन करके कहा—“मुझे कचहरी का जरूरी काम है—वरना मैं इन्हें बनारस जाकर यशोदाजी के सुपुर्द कर आता । अब और किसे भेजूँ ? ऐसा करो, तुम्हीं न चली जाओ, मैं रेल में बैठा दूँगा । मणिकर्णिका पर-ही तो यशोदा बाबू ठहरेंगे । मैं कचहरी से फारिग होते ही चला आऊँगा ।”

देवीजी ने कहा—“यह कैसे हो सकता है ? आखिर कल-ही तो भाई की शादी है, फिर वहाँ से लौटकर शादी में कैसे शरीक हो सकती हूँ ?”

“अब शादी में शरीक होना नहीं हो सकेगा । देखती हो, लड़की कितनी धवराई है । इससे ज्यादा वे धवरा रहे होंगे । अब शादी को देखा जाय, या इस काम को ?” इसके बाद उस व्यक्ति ने घड़ी देखकर कहा—“एक गाड़ी तो अभी छूट रही है । सिर्फ १५ मिनट की देर है । स्टेशन ८-७ मिनट का रास्ता होगा । तो, अब सोचा-विचारी न करो, इस बेचारी को यशोदा जी को सौंप आओ । इस गाड़ी से जाकर तुम कल तक आ भी ता सकती हो !”

देवीजी राजी हो गईं ।

मालती कुछ भी न सोच सकी, कि क्या करे । इनपर विश्वास करे, या नहीं—बनारस जाय, या नहीं । वह विमूढ़ की भाँति उनके पीछे-पीछे स्टेशन तक चली गई । उस व्यक्ति ने दो टिकिट खरीदकर जनाने डिब्बे में उन्हें बैठा दिया, उनके खाने-पीने की भी व्यवस्था कर दी ।

गाड़ी चलने पर देवीजी की लच्छेदार बातों से मालती कुछ

बेफिक्र होकर सो गई। जय वह उठी, बनारस निकट आ गया था। मालती माता-पिता से मिलने को उत्सुक हो रही थी। वह जल्दी-जल्दी गाड़ी में उतरी। देवीजी ने घोड़ा गाड़ी किराये पर किया। और गाड़ी धड़धड़ती नगर की ओर चल दी।

देवीजी ने रास्ते में कहा—“अच्छा तो यह है, कि हम पहले घर चले चलें। वहाँ तुम्हें छोड़कर फिर मैं तुम्हारे पिता को ढूँढ़ूँ। न जाने कहाँ उतरे हैं! तुम कहाँ-कहाँ भटकती फिरोगी?”

मालती ने कहा—“हाँ क्या है? मैं साथ ही रहूँगी।”

देवीजी ने कहा—“बेटी, तुम तो समझती नहीं, अभी तुम्हें इन बातों का ज्ञान नहीं है। मिर उठाया, और चल दी। इसी से तो यह मुसीबत सिर पर ली। अब मेरा कहना मानो। पहले घर चलें, पीछे मैं उन लोगों को ढूँढ़कर ले आऊँगी। मुझे आज ही लौटना भी है। भाई की शादी में मैं बिना गये नहीं रह सकती।”

मालती कुछ विरोध न कर सकी। पर उसका कलेजा धड़-धड़ाने लगा। देवीजी के संकेत पर गाड़ी कुछ देर तक गली में चलकर एक बड़े मकान के आगे रुक गई। मालती ने उतरकर देा, मकान पर साइनबोर्ड लगा था—“विधवा-आश्रम”। उसने हिचकिचाते हुए देवीजी से पूछा—“क्या आप यहीं रहती हैं?”

देवीजी ने उपेक्षा से ‘हाँ’ कहा—और भीतर चल दी। निरुपाय मालती भी भीतर चली गई।

भीतर दालान में तीन-चार आदमी एक टूटी सी मेज को आगे धरे बैठे थे। एक कोई २४-२६ वर्ष का नवयुवक था। वह बात-बात पर मुस्कराकर जवाब देता था। दो-तीन आदमी और खड़े थे। वे पूरे गुन्डे दीख पड़ते थे। इन्हें देखते ही सब की

वाँछें खिल गईं । सब ने एक स्वर से पूछा—“इस बार क्या माल लाई हो ?”

देवीजी जरा हँसी, परन्तु चुप रहने का संकेत करके कहा—
“ऊपर का मेरा कमरा खुलवा दो, और तुम शङ्कर, जरा दौड़ जाओ, मणि कर्णिका घाट पर, कहीं यशोदाजन्मनजी वकील ठहरे हैं, उन्हें साथ ही ले आओ । कहना, मालती मिल गई है, और वह आश्रम में सुरक्षित है ।” शङ्कर ने एक खास प्रकार का संकेत पाया, और दिया भी । फिर वह ‘बहुत अच्छा’ कहकर चल पड़ा, देवीजी मालती को लेकर ऊपर चढ़ आईं । कमरे में जाकर देखा खासा सजा हुआ है । वह एक कुर्सी पर बैठकर उद्वेग और घबराहट से तिलमिलाने लगी । देवीजी यह कहकर, कि ‘मैं नित्य-कर्म से निपट लूँ’—वहाँ से खिसक गईं । वह एकाएक मालती के प्रश्नों और सन्देह से बचना चाहती थी, और सब वातावरण को ठीक भी किया चाहती थी ।

मालती जब कमरे में अकेली रह गई, तो वह अपनी दशा पर विचार करने लगी । एक अज्ञात भय उसके हृदय में उत्पन्न हो गया । वह सोचने लगी—विधवाश्रम में वह क्यों लाई गई है ? विधवाश्रम के सम्बन्ध में वह कुछ विशेष नहीं जानती थी । फिर भी वह कुछ सुन अवश्य चुकी थी । और वह जितनी जल्दी सम्भव हो, वहाँ से निकल-भागने को व्याकुल होने लगी । वह कमरे से बाहर आई । एक बार सरसरी नजर से उसने पूरे मकान को देखा, फिर उसने तमाम घर को और उसके रहने-वालों को अच्छी तरह देखने का संकल्प कर लिया । पहले उसने दूसरे खण्ड की सैर की । वह एक छोटी-सी छत पार करके सामने के एक बड़े कमरे की तरफ चली गई । इसमें से बातचीत करने और हँसने-बोलने की आवाज आ रही थी ।

उसने देखा—उसमें तीन औरतें बैठी हैं। एक की उम्र तीस के लगभग होगी। वह दुबली-पतली बदनसूरत-सी औरत थी। उसके गाल पिचक रहे थे, और मुँह पर बड़े-बड़े दाग पड़ गये थे। उसकी नाक भी बीच से बैठ गई थी। दूसरी एक, १६-२० साल की युवती थी, पर बुढ़िया-सी मालूम देती थी। उसके नेत्रों में दुष्टता साफ-साफ झलक रही थी। तीसरी, एक १६-७ साल की लड़की थी। यह कोई नीच जाति की लड़की थी, और लावारिस माल की भाँति आ गई थी।

उसने तीनों से बातचीत की। उससे उसने समझा, कि पहली पूर्व की रहने वाली बनैनी है। एक मुसलमान उसे उड़ा लाया था। वहाँ से भागकर यहाँ आ फँसी है। ये लोग पति के पास पहुँचाने का वचन देकर लाये थे, पर अब शादी कराने पर तुले हुए हैं। दूसरी बरेली की नाइन थी, जिसे चोरी के अपराध में दो मास की सजा हो चुकी थी। वहाँ से वह सीधो इस आश्रम में ले आई गई। तीसरी कोई कंजर की लड़की थी, जो भटकती फिर रही थी—यहाँ रख ली गयी थी। इन सब को देख, और इनकी बातें सुनकर मालती के मन में जो शंका थी, वह और भी मजबूत हो गई, और वह समझ गई, कि वह बड़े भारी जंजाल में फँस गई है। अब वह छत के दूसरे छोर पर चली आई। वहाँ दो युवतियाँ बारीक पाट की धोती पहने बैठी थीं। उन्होंने हँसकर मालती का स्वागत किया। मालती ने समझ लिया, कि ये पतित स्त्रियाँ यहाँ के वातावरण में पूरी तौर पर रँग गई हैं, और इनको अपने पतित जीवन पर तनिक भी लज्जा नहीं है। वे अनेक-बार वहुनों को उलू बना चुकी हैं।

मालती अब तेजी-से कोठरी में चली आई। देवीजी वहाँ प्रथम ही आ गई थीं। उन्होंने रोष भरे स्वर में कहा—“वहाँ क्या करने गई थी?”

मालती ने उसके प्रश्न का कुछ भी उत्तर न देकर कहा—
“क्या मेरे पिताजी का पता चला ?”

“वे वहाँ नहीं मिले; मेरा आदमी उन्हें ढूँढ़ रहा है।”

“मैं जल्द-से-जल्द यहाँ से चली जाना चाहती हूँ।”

“यहाँ तुम्हें कुछ कष्ट हुआ क्या ?”

“कष्ट कुछ नहीं, पर मेरी यहाँ एक मिनिट भी रहने की इच्छा नहीं है।”

“बिना अधिष्ठाताजी के आये तो तुम नहीं जा सकती।”

“अधिष्ठाता कौन ?”

“वही, जो तुम्हें वहाँ मिले थे, जिन्होंने तुम्हें यहाँ भेजा है।”

“क्या वे यहाँ के अधिष्ठाता हैं ?”

“हाँ।”

“और तुम ?”

“मैं सुपरिण्टेण्डेण्ट हूँ।”

“तुम ?”

मालती की आँखों से आग निकलने लगी। उसने कहा—
“तब तुम लोगों ने धोखा देकर मुझे यहाँ ला पटका है।”

“वहाँ क्या तुम अपने महल में बैठी थीं ? इतनी लाल-पोली क्यों होती हो ?

मालती ने क्रोध से काँपते हुए कहा—“सच कहो, कि क्या मेरे पिताजी के यहाँ आने की बात सत्य है ?”

“मैं क्या जानूँ ? अधिष्ठाताजी जानें, यहाँ तो वे मिले नहीं।”

“समझ गई, मैं ठगों के फन्दे में फँस गई हूँ। परन्तु खैर इसी में है, कि मुझे तुम अभी चली जाने दो।”

देवीजी बिना जवाब दिये, वहाँ से उठ खड़ी हुई। मालती ने उसका पल्ला पकड़कर रोकना चाहा। देवीजी ने उसे धकेल कर बाहर से कुण्डा चढ़ा दिया। मालती अचानक धक्का खाकर गिर पड़ी। देवीजी वहाँ से सीढ़ी उतर आई, और एक नौकर को उस कोठरी में ताला बन्द कर देने की आज्ञा दे दी। कोठरी पर कड़ा पहरा बैठा दिया।



४३

वृद्धा गृहिणी अपने घर में उदास बैठी वर्तन माँज रही थी। उसका मुख फीका, आँखें तेजहीन और मन चञ्चल हो रहा था। इतने में नारायणी रोती हुई माता के पास आई। गृहिणी ने कुछ उपेक्षा के स्वर में कहा—“क्या है री ? क्यों रोती है ?”

नारायणी रोती रही। माता ने फिर पूछा—“कुछ कहेंगी भी, क्या हुआ ?”

नारायणी ने रोते-रोते कहा—“कुन्दन की बहू, जीजी को मालती दे रही थी।”

“मालती दे रही थी ? क्यों ? उसने उसका क्या किया है ?”

नारायणी ने रोना बन्द करके कहा—“मैं पानी लेकर आ रही थी, उपर से कुन्दन की बहू और छज्जो आ रही थीं—मुझे देखकर वे तरह-तरह की बात कहने लगीं।”

“क्या कहने लगीं ?”

नारायणी चुप रही। पर माता के फिर पूछने पर कहा—

“उन्होंने कहा—‘जलमुँही भग्गो ने पेट गिराया है। राँड यागों से मिल रही है, और माँ-बाप उसकी कमाई.....’”

नारायणी और कुछ कह रही थी, कि वृद्धा ने अधीर होकर हाथ के बासन पटक दिये, और कड़ककर कहा—“बस-बस बक मत ! चुप रह ! जा घर में लुच्ची-राँड ! पराये घर की भूठी-सच्ची बातें बखानती फिरती हैं, सतखसमी कहीं की ! आन दे, राँडों का चोटा पकड़कर उखाड़ लूँगी।” इतना कहकर वृद्धा क्रोध से अधीर होकर इधर-उधर टहलने लगी। नारायणी नीचा सिर किये घर में चली गई।

इतने-ही में कनछिद की बहू ने आँगन में प्रवेश करते-करते कहा—“क्यों काकी ! क्या यह सच है ?”

गृहिणी ने बक दृष्टि से उसकी ओर देखते-देखते कहा—“क्या री ?”

उसने और धीरे से वृद्धा के कान में झुककर कहा—“यही, जो लुगाइयां भगवती का नाम धरती फिरती हैं ?”

कनछिद की बहू पूरी बात कह भी न पाई थी, कि वृद्धा ने दाँत पीसकर कहा—“कुतिशाँ, पराये घरकी बहू-बेटियों पर क्यों दाँत घिसती फिरती हैं ? उनके घर में क्या बहू-बेटियाँ नहीं हैं ?”

पड़ोसिन ने रङ्ग-ढङ्ग खराब देखकर दबी जवान से कहा—“यह तो मैं भी कहती हूँ।”—और चम्पत हुई।

अब की जयगोपाल की नानी घर में घुसी। वह गम्भीर भाव से गृहिणी के पास आकर, पैर फैलाकर बैठ गई। गृहिणी ने कुछ न कहा, चुपचाप अपना काम किये गई। नानी ने सहा-नुभूति से गृहिणी के कान के पास झुककर कहा—“क्यों री, हरी की माँ, बुढ़ापे में तुम्हारी मत भी मारी गई, तुमने भी देखभाल नहीं की ?”

गृहिणी ने उसकी ओर देखकर कहा—“कैसी देख-भाल ?”

“इस लड़की की—गाँव-भर के लोग जन्म में थूक रहे हैं। मुँह दिखाने को जगह नहीं रही।”

गृहिणी ने मुँह झुकाकर कहा—“लोगों को पराये घर की इतनी फिकर क्यों है ? उनके घर में क्या सब मर गए हैं—जो मेरे घर बक-बक करने को आते हैं ?”

नानी ने बात टालने के ढंग से कहा—“और क्या ? अपनी-अपनी इज्जत-आबरू नहीं देखते। कोई एक कहे, तो ऐसी फटकारना, कि याद करे ! सुनके मुँहसे तो रहा न गया। कहने को चली आई। अच्छा अब जाती हूँ।” कहकर नानी जान लेकर भागी।

इतने ही में भङ्गन घर साफ करने आई। आते-ही उसने कहा—“आग लगे इन लुगाइयों को जैसे कोई काम-ही नहीं है।”

गृहिणी ने कुछ न सुना। वह चुपचाप दम-भारे बासन माँजती रही।

मेहतरानी ने तीर खाली जाता देखकर कहा—“बहूजी ! तुमने कुछ सुना ?”

“क्या ?”

“सुसरी लुगाइयाँ भग्गो का नाम ले-लेकर ठौर-ठौर बक रही हैं।”

गृहिणी ने अश्रीर होकर कहा—“बकती हैं, तो बकने दे। भगवान् करे, उनके घर में भी यह कौतुक हो ! भगवान् करे, कोढ़ चुए—जो पराई बात पर मटकें !”

मेहतरानी ने देखा, कि पूरी बात कहने का अवसर ही जा रहा है। वह बोली—“मैंने भी लुब्धियों को खूब सुनाई।”

वृद्धा वहाँ खड़ी न रही, वह तीव्रता से भगवती की कोठरी की ओर लपकी।

४४

“अरी कुलच्छनी ! कुलबोरनी ! तू पैदा होते ही क्यों न मर गई ? मेरी ही कोख में तुझे जन्म लेना था, सत्यानासन !!”

भगवती विषण्ण भाव से अकेली बैठी मन-ही-मन अपनी अवस्था पर विचार कर रही थी। पहली बार जिस काम को महा-दुष्कर्म समझकर अपराधिनी की भाँति काँप उठती थी, अब उसे वह दुष्कर्म नहीं समझती। अनेकों बार उसने माँ-बाप, भावज-भाई की मार, झिड़की, अपमान सहे थे। पर अब उसने विचारा कि आखिर इन लोगों को यह सब कहने का अधिकार ही क्या है ? स्त्री-पुरुष ब्याह करके रहते हैं, तब पातक नहीं लगता। हमारा भी ब्याह मानो मन-ही-मन में हो गया है। और यदि यह पाप ही है, तो उसे मैं ही तो भोगूँगी, ये क्यों चाँव-चाँव करके सिर खाये जाते हैं ? इन्हीं सब विचारों में भगवती अनमनी-सी बैठी थी। तभी उसकी माँ ने दुःख और क्रोध में वह वचन कहे।

भगवती बहुत सह चुकी थी, अब न सह सकी। उसने क्रुद्ध सिंहनी की तरह गर्जकर कहा—“क्या है ? क्यों मेरे पीछे बक-बक लगाई है ? जीते-जीते तेरे बाल सफेद हो गये हैं, मरने का नाम नहीं लेती। मेरी जिन्दगी तुम लोगों को ऐसी भारी पड़ गई है, कि दिन-रात मुझे कोसते रहते हो। मरो तुम, सब मर जाओ, मेरी जूती मरेगी।” इतना कहकर वह क्रोध से थर-थर काँपने लगी।

जो कभी न हुआ था, उसे देखकर भगवती की माता अवाक रह गई। उसने क्रोध से अधोर होकर कहा—“तेरी यह जबान ! मेरे सामने ! ऐं ?”

अब भगवती ने अपनी पूरी ऊँचाई में तनकर खड़ी होकर कहा—“हाँ-हाँ, तेरे ही सामने ! तू है कौन ?”

“तू कभी मेरे कोख में नहीं आई थी ? कभी तेरे लिये मैंने कुछ किया नहीं था ? क्यों—तू अपनी माँ को अब नहीं पहचानती ? डायन !”

“तू मेरी माँ है ? तभी न दिन-रात मुझे कोसा करती है । मैं हाड़-माँस की थोड़े ही हूँ, इँट-पत्थर की हूँ । तुम लोग खुशी से जीओ, गुलछरें उड़ाओ, और मैं मर जाऊँ ! क्यों ? डायन तू है, या मैं ?”

बूढ़ी ने क्षणिक विषम दृष्टि से पुत्री को ताकते हुए कहा—“हम तेरी-ही तरह सुनाम कमाते फिरते हैं न—यारों के पास ?”

“किसने रोक रक्खा है ? कमाओ न तुम, दस-दस यार बुलाओ ।”

अब गृहिणी क्रोध को न रोक सकी । उसने तिलमिलाकर एक अधजली लकड़ी उठा ली, और भगवती को मारने चली । भगवती ने लपककर लकड़ी छीनकर फेंक दी, और एक ऐसा धक्का दिया कि बुढ़िया धरती पर गिर पड़ी । उसकी नाक से खून बहने लगा ।

गृहिणी धीरे-धीरे कराहती हुई उठ बैठी । क्रोध, अपमान और दुःख से उसे आत्म-विस्मृति हो गई थी । उसने भगवती को देखा, कि वह सिंहनी की तरह उसे घूर रही है । उसे इस तरह अपनी ओर घूरते देखकर उसने कहा—“छिनाल ! चल दूर हो यहाँ से ।”

“क्यों ? मैं यहीं तेरी छाती पर मूँग दलूँगी ।”

“जो अब कभी उधर जाती देखी, तो जीभ खींच लूँगी ।”

“जाऊँगी—जरूर जाऊँगी । तुमसे बने, तो रोक लेना ।”

गृहिणी ने दाँत कटकटाकर कहा—“मुझे खबर नहीं थी, कि तेरी जवान सौ गज की होगई है। ठहर, तेरे बाप को भेजती हूँ, साँपिन ! तेरा सारा जहर तब उतरेगा।”

“भेज दे, अभी भेज दे। बाप और माई, सब मेरी जान के दुश्मन हैं, कसाई हैं। जो मेरे सामने आवेगा, खून पी जाऊँगी, पगड़ी उतार लूँगी। जिसको हिम्मत हो, आवे, मेरे सामने आवे।”

वृद्धा किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर भगवती की ओर देखती रह गई। उसकी आँखें पथरा गईं। भगवती ने कड़क कर कहा—

“इस तरह मरे-बैल जैसे दीदे निकाले क्या ताक रही है, क्या मुझे खाजायगी ? मैं वदनाम हुई। नाम, मान, इज्जत, सुख, सब चला गया। गाँव में मुँह दिखाने को जगह नहीं रही है। अब कसर क्या रही है, जो मैं कुछ सोचूँ-समझूँ। पर याद रखो, मेरा तो नाश हुआ हो है, अब तुम्हारा सबका नाश करूँगी। मैं तो डूबती ही हूँ, पर तुम सबको ले डूबूँगी ! अपने पेटकी बेटीको तुम लोगों ने जिस तरह कुत्तों की तरह दुरदुराया है, उस तरह मैं भी सबका खून पीऊँगी ! पीऊँगी !! मैं अब वह भगवती नहीं हूँ। मुझे राक्षसी समझना—भला !”

इतना कहते-कहते उसके बाल बिखर गये। मुँह में भाग आ गया। आँखें निकलने लगीं। बावली की तरह भगवती वहाँ से हट गई।

४५

वृद्धा गृहिणी उस क्रोध, अपमान, घृणा और दुःख के वेग को न सहकर वहीं बैठ गई। ऐसा मालूम होता था कि मानों अभी उसके प्राण निकल जायेंगे। न तो उसकी आँखों में आँसू

ही थे, और न वह रो-ही रही थी। उसका दम फूल रह था, आँखें पथरा रही थीं, और चेहरे पर मुर्दनी छा रही थी। उसे ऐसा मालूम होता था, मानों सारा घर घूम रहा है। वह एक दीवार के सहारे बैठे-बैठे बेहोश हो गई। थोड़ी देर में हरनारायण उधर से निकला। उसने देखा, माता दीवार के सहारे धरती पर पड़ी है। लपककर पास जाकर देखता है—तो वह मूर्च्छित है, शरीर ठण्डा हो गया है, और साँस भी बन्द हो रही है। वह घबरा गया। पहले तो उसने दौड़कर एक खाट खींचकर उसपर माता को लिटाया फिर अपनी स्त्री को बुला और वहाँ बैठाकर, पिता के पास दौड़ा। हरनारायण को घबराए हुए आते देख, जयनारायण ने खड़े होकर पूछा—“क्या है”

“जल्दी चलिये—देखिये माँ को क्या हुआ ?”

जयनारायण जल्दी-जल्दी भीतर आए। इस बीच में वृद्धा होश में आ गई थी, पर वह पागल की तरह चारों ओर देख रही थी। उसके चेहरे की मुर्दनी भी वैसी-ही बनी थी।

जयनारायण ने कण्ठ-भरे कम्पित स्वर में धीरज देते हुए पूछा—“हुआ क्या ? तबियत तो ठीक है ?”

गृहिणी का बोल न निकला—उसकी जीभ तालू से सट गई थी। उसने पानी माँगा। नारायणी और उसकी भाभी भी वहीं खड़ी थी। नारायणी दौड़ कर पानी ले आई, और माता के मुख में डाल दिया।

जयनारायण विषण्ण भाव से स्त्री का वह भयंकर मुख देख रहे थे। गृहिणी ने बेचैनी से उनकी ओर देख-देखते टूटे-फूटे शब्दों में कहा—“मैं मरी नहीं हूँ। मौत भाग गई—भाग गई !! अब तुझे कहीं से थोड़ा जहर-लादो।” इतना कहकर

गृहिणी इस प्रकार छटपटाने लगी, मानों हजारों बिच्छुओं ने एक-साथ उसे डंक मारा हो ।

नारायणी रोकर माता से लिपट गई । उसका शरीर अभी बहुत दुर्बल था । उससे माता को धीरज तो बँधाया नहीं गया, स्वयं भी रोने लगी । जयनारायण ने कठिनता से अपने उमड़ते हुए हृदय को रोककर कहा—“इतनी बड़ी होकर यह बालकों की तरह क्या बक रही हो ? आखिर बात क्या है—यह भी तो मालूम हो ।”

बुद्धा ने एक हाथ से नारायणी को दूर हटाते हुए पति की ओर बेसब्री से देखते हुए कहा—

“अब मैं बचूँगी नहीं । यह देखो, मेरा प्राण निकला जा रहा है !” इतना कहते-कहते वह फिर बेचैनी से चारपाई पर अपना सिर पटकने लगी । हरनारायण किंकर्तव्य-मिमूढ़ की तरह खड़ा था । अब उसने लपककर माता का सिर गोद में रख लिया, और चारपाई पर बैठ गया ।

गृहिणी पड़ी-पड़ी कहरती रही । कुछ ठहर कर हरनारायण ने माता से नम्रता से पूछा—“माँ ! हुआ क्या है ? कुछ बात तो कहो । कुछ तकलीफ है क्या ? वैद्यजी को बुलाऊँ ?”

गृहिणी ने अब की बार मुँह उठाकर पुत्र के विषय और करुणापूर्ण मुख को देखा । अब की बार उसे कुछ ज्ञान हो आया । उसने कलपते-कलपते कहा—

“अरे बेटा, वह मेरी लाड़ली ! मेरी कोख की बेटी……” इससे आगे न बोला गया । वह उसी तरह सिर धुनने लगी, उसकी हँफनी बढ़ गई । उस समय भगवती को छोड़कर वहाँ सब उपस्थित थे । बुद्धा के मुख से ये शब्द निकलते ही सब डर गए ।

कहीं स अभागिनी ने कुछ खा-पी तो नहीं लिया । जयनारायण ने हड़बड़ाकर कहा—

“भगवती ! उसे क्या हुआ ? उसने कुछ किया है क्या ?” इतना कहते-कहते जयनारायण भगवती की कोठरी की ओर दौड़े । भगवती को वहाँ न देखकर सब घबरा गए । नारायणी भी पिता के पीछे-पीछे रोती और ‘जीजी-जीजी’ चिल्लाती हुई दौड़ी ।

भगवती द्वार बन्द किए—बैठी थी । जयनारायण ने उसे पुकारा । भगवती क्रोध से भभकी हुई थी । उसने समझा, माता ने इन्हें सब बात कहकर भेजा है । वह चुपचाप बैठी रही । जय नारायण अब एकदम घबराकर बोले—“भगवती ! अरी भगवती ! तू क्या कर रही है ?” भगवती तब भी चुप रही ।

जयनारायण के हृदय में और ही शंका समा रही थी । वे किवाड़ तोड़ने की फिक्क में लगे । नारायणी खड़ी रोती रही ?

भगवती ने देखा—अब खैर नहीं है । उसने आकर किवाड़ खोल दिये, और तनकर पिता के सामने खड़ी हो गई । जय-नारायण ने उसे भला-बुरा देखकर अघाकर साँस ली । पर अभी उनकी घबराहट न गई थी । इसी से भगवती का रङ्ग-ढङ्ग उन्होंने न देखा, उसी भाव में कहा—

“भगवती, तू किवाड़ बन्द किये क्या कर रही थी ? देख तो, तेरी माँ को क्या हुआ है ?” नारायणी दौड़कर बहन से लिपट गई ।

भगवती पिता का भाव न समझी । उसने नारायणी को एक ओर बैठाते हुए कहा—“माँ को क्या हुआ है ? निश्चय जानिबे, वह मरनेवाली नहीं हैं !”

जयनारायण पुत्री के मुख से ऐसी कठोर बात सुनकर दंग रह गये। उन्होंने अब जो ध्यान से उसका मुख देखा, तो उस पर सदा का दीन और विनय-भाव नहीं था। उसकी आँखों में भयानक क्रोध की ज्वाला जल रही थी, और होठ घृणा से सिकुड़ रहे थे।

उन्होंने तनिक रुष्ट होकर कहा—“तुझे उसकी जिन्दगी बड़ी खटकती है। उसने तुझे जन्म तो नहीं दिया था न?”

“इसीलिए उसे मेरी जान लेने का, और कोसने का अधिकार है?”

भगवती ने जैसी अविनय और घृणा से ये बातें कहीं, उससे अत्यन्त रुष्ट होकर जयनारायण बोले—“तुझे हो क्या गया है, बेवकूफ, तू क्या ऊटपटाँग बक रही है?”

पिता के क्रोध से तनिक भी विचलित न होकर भगवती ने उसी भाव में कहा—“मैं बिल्कुल ठीक ही कहती हूँ। माँ और बाप, सभी मेरी जान के दुश्मन हैं। मैं देखती हूँ, कि सभी नित्य मेरी मृत्यु-कामना करते हैं, तुझे फूटी आँख भी नहीं देख सकते। मैंने भला किया तो, और बुरा किया तो—मेरा भाग्य मेरे साथ है। मेरे बदले कोई और तो नर्क में जायगा नहीं,—फिर क्यों लोग कच्चा खा जाने को राक्षस की तरह बैठे हैं?”

इतना कहकर भगवती ने और भी ज्वालामय नेत्रों से पिता की तरफ देखा।

अब की बार जयनारायण के क्रोध में दुःख की छाया दीख पड़ी। उन्होंने उसी भाव में कहा—“अभागिनी, सन्तान अपने माता-पिता के हृदयों को नहीं समझ सकती।” इतना कहते-कहते उनकी आँखों से दो बूँद पानी टपक पड़ा।

भगवती पर उसका कुछ प्रभाव नहीं हुआ। वह उसी स्वर में बोली—“पर मैं तो खूब जान गई हूँ ?”

“क्या जान गई है ?”

“कि तुम मुझे मारना चाहते हो।”

“और ?”

“और मेरा सर्वनाश !” इतना कहते-कहते जोश में भगवती का मुँह लाल हो गया।

जयनारायण पुत्री के साहस और अविनीत आचरण से चकित होकर बोले—“भगवती ! तुम्हें अपने बाप के सामने यह बातें कहते लज्जा नहीं आती ?”

“लज्जा ! लज्जा अब है ही कहाँ ?—और मेरे माँ-बाप ही कहाँ हैं ? मेरे माँ-बाप होते, तो क्या मेरी यह गति बनती ? मैं कुत्तों, जानवरों, भिखमँगों से भी अधिक दुःख; अपमान और अवहेलना में स्नान कर-करके वर्षों से टुकड़े खा रही हूँ, खून पी-पीकर जी रही हूँ, बदनामी की स्याही से मुँह काला हो रहा है, लोग मेरा नाम लेने में घृणा करते हैं, सुहागन मुँह नहीं देखती,—अपने बच्चों पर परछाँई तक नहीं पड़ने देती, भले घर की बेटियों को मेरी हवा भी लग जाती है; तो उन्हें पाप लगता है। माँ-बाप के सामने सन्तान की ऐसी दुर्दशा हो सकती है क्या ? मेरे माँ-बाप कहाँ हैं ? मैं तो राक्षसों के बीच पड़ गई हूँ।” इतना कहते-कहते भगवती उन्मादिनी की तरह अपने कपड़े नोच-नोचकर फेंकने लगी। उसके मुँह में फिर भाग भर आये, और आँखें आग उगलने लगीं।

जयनारायण दोनों हाथों से आँखें बन्द कर फूट-फूट कर रोने लगे। फिर बोले—“सच है बेटा ! तुम राक्षसों के ही

बीच में हो, हम तुम्हारे माँ-बाप नहीं हैं।” कहकर जयनारायण चल दिये।

नारायणी भगवती से लिपटकर रोने लगी। भगवती भी बहन से लिपटकर रो उठी।

४६

अठारह घण्टे तक भूखी-प्यासी मालती उस कोठरी में बन्द पड़ी रही। इस बीच में वह एक बार अच्छी तरह सो भी न सकी थी। उसने इस असीम विपत्ति से अपना-उद्धार करने के लिये पूरी मुस्तैदी से तैयारी कर ली थी ! उसकी आत्मा की दुर्बलता भाग गई थी, और उसमें सिंह की भाँति आक्रमण का उदय हो गया था।

जब प्रथम बार अधिष्ठाताजी दर्वाजा खोलकर उसके कमरे में घुसे, तब वह अचानक ही सिंहनी की भाँति उछलकर उनके ऊपर दूट पड़ी। अधिष्ठाताजी ने इसकी कल्पना भी न की थी। वे भरभराकर गिर पड़े। मालती ने इसपर तानिक भी ध्यान न कर, उन्हें लातों और घूँसों से कुचलना शुरू कर दिया। अधिष्ठाताजी ‘हाय-हाय’ करने लगे। आश्रम में हलचल मच गई। देवीजी नीचे भागकर चिल्लाने लगीं। मालती ने अवसर पाकर भीतर का कुण्डा बन्द कर दिया, और बिस्तर पर बिछी चादर से अधिष्ठाताजी को बुरी तरह लपेटकर बाँध दिया। वे इतने विवश हो गए, कि न तो उठ सकते थे, न बचाव कर सकते थे। मालती लातों से उनका भुस कर रही थी। कोठरी के बाहर आश्रम के

सब स्त्री-पुरुष जमा थे। वे मिवाड़ तोड़ने की चेष्टा कर रहे थे। मालती ने ललकारकर कहा—“दुष्ट, कुत्ते ! तुम्हें मैं अभी जान से मारे बिना न छोड़ूँगी। तू इस भाँति भले घर की बहू-बेटियों को बहकाकर इस अट्टे में लाकर बेचने का धन्धा करता है। अभगिनी अबलाओं की असहाय्यवस्था ने अनुचित लाभ उठाता है। तू गाय की सूरत में सिंह है !”

अधिष्ठाताजी गिड़गिड़ा रहे थे, और मिन्नतें कर रहे थे। बाहर से दर्वाजा तोड़ने की चेष्टा हो रही थी। मालती ने चार-पाई-उलटकर धरती में पड़े अधिष्ठाता पर डाल दिया, उसपर मेज उलट दी, फिर उसने पीछे की खिड़की खोलकर चिल्लाना शुरू किया। उसकी चिल्लाहट सुनकर पास-पड़ोस के मनुष्य घरों में से भाँकने लगे। गली में भी लोग इकट्ठे हो गये। पुलिस भी आ गई। पुलिस-इन्स्पेक्टर के आने पर मालती ने दर्वाजा खोल दिया। उसके वस्त्र चिथड़े-चिथड़े हो रहे थे, और वह पसीने से तर-बतर हो रही थी। उसकी आँखों से अब भी आग निकल रही थी, और वह अपनी पूरी ऊँचाई में तनी खड़ी थी।

पुलिस-इन्स्पेक्टर के कहने से वह एक कुर्सी पर बैठ गई। इन्स्पेक्टर ने कहा—“अब थोड़ा पानी पीजिए, और ठण्डी होकर बयान दीजिए।”

मालती ने कहा—“इस पापपुरी में मैं जल नहीं पीने की; आप बयान लिखिए।”

इसके बाद मालती ने संक्षेप में अपनी दुर्दशा का हाल बयान कर दिया। वह किस भाँति फुसलाई गई, यह भी कह दिया। और किस तरह अठारह घण्टे तक जबर्दस्ती वन्द की गई, वह भी बता दिया।

बयान लेने पर इन्स्पेक्टर ने अधिष्ठाताजी को चारपाई के

नीचे से निकालवाया । लातों के मारे उनका भुस हो गया था, और उनके होश-हवास गुम हो गये थे । इन्स्पेक्टर ने उनका भी वयान लिया । आश्रम की तलाशी भी ली । दो स्त्रियाँ ऊपर की मंजिल में और कैद की हुई मिलीं । कुछ जेवर भी बरामद हुए । इन्स्पेक्टर साहब सब सामान ले, अधिष्ठाता और देवोजी की बारात सजा, मालती और अन्य सभी स्त्रियाँ को साथ ले, थाने की ओर रवाना हुए ।

— — —

४७

हमें विश्वास नहीं होता, कि हमारे पाठकों में एक भी व्यक्ति ऐसा हृदय-हीन होगा, जो परम सन्तप्र जयनारायण के प्रति अपनी सहानुभूति न रखता हो । पर हम यह निवेदन करने को विवश हैं, कि अभी उस अभाग की दुरावस्था का अन्त नहीं हुआ है । आज एक ऐसा समाचार उसे मिला है, जो अत्यन्त कष्टकर है । चार दिन से बिरादरी की पञ्चायत हो रही थी । जय नारायण को जाति-च्युत किया जाय या नहीं, यही विषय उपस्थित था । अनेक वादविवाद के पश्चात् यही निश्चय हुआ, कि या तो जयनारायण लड़की को घर से निकाल दे और गङ्गा-स्नान करके पाँचसौ ब्राह्मणों को भोजन दे, अथावा जाति-वहिष्कृत समझा जावे । शिवराम पाँड़े और हरभजन चौधरी यही समाचार लेकर उनके पास आये हैं । जयनारायण पहले तो चुपचाप सिर लटकाये बैठे रहे, फिर एकाएक कुछ गर्म होकर बोले—

“आप लोग पञ्चों से कह दें, कि मुझे जाति-बिरादरी से कोई वास्ता नहीं है, अपनी सन्तान को कौन घर से निकाल देता है ?”

चौधरी ने समझाते हुए कहा—“ये बेसमझी की बातें मत करो। तुम बाल-बच्चेदार आदमी हो, बिरादरी बिना कैसे रह सकते हो ?”

जयनारायण ने भुँभुलाकर कहा—“जब बिरादरी मेरे बाल बच्चों का गला घोटने को तैयार है, तो ऐसी बिरादरी पर मैं थूकता हूँ !”

शिवराम पाँड़े बोले—“इन छोटे बच्चों का क्या करोगे ? एक के लिये सबको क्यों आफत में डालते हो ? और फिर बिरादरी नागहानी का दण्ड दे रही हो, यह बात भी नहीं है। लड़की ने काम कुछ कम बुरा किया है ?”

जयनारायण ने लाल-लाल आँखों से उनकी ओर ताककर कहा—“मेरी लड़की ने जैसा किया, उसका फल भोग लिया है। जिसका पर्दा बना रहे, वही अच्छा। अभी मैं खोज करने निकलूँ तो जानें किस-किस की बहन-भतीजी ऐसी निकलें, जिनके सामने मेरी लड़की हजार दर्जे अच्छी है।”

शिवराम पाँड़े एकदम सर्द पड़ गये। उनकी धोलती धन्त हो गई। पर चौधरी ने बिरादरी के अपमान का प्रभाव बत कर कहा—“खूब अच्छी तरह सोच लो। समय पर जो काम हो जाता है, पीछे किसी तरह नहीं होता।”

अब तो बाल-बच्चों की दुर्दशा का खयाल करके जयनारायण रोने लगे। अन्त में उन्हें पराजित होना पड़ा। भगवती को घर से बाहर कर देने का निश्चय रहा। अब सलाह यह होने लग कि उसे भेजें कहाँ ?

जयनारायण ने कहा—“अच्छी बात है, मैं उसका पुनर्विवाह किये देता हूँ।”

चौधरी साहब बोले—“पुनर्विवाह कैसे करेंगे ? यह भी तो अधर्म है ।”

“जो अधर्म साबित करें, उन्हें बुलाइये मैं साबित करूँगा । पण्डितों की व्यवस्था भी ली है ।”

चौधरीजी बोले—“वह व्यर्थ है । जो चाल विरादरी में नहीं है, उसे करना ठीक नहीं है । बाकी आपकी समझ है । नीति की यह शिक्षा है, कि मनुष्य को सोच-समझकर काम करना चाहिये, नहीं तो पीछे पछताना पड़ता है । आगे आपकी समझ है ।” इतना कह, चौधरीजी चलने को लकड़ी उठाने लगे ।

जयनारायण ने उन्हें रोककर कहा—“जरा ठहरिये ।” इतना कह, वे सोचने लगे । अन्त में यही निश्चय हुआ, कि भगवती को कहीं तीर्थ-स्थान में रहने के लिये भेज दिया जाय ।

इसके अनन्तर जयनारायण ने सबको बिदा कर दिया; क्यों-कि अब वे अपने कष्ट को बर्दाश्त नहीं कर सकते थे ।

४८

सन्ध्या के छः बजकर पैंतीस मिनट पर गाड़ी बनारस स्टेशन पर पहुँची है । गाड़ी के खड़ी होते ही चढ़ने-उतरनेवाले यात्रियों में धूम-धड़का मच गया है । हम अपने पाठकों का ध्यान दो यात्रियों की ओर आकर्षित करते हैं । इनमें एक स्त्री है, दूसरा पुरुष । दोनों उदास हैं । एक-दूसरे से कोई बात नहीं करता है । पाठक इन्हें पहचानते हैं, ये दोनों हरनारायण और भगवती हैं । दोनों सगे भाई-बहिन हैं । दोनों ने चिरकाल तक एक माता का दूध पिया है—एक-साथ खेले हैं । ये दोनों यद्यपि

इस समय अपने बापने की मधुर स्मृति को भूल गये हैं पर उनकी माता को उस जमाने की सब बातें याद हैं। वे कहा करती थीं, हरनारायण ने कभी मेरी भग्गो को नहीं मारा। भग्गो गुड़िया खेलती, तो हरनारायण उसे नई-नई गुड़िया बना दिया करता था। घर में कोई खाने-पीने की वस्तु आती, तो भगवती उसमें से “माँ, भैया के लिये रख दे,” कहकर आधी अवश्य हरनारायण के लिये रख देती। कहाँ तक कहें—जो भाई-बहन हैं, जिनके बीस वर्ष सुख-दुःखमें एक साथ बीत चुके हैं, उनकी कोई क्या बात कहे? पर आज वह बात नहीं है। आज दोनों, एक दूसरे से मुँह छिपा रहे हैं। अब भगवती को ‘भैया’ कहकर भाई के मुख की ओर देखने का साहस नहीं है। कारण, उसकी आँखों में अब दूध की-सी स्वच्छता नहीं रही। हरनारायण ‘भग्गो’ कहता हुआ जब कभी बहन की ओर देखता है, तब उसकी आँखों से हँसी का नूर नहीं टपकता है; उनमें से भयानक हला-हल विष, तीव्र अपमान, असह्य वेदना की वर्षा होती है। इसका कारण पाठक समझते हैं। भगवती—गरीब अनाथा भगवती—दीन-दुनियाँ, इहलोक-परलोक सबसे पतित हो गई है। इस स्वार्थ-भरी दुनिया में गरीब-निवाज कौन है? अनाथों का नाथ कौन है? दीनदयाल कौन है? पतितपावन कौन है? मनुष्य मनुष्य नहीं रहा। मनुष्यों में से ये गुण कब के उठ चुके हैं। एक है भगवान—सो अभागिनी को उसी का आसरा है। चाहे कोई भाई हो, या माँ—बन्धु हो, या बाप—उसे कहीं कुछ न मिलेगा। भगवती ने आशा-भरोसा सब त्याग दिया है।

पाठक, ऐसी ही दशामें अबला भगवती है। जाति, देश और समाज यदि सब मिलकर चाहते, तो सम्भव था, वह सुखी हो सकती थी। पर हिन्दू-समाज पत्थर से भी कठोर, अधिक से भी

निर्दय, और पशु से भी अधिक गया-गुजरा है। ये हत्यारे पुरुष प्रथम उन कोमल आत्माओं के हृदय को मसोस डालते हैं, और फिर उन्हें सड़ने को मोरी और नाबदानों में फेंक देते हैं। उनका कहना है, कि इस रोग की कोई दवा नहीं है—इस जख्म का कोई मरहम नहीं है—इस व्याधि का कोई प्रतिकार नहीं है। धर्म-शास्त्र की आवाज की यहाँ अवहेलना होती है, न्याय का गला घोटा जाता है। और अन्त की बात दया ?—ये पत्थरों से दया की भीख माँगनेवाले मनुष्य-पशु अपनी बहन-बेटियों पर दया भी नहीं करते ! ऐसा है हिन्दू-धर्म का तत्त्व-दर्शन !

अस्तु, भगवती काशी आई है। क्यों आई है ? पाठक जानते हैं ? पुण्य-सलिला गंगा में स्नान करने, अथवा बाबा विश्वनाथ का दर्शन करने—वा धर्म-कृत्य का पुण्य लूटने नहीं, जाति ने पतित करके नारी को त्याग दिया है, पिता-माता ने पुत्रों को त्याग दिया है, भाई बहिन को त्यागने आया है ! रोओ, सहृदय पाठक, रोओ ?—न रो सको, तो अच्छा है, तुम्हारे हृदय की प्रशंसा होगी। तुम्हारे कोई विधवा बहन-बेटी है ? यदि है, तो रोओ ! तुम्हारे रोने से सम्भव है, अबला के हृदय को ज्वाला का कुछ शमन हो जाय।

तरण-तारणी काशी की सान्ध्य शोभा का कहाँ तक वर्णन किया जाय ? समस्त मन्दिर-देवालय विविध दीप-मालाओं से आलोकित हो रहे हैं, और उनके प्रतिविम्ब की माला को हृदय पर धारण करके भगवती गंगा अपनी तरंगों में मस्त चली जा रही है, मन्दिरों के उच्च स्वर्ण-कलश अट्टालिकाओं के धवल शिखर, और वृक्षों की घनश्याम छटा—ये सब काँपते-काँपते प्रतिविम्ब-स्वरूप मानों गंगा की स्वच्छता में अपना मुख देख रहे हैं। मन्दिर में आरती के वाद्यों की ध्वनि पूरित है, भागीरथी के

तीर पर भक्त-जन स्तवन कर रहे हैं। इसी समय काशी की सड़कों पर एक गाड़ी में अभागिनी भगवती अपने अवशिष्ट जीवन को इस पुण्य-भूमि में शान्तिपूर्वक व्यतीत करने जा रही है।

धीरे-धारे यह यह गाड़ी वेश्याओं के मुहल्लों की तरफ मुड़ी और आगे चलकर एक मकान के आगे ठहर गई। कोचवान ने पुकारकर कहा—“बाबू ! आपने जिस मकान का पता दिया था, वही यह मकान है।”

हरनारायण गाड़ी से नीचे उतर आये। उन्होंने अकचकाकर देखा—यह मकान भी वेश्या का है। उन्होंने गाड़ीवान से पूछा—“दाल की मण्डी यही है न ?”

“जी हाँ, और आपका बताया मकान भी यही है।”

हरनारायण कुछ पेशो-पेश में पड़ गये, पर उन्हें अधिक देर इस अवस्था में न रहना पड़ा। मकान के भीतर से एक आदमी ने आकर पूछा—“आप किसे तलाश कर रहे हैं ?”

हरनारायण ने झिझकते हुए आगे बढ़कर कहा—“इस मकान में जो रहती हैं, उनका क्या नाम है ?—और वे कहाँ की रहनेवाली हैं ?”

वह आदमी उत्तर नहीं देने पाया था, कि इतने में छमछम करती हुई वेश्या सामने आ खड़ी हुई। उसका विचार आगन्तुक से कुछ प्रश्न करने का था, और आगन्तुक भी उसे देख, उसकी तरफ आकृष्ट हुआ। पर जब दोनों ने दोनों को पहचाना, तो क्षणिक के लिये दोनों किं-कर्तव्य-वमूढ़ हो गए। वेश्या ने देखा—आगन्तुक कोई नहीं, उसके गाँव के पटवारी का लड़का हरनारायण है, और आगन्तुक ने देखा—वेश्या का निकृष्ट, निर्लेज्ज और कलुशित बाना पहने हुए उनके गाँव के चौधरी की इकलौती विधवा पुत्री है, जिसके सम्बन्ध में आज पाँच वर्ष से प्रसिद्ध है,

कि वह काशी-वास करके अपना परलोक सुधार रही है। उनके हृदय में विद्युत् की तरह यह भाव दौड़ गया, कि इसी प्रकार का काशी-वास कराने में बहन को लेकर आया हूँ ? उनका सारा कर्तव्य-ज्ञान खो गया। वे टकटकी लगाये, वेश्या के मुख की ओर देखते रह गये।

पहले वेश्या ने मुख खोला। उसने कहा—“भीतर चले आओ, यहाँ खड़े रहना ठीक नहीं है।”

मन्त्र-मुग्ध की तरह हरनारायण भीतर चले आये। उनके पीछे भगवती भी।

भीतर सबके बैठ जाने पर हरनारायण ने कहा—“चमेली, तेरी यह हालत ?”

चमेली ने कुछ लरजती हुई जवान से कहा—“मेरी यह हालत किसने बनाई है ?”

“किसने बनाई है ?”

“तुमने और तुम्हारी जाति ने !”

कुछ ठहरकर हरनारायण ने कहा—“तुमने अपनी जाति भी छोड़ दी है ?”

“उस बेरहम, नाचीज, कमीनी जाति को छोड़े बिना कोई कैसे जिन्दा रह सकता है ?”

हरनारायण ने देखा—पद-पद पर चमेली की उत्तेजना बढ़ती जा रही है, और स्त्री-सुलभ लज्जा, नम्रता और शीलता का मानों उसमें लेश भी नहीं है।

हरनारायण ने ठण्डी साँस लेकर दुःखभरे शब्दों में कहा—
“तुम्हारे सम्बन्ध में सारे गाँव में यही विश्वास है, कि तुम धर्म-पूर्वक काशी-वास कर रही हो, और हर महीने तुम्हारे पिता

तुम्हारे लिये खर्च भी भेजते हैं। पर यह तो मुझे विश्वास भी नहीं था, कि तुम इस प्रकार पापों का टोकरा बटोर रही हो, और यों इस धर्मक्षेत्र में दोनों लोक नष्ट कर रही हो ! अभागिनी, तुमने अपने कुल-शील का कुछ भी ध्यान न किया ?”

हरनारायण की इस बात से मानों उसके स्त्री हृदय पर प्रभाव पड़ा। हरनारायण ने देखा कि भ्रष्टा वेश्या के आँखों में आँसू भर आये। उसने कहना शुरू किया—“मुझे साढ़े चार वर्ष यहाँ आये हो गये हैं। मैं न जन्म से ऐसी थी, न होने की आशा थी। तुम्हें तो मालूम ही है, मेरे बेईमान बाप ने उस मृगी के मरीज से ५५०० रुपये लेकर मेरा ब्याह कर दिया, और ब्याह के बाद ही छः महीने में मैं विधवा हो गई। उसके बाद घर में और ससुराल में जिस दुःख से तीन वर्ष काटे, उसे मैं ही जानती हूँ। अन्त में उन पाजी कमीनों से यह भी न देखा गया, और जैसी-तैसी तुहमत लगाकर मुझे बदनाम कर दिया। बिरादरीवालों की बात में आकर बापने मुझे यहाँ फेंक दिया, और ५ रुपये महीना भेजना शुरू किया। उन्होंने समझा था, यही उनका मेरे प्रति यथेष्ट कर्तव्य है। पर तुम्हीं कहो, इतने बड़े नगर में, इतने थोड़े खर्च में, बिना सहायक के अकेली रह सकती थी ? तुम क्या समझते हो कि धर्म गली-गली भटकता फिर रहा है, जो हर किसी के गले मँढ़ता जायगा ? इन पापों, अधर्मों, काफिरों को अपनी बेटी को इस तरह मिट्टी में मिलाते कुछ भी शरम न आई ? उनका कलेजा तनिक भी न दहला ? जब मेरा बाप मुझे यहाँ छोड़ने आया, तब मेरा विलाप सुनकर उसका कलेजा पिघला ? मैंने उस नामुराद के नापाक पैरों में गिरकर कहा—“मुझे यहाँ अकेले इतने बड़े शहर में क्यों छोड़े जाते हैं ?” तब जानते हो, उसने क्या जवाब दिया ? उसने कहा था—“जब तैने धर्म नष्ट

किया, तब इन बातों को नहीं सोचा था।” उस दोजखी कुत्ते ने अपनी मासूम बेटी को मुर्दे के हाथ वेंच डाला—उसका कोई धर्म नहीं बिगड़ा। उन पापी पञ्चों ने मुझ वेगुनाह को खसम कमाने यहाँ भिजवा दिया, उनका धर्म नहीं बिगड़ा। इस नाचीज ‘घिनौने’ मुर्दे पर तुफ है—लानत है! मैं उसपर थूकती हूँ। अब जाकर उन धर्म-धुरियों से कह देना, तुम्हारी बेटी मुसलमान हो गई है, और पेशा कमाती है।”

बात कहते-कहते चमेली अत्यन्त उत्तेजित हो गई थी। हर-नारायण उसके इस अनुचित गर्म भाषण को न सुन सके। उन्होंने कहा—“चमेली, समझ गया। तुम्हें बड़ा दुख दिया गया है, और तुमपर जुल्म भी हुआ है, पर तुम्हें इतनी जवान-दराजी नहीं करनी चाहिए। तुम्हें जहाँ अपने पाप पर लज्जित होना चाहिये था, वहाँ ऐसी गन्दी बातें बकती हो.....” चमेली ने बीच में ही बात काटकर कहा—“पाप? मैं कौन-सा पाप कर रही हूँ? और अगर यह पाप ही है, तो तुमपर और तुम्हारी जाति पर इसका कहर पड़ेगा। मैं जैसी नर्क की आग, छाती में रखकर पाप करती हूँ, उसे तुम पाखण्डी मर्द क्या समझ सकते हो? भगवान् तुम्हें कभी लड़की का जन्म दे, और मेरी-जैसी तुम्हारी दुर्गति हो तब तुम असलियत समझ सकोगे।” चमेली आगे कह ही रही थी, कि भगवती से न रहा गया। उसने कहा—“भाई! चलो, यहाँ से जल्दी चलो, नहीं मेरा प्राण निकल जायगा।”

चमेली ने उसकी तरफ ताने की नजर से देखकर कहा—“कहाँ चली वहन? तुम जिसलिये आई हो मैं समझ गई। वही करने की तैयारी करो। ये तुम्हारे धर्मात्मा भाई तुम्हें पूरी मदद देने आये ही हैं। कलेजा पत्थर का करो। उसमें

आग सुलगाओ, पर धुँआ अन्दर-ही-अन्दर घुटने दो। छल कपट से हँसना, और भूठी बात बनाना सीखो। दगा फरेब-बेईमानी-सख्ती—इन सब से काम लो। आओ, और मेरे घर में चैन करो। कुछ तुम्हारा और मेरा ही यह नया मार्ग नहीं है, इस मोहल्ले में कई मुझ-सी, तुम-सी हैं। कहोगी, तो उनसे मुलाकात करा दूँगी। कभी उनकी सुनकर रोना, कभी अपनी सुनाकर रुलाना। पर वक्त-बे-वक्त हँसने को सदा तैयार रहना।” हर नारायण का दम मानो घुटने लगा था। उसके मुँह से एक शब्द न निकला। वे उठ खड़े हुए, और बोले—“भगवती ! चल, जल्दो चल !” चमेली के हृदय में न-जाने क्या-क्या भाव उत्पन्न हो रहे थे। जो स्त्री अब तक ऐसी तेजी से बोल रही थी, अब वह एक-दम रो पड़ी। वह कुछ कहना चाहती थी, पर कह न सकी। दोनों आगन्तुक जल्दी से बाहर निकल आये।

४६

और कुछ उपाय न देख, दोनों ने उस रात धर्मशाला में डेरा किया। प्रभात होते-ही हरनारायण ने कहा—“भगवता, चल गंगा-स्नान कर आवें।”

भगवती चुपचाप बैठी रही। हरनारायण ने पुनः वही प्रस्ताव किया। भगवती ने धीरे-से कहा—“तुम गंगा में नहाकर पवित्र हो आओ। मुझे गंगा-स्नान नहीं करना है—मुझे तुम्हारी गंगावंगा नहीं चाहिए।”

हरनारायण चुपचाप मुँह लटकाकर बैठ गया। तब कुछ ठहरकर उसने कहा—“तो तेरा क्या विचार है ?”

“कुछ नहीं।”

“तू यहाँ रहना चाहती है, या नहीं ?”

“तुम क्या मुझसे पूछकर-ही यहाँ रखने लाए हो ?”

“खैर, अब क्या विचार है ?”

“मेरी जो इच्छा होगी, वह करूँगी, तुम मनमानी करो। मुझे अब भी भगवान् का आसरा है। आखिर इतने पापी हैं, इन्हें भी तो किसी का आसरा है-ही।”

हरनारायण विचार में पड़ गए। वे नेत्र मूँदकर अपनी स्थिति पर विचार करने लगे। धीरे-धीरे वे अपनी बहन की स्थिति और भविष्य को देखने लगे। वे ज्यों-ज्यों विचार मग्न होते गये, त्यों-त्यों उनका गम्भीर चेहरा विषाद-मग्न होता गया। उन्हें एक-एक करके अपने बचपन के दिन याद आने लगे। उनके नेत्रों में एक के बाद एक, वे बाल्य-काल के दृश्य आ-आकर नाचने लगे। वह आम के बाग में बौरी तोड़ना, वह भाई-बहन की नैसर्गिक बाललीला, मानो प्रत्यक्ष दीखने लगी। वह बालू का घर, गुड़ियाँ का खेल, नाराजी, मचलना, माता का प्यार, छोटी-छोटी खाने की वस्तुओं का बाँटना, भगड़ना-आदि बीस-वर्ष के पुराने दिन प्रत्यक्ष दोखने लगे। उन्होंने नेत्र खोलकर देखा—वही उनका दुलारी बहन नीची गर्दन किए, अपने उस बे-ओर-छोर के अन्धकारमय भविष्य को विचार रही है—जो उसके निर्बल और असहाय तन-मन पर आ-पड़ा है। उनके मुख से एक दीर्घ निःश्वास निकल गया, और साथ ही आँसुओं की अविरल धारा वह निकली। अन्त में गद्गद् कण्ठ से उन्होंने कहा—“भगवती ! अब अधिक सोचा-विचारी की जरूरत नहीं है। चलो घर चलें, अभी चलो। जो हुआ, सो हुआ।”

भगवती ने उनकी ओर बिना देखे ही कहा—“किसके घर की बात कहते हो ? जिसका घर हो, वह जावे, मेरा घर कहाँ, मैं तो अब दूसरा घर ढूँढ़ूँगी। कहीं मिला, तो ठीक, वरना एकबार भगवान् के घर को टटोलूँगी, कि वहाँ जगह मिलती है, या नहीं।”

हरनारायण ने रोते-रोते कहा—“हमलोग गाँव में न जावेंगे। चलो, शहर में चलकर रहेंगे। मुझे जाति-विरादरी की परवाह नहीं है। तुमने बड़ा दुःख पाया है। बहन ! चलो तुम्हारी भाभी से कह दूँगा, कि वह तुम्हीं को मालिक बना दे। अब ज्यादा कुछ कहो-सुनो मत।”

भगवती ने भाई का गद्गद्-कण्ठ सुन एकबार उसकी ओर देखा। फिर वह भी रो उठी। बड़ी देर बाद उसने कहा—“मैं न जाऊँगी, तुम लौट जाओ।”

“तू न जायगी, तो मैं यहीं मर जाऊँगा, अब मुझमें अधिक दम नहीं है।” इतना कहकर वे मुँह ढाँपकर रोने लगे।

भगवती चुप बैठी रही।

हरनारायण ने कहा—“चुप क्यों है ? यहाँ अधिक ठहरना ठीक नहीं।”

भगवती ने कहा—“भाई, अब जब रास्ता साफ ही होगया है, तो लज्जा किस बातकी है ? अब मेरा वहाँ न जाना ही अच्छा है। इसी में तुम लोगों का कल्याण है। गृहस्थ आदमी बिना विरादरी के नहीं जी सकता। पागलपन मत करो। मेरा जो कुछ होना था, सो होगया। अपना रास्ता मैंने सोच लिया है—मैं यहाँ से न जाऊँगी।”

“तब तू यहाँ करेगी क्या ?”

भगवती ने फीकी हँसी हँसकर कहा—“विश्वास रखो अब पाप न करूँगी.....।”

उसकी बात काटकर हरनारायण ने कहा—“नहीं मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा।”

“पर मैं तुम्हारे घर नहीं रह सकती, उसमें मेरा-तुम्हारा दोनों का भला नहीं है। तुम जिस जिम्मेदारी पर यहाँ आये हो, उसे सोचो।”

कुछ विचारकर हरनारायण ने कहा—“अच्छा, एक बात है। क्या गोविन्द सहाय ब्याह करने को राजी है?”

भगवती ने दुखी होकर कहा—“इस बातको अब न छेड़ो। वह समय बीत गया। अब जो मैं चाहती हूँ वही होने दो। मेरा अन्त ही ठीक है।”

“अन्त ? क्या तुम आत्मघात करोगी ?”

“तो क्या और कुछ भी हो सकता है ? तुम घर जाओ, मैं अपना मार्ग निकाल लूँगी। पर भैया ! मेरे अपराध क्षमा करना और नरो को सुखी रखना।” इतना कह वह फूट-फूट कर रोने लगी।

हरनारायण ने उसका सिर गोद में लेकर कहा—“मरें तुम्हारे दुश्मन ! वहन, तू न जायगी, तो मैं भी नहीं जाऊँगा। तू मरेगी, तो मैं भी यहीं मरूँगा। मेरे बाद माता, पिता, नरो और तेरी भाभी का नम्बर है। सभी मरेंगे।”

भगवती ने धैर्य के स्वर में कहा—“नहीं। तुम सौ-सौ वर्ष जीओ। घर लौट जाओ। पर किसी से मेरी बात न कहना।”

“नहीं, तुम्हें बिना लिये न जाऊँगा।”

“पर मैं घर न जाऊँगी—किसी तरह न जाऊँगी। इसपर कुछ कहना व्यर्थ है।”

“तो ऐसा करो, तुम गोविन्दसहाय के घर चली जाओ।”

भगवती ने झुँझलाकर कहा—“जो बात एक बार हो चुकी उसे क्यों बार-बार कहते हो ?”

“तब निश्चय ही मुझे यहीं रहना है। भगवान् की मरजी।”

भगवती और हरनारायण में बड़ा विवाद चला, पर निश्चय कुछ नहीं हुआ। भगवती न भाई को विदा कर सकी, न स्वयं जाने को राजी हुई।

तीन दिन बीत गए। न गङ्गा-स्नान हुआ, न भोजन, न घात-चीत। दोनों चुपचाप पड़े हैं। अन्त में भगवती ने भाई का हाथ प्यार से पकड़कर कहा—“बैया ! फिर पूँ और सुखिया कैसे रहती होंगी ? तुम घर जाओ, मुझ दुखिया को मरने दो। मैं तुम्हारे पैर पड़ती हूँ।” इतना कहकर भगवती ने अत्यन्त करुण दृष्टि से भाई को देखा।

हरनारायण कुछ न बोलकर चुपचाप पड़े रहे। कुछ ठहर कर भगवती ने कहा—“अच्छा, एक शर्त पर चलती हूँ ! अपने घर तो किसी तरह न जाऊँगी, पर वहाँ चली जाती हूँ। अगर उन्होंने व्याह करना स्वीकार कर लिया, तो खैर, वरना फिर यहीं आकर मरूँगी।”

हरनारायण ने रोते-रोते कहा—“अच्छा यही सही।” दोनों तैयार होने लगे। भाई ने कहा—“बहन ! आओ, एक बार गङ्गा तो नहा लें !” भगवती ने कुछ विरोध न किया। दोनों स्नान कर स्टेशन चल दिये। देव-दर्शन और भोजन का किसी को स्मरण न रहा, और न इच्छा।

रेलगाड़ी जा रही थी। पल पल में भगवती का स्टेशन निकट आ रहा था। भगवती मन-ही मन सूरज छिपने की प्रार्थना कर रही थी। सूरज छिप रहा था, और अन्धकार फैल रहा था—ऐसे-ही समय में भगवती भाई के साथ गाड़ी से उतर पड़ी।

अब तक उसके मन में साहस था, विचार था, भय था, और चिन्ता थी। पर स्टेशन पर पैर रखते-ही उसका शरीर मनमनाने लगा। मिर घूमने लगा। यही उसका गाँव है। उसी गाँव में उसका घर—जन्म-स्थान—क्रीड़ाक्षेत्र है। अभी उस दिन वह गाँव से बलात् हटाई गई थी। तब प्रस्थान के समय गाड़ी से मुँह निकालकर, आँसू भरकर उसने एक बार अपने गाँव को, उसके बीच में चमकते हुए अपने घर की सफेद अटारी को देखा था—हसरत की और चाह की नजरों से। उसकी धारणा थी, कि अब क्या इस जन्म में ये भाई-बन्धु, वर-गाँव मिलेंगे ?—कभी न मिलेंगे। वह सारा मार्ग रोती गई थी, पर विधि की विडम्बना देखिये—घूम-फिरकर वह फिर उसी गाँव में आ गई; फिर उसी गाँव का छोटा-सा स्टेशन उसे प्राप्त हुआ। पर वह काँपती क्यों है ? इस परिचित स्थान में उसके पैर लड़खड़ाते क्यों हैं ? यहाँ तो वह कई बार गाड़ी से उतरी थी। एक बार जब ब्याह के बाद ससुराल से आई थी, तब भाई के साथ कितने उत्साह से उतरी थी। जल्दी घर जाकर प्यारी सखी बम्पा को देखने, उसे कुछ आप-बीती सुनाने को पेट फूल रहा था। फिर एक बार अपने पति के साथ गौने के बाद आई थी। उसके बाद ?—उसके बाद-ही से उसका कर्म फूट गया; उसका सौभाग्य डूब गया; सतीत्व लुट

गया, श्री नष्ट हो गई; मान-सम्मान, गौरव सब ठिकाने लग गये थे । कहाँ रही वह हँसिनी-सी चाल, वह कुलकुलाहट, वह उत्ताव-लापन, और चञ्चलता ? कहाँ रही वह वाचालता ? कहाँ रही वह घर जाने की उमङ्ग ? जहाँ से अत्यन्त अपमानित होकर निकाली गई थी,—जहाँ एक पल रहना भी कष्टकर था,—क्या यह वही घर है ? जहाँ जाने को उसे उतावली होगी ? एक दिन था, जब उसकी अवाई सुनकर घर-द्वार लिपा था । कहारिन मंगल-कलश लिये द्वार पर खड़ी थी, माँ आरती सजाये खड़ी स्त्री-मण्डल से कह रही थी—‘मेरी भगो ससुराल से आती है, न जाने कितनी कमजोर हो गई होगी ? उसके दिन पराये घर, न जाने कैसे कटे होंगे ?’ उस समय मुस्कराते हुए, छमाछम पैर बजाते हुए इसी भगवती ने घर में प्रवेश किया था । किसी ने पुचकारा था, किसी ने गोद में लिया था, किसीने सिरपर हाथ फेरा था, किसी ने वस्त्र, किसी ने आभूषण हाथमें ले लेकर टटोल कर देखा और सराहा था, किसी ने मंगल-गीत गाये थे । माता दौड़कर जल-पान को मिठाई ले आई थी, भाभी जल्दी जल्दी पूड़ियाँ उतार रही थी, नारायणी झपटकर पीड़ा ले आई थी, नाइन पंखा लेकर खड़ी होगई थी ।

पाठक ! ऐसे ही चोचले हुए थे । वे दिन आज भी भगवती भूली नहीं है । पर आज तो दिन ही और हैं । वे दिन और थे—

अस्तु, अब भगवती सब तरफ से सिमिट-सिमिटाकर नीचा मुख्त किये एक ओर खड़ी होगई । असबाब उतारकर हरनारायण ने कहा—“चल भगवती, अब चले ।”

भगवती चुपचाप पीछे-पीछे चल दी । स्टेशन से बाहर आकर उसने कहा—“भाई, अब तुम घर जाओ । यहाँ से मेरा

रास्ता और है, तुम्हारा और ! मेरी ओर से सबसे हाथ जोड़कर क्षमा माँगना ।”

हरनारायण कुछ देर तक उसकी ओर अनुनय की दृष्टि से देखते रहे। उन्होंने उसे बहुत-कुछ समझाया, पर उसने एक न सुनी। वह उस अन्धकार में अपने को छिपाती हुई, बिना प्रतीक्षा किये हरगोविन्द के घर की ओर चला खड़ी हुई।

एक बार तो हरनारायण ने लपककर बहन को रोकना चाहा, पर ऐसा न कर सके। वे उस अनाथ, निराश्रय, दलित अबला की दशा देखकर वहीं बैठ, फूट-फूटकर रोने लगे। जब रोने से कुछ जी हलका हुआ, तो धीरे-धीरे घरको चले। मानों कोई जन्म-भर की कमाई लुटाकर चला हो। इस समय अंधेरा खूब होरहा था। गाँवका मार्ग निर्जन था। घरमें भी अन्धकार और सन्नाटा था। हरनारायण घरमें घुस, चुपचाप अपनी कोठरी में पड़ रहे। आज उन्हें प्रतीत हुआ, कि भगवती निरपराध है, और वे स्वयं कितने अपराधी हैं।

५५

हरगोविन्द इधर-उधर भटककर घरमें आ और ला-पीकर लेटे ही थे, कि उन्हें द्वार पर खटखटाहट मालूम हुई। उन्होंने पुकारकर पूछा—“कौन ?”

उत्तर न मिला। कुछ ठहरकर फिर खटका हुआ। अब वे द्वार खोलने चले। देखा—श्वेत वस्त्र में सर्वाङ्ग ढाँपे कोई खड़ा है। उन्होंने कुछ भीत स्वरमें पूछा—“कौन है ?”

“मैं हूँ भगवती।” उसने भीतर घुसते-घुसते कहा।

हरगोविन्द ने अकचकाकर कहा—“ऐं भगवती ?”

भगवती को और कुछ कहना न पड़ा। घरके प्रकाश में उसका पीला, सूखा और भयंकर मुँह, धिखरे मैले बाल और मलिन वेश देखकर वह स्तम्भित रह गया।

भगवती चुपचाप खड़ी उसे ताकती रही। हरगोविन्द ने जरा भयभीत स्वर में कहा—“आखिर इस वेशका मतलब क्या है ? और इस समय कहाँ से आ रही हो ?”

भगवती का कण्ठ, तालू, जीभ सब सूख रहे थे। कठिनता से उन्हें तर करके संक्षेप से कहा—“काशी से।”

अब और भी अकचकाकर हरगोविन्द ने पूछा—“काशी से ? सीधी काशी से ?”

“हाँ।”

हरगोविन्द और कुछ न पूछ सका। वह चुपचाप खड़ा भगवती का मुँह ताकता रहा।

अब भगवती का जी कुछ ठिकाने आ गया था। उसने कहा—“हाँ, मैं काशी से ही आई हूँ, और तुम्हारे लिये आई हूँ। आओ, अब हम लोग इस निर्दयी दुनियाँ से कहीं अलग चल कर रहेंगे।”

इतना कहकर वह उस युवक का हाथ पकड़ने को लपकी। परन्तु जैसे कोई भूत के छूने से डरता है, उसी प्रकार पीछे हटकर हरगोविन्द ने कहा—“जरा ठहरो तो, तुम अपना मतलब साफ-साफ तो बयान करो।”

भगवती ने भरी हुई आवाज से गढ़े में घँसी हुई आँखों को युवक के मुँह पर गाड़कर कहा—“मतलब तुम नहीं समझे ? मैं काशी डूबने गई थी, पर फिर सोचा कि अभी और कुछ दिन जी

लूँ, फिर मरना तो कहीं गया नहीं है—जोना क्या बार-बार मिलता है ? सो इस जीने के लालच से तुम्हारे पास आई हूँ । क्योंकि अब सिवाय तुम्हारे और कहीं मेरा जीने का ठिकाना नहीं है । तुमने कई बार कहा था, कि पुनर्विवाह कर लें । चलो, मैं इसके लिये तैयार हूँ । पर ऐसी जगह चलो, जहाँ कोई न देख सके, पंखी भी न देख सकें—बस, हम हो दोनों रहें ।”

इतना कहकर भगवती हाँफने लगी, और उसकी आँखों से टपाटप आँसू टपकने लगे ।

पर हरगोविन्द ने उधर नहीं देखा । वह एकदम कानों पर हाथ धर गया । उसने जरा धमकती आवाज से कहा—“ना, ना, यह कभी नहीं होने का ! बहुत हो चुका । तुम्हारे पीछे बहुतेरी बदनामी और बे-इज्जती कमा ली । बस, अब तुम मुझे बख़्शो, और तुम इस तरह बक्त-बे-वक्त कभी मेरे घर मत आया करो । मुझे ऐसी इल्लत का पता होता, तो कभी ऐसा काम नहीं करता । जो हो गया है, वही बहुत है ।”

पाठक ! इस चोट को समझे ? कितने दिन की भूखी प्यासी लड़की, आत्म-हत्या करने पर उतारू, असहाय अवस्था में जिस कच्चे धागे के सहारे आस लगाये इतनी दूर से दौड़ी आई थी, वह इस तरह दगा दे गया; वह एकदम टूट गया !

भगवती की आँखों में अँधेरा छा गया । क्षण-भर के लिये उसके शरीर के खून की गति रुक गई, सिर चकराने लगा । उसने भरी-भरी और टूटे स्वर में कहा—“क्या कहा ?”

हरगोविन्द ने कुछ झिझककर और कुछ उकताहट से कहा—“बस, कहना-सुनना यही है, अब तुम यहाँ से चली जाओ । कोई आकर देख लेगा ।”

भगवती ने दृढ़ता से कहा—“देख लेगा, तो क्या है ? आवे, देख ले ।” हरगोविन्द कुछ क्रोध से बोला—“हाँ, तुम्हारे लिये तो कुछ नहीं है, पर मुझे तो लज्जित होना पड़ेगा ।”

भगवती के शरीर में सनसनी दौड़ गयी । उसकी गर्मी बढ़ने लगी, और उसने कुछ उत्तेजित होकर कहा—“तुम्हें ?”

हरगोविन्द कुछ तेज होकर बोला—“हाँ, मुझे ।”

अब भगवती का चेहरा कुछ भयंकर होने लगा । उसने जरा ऊँचे स्वर से कहा—“तुम्हें इतना लज्जा है ? पर जानते हो, मेरी लज्जा कहाँ जा डूबी है ?”

हरगोविन्द ने झिड़ककर कहा—“रात के वक्त यह बकवाद बिल्कुल वाहियात है । निकलो घर से बाहर ! मैं तुम्हारी बात किसी तरह नहीं मान सकता ।”

इतना कह, वह द्वार की तरफ बढ़ा । भगवती ने होठ काटकर कहा—“मैं निकलूँ और तू ?—यहीं रहेगा ?”

हरगोविन्द ने जामे से बाहर होकर कहा—“तू-तू क्या बकती है, चुड़ैल ! निकल घर से ।”

इतना कह, उसने एक धक्का भगवती को दिया । धक्का खाकर भगवती गिरी नहीं, डरी भी नहीं । वह भयङ्कर रूप से दाँत किटकिटाकर हरगोविन्द पर लपकी, और उसने उसका गला ऐसे जोर से दबा लिया, कि वह गिरकर छटपटाने लगा । भगवती उसके ऊपर चढ़ बैठी । उसकी आँखें निकल आयीं, जीभ निकल पड़ी । इसके अनन्तर उस चखिडका ने उसके कपड़ों को फाड़ना और जगह-जगह दाँत से काटना शुरू कर दिया । वह अभागा पापी, पाप के हथियार से पाप का दण्ड पाकर तड़पने लगा । छूटने की बहुत कोशिश की, पर नारी से पार न पा सका । अन्त में बे-दम होकर पड़ा रहा । अब भीमाकृति चखिडका

उसके ऊपर से उतरी। अब भी खून उसके सिर चढ़ रहा था। वह बड़बड़ाती इधर-से-उधर पैर पटककर घर में फिरने लगी। पर क्रोध की मात्रा कम न हुई। वह दाँत कटकटाकर दोनों हाथ भींच-भींचकर कुत्सित गालियाँ बकने लगी। तब भी शान्त न हुई। वह फिर भभकी, अबकी बार लैम्प उसके हाथ में आगया, उसे उसने लपककर उठा लिया, और एकबार तोलकर इस जोर से अशक्त हरगोविन्द के ऊपर दे मारा, कि वह एकदम 'हाय' कर उठा। चिमनी टूट गई, तेल बिखर गया, आग लग गयी। अब भगवती अपने यथार्थ वेश में घर से बाहर निकल कर अन्धकार में लीन हो गयी। इसके थोड़ी ही देर में गाँववालों ने कोलाहल सुना, और जगकर देखा—हरगोविन्द का घर धाँय-धाँय जल रहा है।



५२

श्याम बाबू काशी में कलक्टर होकर आये हैं। वे नवयुवक, भावुक और इन्साफ-पसन्द हाकिम प्रसिद्ध हैं। सभी उनकी तत्परता और न्याय की प्रशंसा करते हैं। उनके इजलास में एक मुकदमा दरपेश है। मिस्टर को पेशकार ने सामने रखकर चपरासी को आवाज लगाने का हुक्म दिया। चपरासी ने हाँक लगाई—“मुसम्मात बसन्ती उर्फ आलीजान हाजिर.....”

एक घृणित स्त्री को जो फटे-पुराने वस्त्र पहने थी—शरीर-भर में जिसके घाव हो रहे थे—नाक पर पट्टी बँध रही थी, बाल सूखे और बिखर रहे थे, पुलिस ने कटवरे में ला-हाजिर किया।

पेशकार ने जवान-बन्दी लाना शुरू किया। मैजिस्ट्रेट ने पूछा—
इस पर क्या मुकदमा है ?”

“हुजूर यह गली-मुहल्लों में बुरे मतलब के लिये लड़कियाँ
चुराती फिरती हैं। इसी जुर्म में इसे दो बार प्रथम भी सजा हो
चुकी है।”

इसके बाद गवाह पेश हुए। मुकदमा साबित हुआ। मैजि-
स्ट्रेट ने पूछा—“तुम्हें कुछ कहना है ?”

“जो पूछो, वह कहूँगी।”

“तुम यह बुरा काम क्यों करती हो ?”

“इसी से मेरी गुजर होती है।”

“तुम और कुछ काम नहीं कर सकती ?”

“मैं कसब कमाती थी, पर अब मुझे कोई धेले को नहीं
पूछता।”

मैजिस्ट्रेट ने मन की घृणा रोककर कहा—“तुम कोई मज-
दूरी कर सकती हो ?”

“मजदूरी की अच्छी कही। मेरी उँगलियाँ ही गल गई हैं,
मुझसे मजदूरी हो सकती है ?”

“तुम अपाहिज-गृह में दाखिल हो सकती हो ?”

“कुत्तों की भाँति सड़ा-गला अब खाने को ? ऐसी मेरी
आदत नहीं। पाँच रुपये रोजाना तो मेरा शराब का खर्च है !
एक समय था, जब आप-जैसे तलुवे चाटा करते थे; पर अब
तो वक्त ही बदल गया !”

श्याम बाबू ने विरक्त होकर कहा—“तुम्हें और कुछ अपने
बचाव में कहना है ?”

“कुछ नहीं।”

‘मैं तुम्हें दो वर्ष सख्त कैद की सजा देता हूँ ।’

“अच्छी बात है । पर यह लिख देना, कि मुझे अस्पताल में रख दिया जाय । वहाँ जरा खाना अच्छा मिल जाता है, और काम भी नहीं करना पड़ता.....।”

श्याम बाबू ने पुलिस को उसके हटाने का संकेत किया, और दूसरी मिसल उठाई ।

वे सोच रहे थे—हाय ! स्त्री-जाति का यहाँ तक पतन हो सकता है, यह तो मैंने कभी सोचा ही न था । न-जाने कितनी स्त्रियाँ इस प्रकार नष्ट हो रही हैं, अवश्य ही यह इसकी अपराध भागिनी नहीं । जिस समाज ने इन्हें पैदा करके यहाँ तक गिरने में सहायता दी है, प्रकृत अपराधी तो वह समाज है ।

इस दोष का निराकरण कानून क्या करेगा—जिसमें सिर्फ नियन्त्रण है ? क्या दण्ड से ऐसी पतित आत्माओं का सुधार हो सकता है ? हाय कैसे शोक की बात है ! हिन्दू-जातिका बेड़ा इसी प्रकार गर्क हो रहा है ! हिन्दू-जाति अपनी बहन-बेटियों के लिये जब तक इस कदर बेखबर रहेगी, उसकी दशा का सुधार नहीं होगा । स्त्री-जाति की यह दुरावस्था किसी भी जाति की छाती में भयानक क्षय की बीमारी है ।

इसके बाद ही मालती का मुकदमा उनके इजलास में पेश हुआ । मालती ने संक्षेप में सब हालात अदालत में बयान कर दिये । अन्य स्त्रियों के भी बयान लिये गये । पुलिस के गवाह खतम होने पर अधिष्ठात्री और अध्यक्ष पर फर्द जुर्म लगाया गया, और वे जमानत पर छोड़ दिये गए । मालती तथा अन्य स्त्रियों पर स्वेच्छानुसार जी-चाहे-जहाँ चले जाने की आज्ञा दे दी गयी । सब चली गईं, पर मालती खड़ी रही ।

मैजिस्ट्रेट ने कहा—“अब तुम क्या चाहती हो ?”

“मैं सुरक्षा चाहती हूँ । मुझे मेरे घर भेज दिया जाय ।”

“यह काम कौन करेगा ? कानून तो अपना काम कर चुका । यदि तुम्हारी बात सत्य हुई, तो अपराधी दण्डित होंगे । कानून ने तुम्हें स्वतन्त्र कर दिया ।”

“परन्तु समाज ने तो नहीं । मैं कहीं भी जाना निरापद नहीं समझती । ज्यादा-से-ज्यादा निरापद स्थान मेरे लिये यही अदालत का कमरा है । मैं यहीं रहूँगी ।”

“ऐसा नहीं हो सकता ।”

“तब क्या हो सकता है ?”

मैजिस्ट्रेट विचार में पड़ गए । उन्होंने कहा—“मैं अपनी तरफ से तुम्हारे पिता को तार दे सकता हूँ । तुम चाहो, तब तक मेरी स्त्री के संरक्षण में रह सकती हो ।”

“मुझे स्वीकार है ।”

मैजिस्ट्रेट साहब ने उसे बँगले पर भिजवा दिया । इसके साथ ही उन्होंने उसके पिता को तार भी दे दिया ।

शाम को मैजिस्ट्रेट साहब इजलास से लौटे । उन्हें तार का जवाब मिल चुका था, और उसे पढ़कर वे दुःखित तथा चिन्तित हो गये थे । वे नहीं समझ पा रहे थे, कि मालती-जैसी साहसी लड़की को क्या जवाब दें, और किस भाँति उसका कोई प्रबन्ध करें ।

मालती ने नहा-धोकर कुछ खा लिया था । वह शान्त थी, पर बहुत क्लान्त थी । उसने मैजिस्ट्रेट साहब के घर आते ही पूछा—“क्या तार का जवाब आया ?”

“आया तो । कहकर उन्होंने तार उसे दे दिया । उसमें लिखा था—उसे हम घर में नहीं रख सकते, जातीय मर्यादा बाधक है । खर्च भेजते हैं, अच्छा प्रबन्ध कर दें ।

मालती ने रोकर जी हलका करना चाहा, पर न कर सकी ।

श्याम बाबू भी कुछ न धोल सके। मालती ने पुनः प्रश्न किया—
“अब आपका क्या विचार है ?”

“मैं तुम्हारी क्या सेवा कर सकता हूँ, कहो !”

“मैं उत्तम रसोई बनाना जानती हूँ, आप मुझे नौकर रख लीजिए। मैं सिर्फ भोजन और रक्षा चाहती हूँ। शीघ्र ही मैं अपने विषय में कुछ निश्चय कर लूँगी। तब आप पर भार न रहेगा।”

श्याम बाबू की आँखों में आँसू भर आये। उन्होंने कहा—
“मालती, तुम्हें नौकर की भाँति रखने की तो मेरी इच्छा नहीं है, हाँ, बहिन की भाँति जब तक रहो—यहाँ तुम्हें कोई भय नहीं। परन्तु भविष्य के विषय में तुम्हें बहुत-कुछ सोचना होगा।”

मालती की आँखों से झर-झर आँसू गिरने लगे। उसने कहा—“आप पर मैं विश्वास करती हूँ। आपने इस दुखिया को बड़े आड़े समय में आश्रय दिया है, ईश्वर आपका भला करेगा। इतना कहकर मालती वहाँ से घर के भीतर चली गई।

— — —

५३

रायबहादुर महाशय के प्रशस्त बँगले पर बड़ी चहल-पहल है। सैकड़ों आदमी दौड़ धूप करते फिर रहे हैं। रायबहादुर साहेब एक आरामकुर्सी पर पड़े, सब प्रबन्ध की देख-भाल कर रहे हैं। प्रकाश को पलक मारने की फुर्सत नहीं। वह इधर-से उधर, उधर-से-इधर दौड़े फिर रहे हैं। बँगला विजली की रोशनी और असंख्य रंग-बिरंगी झण्डियों से लक-दक हो रहा है। द्वार

पर शहनाई बज रही है। एक व्यक्ति ने रायबहादुर महाशय के पास आकर कहा—

“बारात आ पहुँची है—सब को यथा-स्थान ठहरा दिया है। भोजन भी पहुँच गया है, अब क्या आज्ञा है ?”

“पलँग, मेज-कुर्सी, फल, नौकर सभी की ठीक-ठीक व्यवस्था हो गयी है न।”

“सब ठीक-ठीक हो गया है।”

“बारात की चढ़त कब होगी ?”

“५ बजे चढ़त का समय रखा है। पुलिस-कमिशनर स्वयं ४० घुड़सवारों-सहित चढ़त में साथ रहेंगे।”

“और क्या-क्या सवारियाँ ठीक की गई हैं ?”

“४ हाथी, २० घोड़े, ६ मियाने, ५० बग्घी-टमटम।”

“बाजे का क्या रहा ?”

“फौजी बाजा आ रहा है। बारात के साथ भी बाजा है !”

“बहुत ठीक ! अब आप जरा उधर फिर चले जाइए और सब प्रबन्ध उन्हें समझाकर, उनकी और क्या आड़ा है, यह पूछते आइए। और उसी के अनुकूल प्रबन्ध भी कर दीजिए। जाइए—मोटर ले जाइए, ताकि मैं उस तरफ से निश्चिन्त रहूँ।”

“बहुत अच्छा”—कहकर वे सज्जन विदा हुये।

रायबहादुर ने प्रकाश को बुलाकर कहा—

“विवाह-वेदी का सब बन्दोबस्त तो ठीक है ?”

“जी हाँ, सब ठीक है। १० पण्डित विवाह-वेदी पर वेद-पाठ करने को आ जायँगे। पाठशाला के सभी विद्यार्थी साम-गान करेंगे। दो हजार स्त्री-पुरुषों के बैठने का प्रबन्ध है। वेदी की सभी कार्यवाही सभी देख सकेंगे।”

“निमन्त्रण सब जगह पहुँच गया है ?”

“जी हाँ, खास-खास जगह मैं स्वयं हो आया हूँ ।”

“स्वामीजी महाराज कब तक आयेगें ?”

“उनका तार मिल गया है । वे ४ बजे आ पहुँच रहे हैं ।”

“पुरोहित का स्थान तो वे ही ग्रहण करेंगे न ?”

“वे और महात्मा देशराज जी ।”

रायबहादुर सन्तुष्ट होकर कुर्सी पर लुढ़क गये । फिर बोले—
“अच्छा बेटे, जरा तुम स्वयं एक बार जनवाँसे में चले जाओ, देखो, किसी की कोई शिकायत तो नहीं ?”

प्रकाश ‘जो आज्ञा’ कहकर चल दिए ।

रायबहादुर साहब उठकर अन्तःपुर में आए । यहाँ स्त्री-मण्डल का बेहद जमघट था । गृहिणी सभी की आव-भगत कर रही थी । थाल-पर-थाल चले आ रहे थे । भण्डार, सामग्री और पकवानों से भर रहा था ।

एक स्थान पर दुलहिन का सिर गूँथा जा रहा था । उसकी चोटी में मोतिया और चमेली के फूलों को गूँथा जा रहा था । हाथों और पैरों पर मेंहदी की चित्रकारी की जा रही थी । दुलहिन बार-बार इन तमाम आकृतों से अपने को वचाना चाहती थी, पर उसका छुटकारा न था । युवती मण्डल उसे ताने-तिशनों और हँसी-मजाक से तंग कर रहा था । दुलहिन का रूप दिव्य ज्योति से जगमगा रहा था ।

रायबहादुर साहब कुछ क्षण खड़े-खड़े, यह सब खेल देखते रहे । इसके बाद वे एकसाथ हँस पड़े । दुलहिन उन्हें देखकर एक-दस लजा गई, और स्त्रियों के झुरमुट में उसने सिर छिपा लिया ।

इसके बाद वे गृहिणी के निकट आकर बोले—“तुम्हें तो किसी वस्तु की कमी नहीं ?”

गृहिणी ने कहा—“नहीं। मगर यह लड़की बहुत तंगकर रही है। गहनों का बक्स आया रखा है, न उन्हें पहनती है, न ससुराल के वस्त्रों को पहनती है, ऐसी जिद्दी लड़की तो देखी नहीं।”

रायबहादुर साहेब हँसकर बोले—“इस मामले में मैं तुम्हारी कुछ मदद न कर सकूँगा।”

इतना कहकर वे चल दिए।

शहर में विवाह की धूम थी। बारात इस शान से निकली कि शोहरत मच गयी। विवाह-वेदी पर अनुष्यों के सिरों का समुद्र था। रायबहादुर साहेब की पुत्री का विधवा-विवाह है, यह देखना कौन न चाहता था ? २०० से ऊपर योरोपियन स्त्री-पुरुष बैठे थे। स्वामी सर्वदानन्दजी महाराज एक आसन पर और कर्मवीर महात्मा देशराज दूसरे आसन पर बैठे थे। एक तरफ ब्रह्मचारियों का मण्डल पीले वस्त्रों में वेष्टित बैठा था। सामने संन्यासियों का दल गोरुआ वस्त्र धारण किए उपस्थित था। उनके पीछे नगर के गण्य-मान्य पुरुष थे। महिलाओं का स्थान दक्षिण दिशा में था। ठीक ५ बजे मंगल-कार्य प्रारम्भ हुआ। वर-वधू ने विवाह-मण्डप में प्रवेश किया। वधू के मुख पर घूँघट न था। वह फूलों की लतिका के समान शोभायमान, ओस से स्नान की हुई अधखिली कली के समान, चन्द्रमा की चाँदनी के समान स्निग्ध, विनय और लज्जा से अधोमुखी धीरे-धीरे वेदी की ओर बढ़ रही थी। उसके पीछे कुछ स्त्रियाँ मंगलाचरण गाती आ रही थीं। दूसरी ओर सिंह-शिशु के समान उज्ज्वल परिधान धारण किये, पुष्प-मालाओं से सुशोभित वर महाशय परिजनों और मित्रों से घिरे हुए मण्डप की ओर अग्रसर हो रहे थे। दोनों के आसन पर बैठते ही स्वस्ति-वाचन का गम्भीर नाद प्रारम्भ हुआ। ब्रह्मचारी और विद्व-

न्मण्डल गम्भीर ध्वनि से वेद-पाठ करने लगे । वर-वधू नीची दृष्टि किये निमग्न बैठे थे ।

पाठक, क्या वर-वधू का परिचय देने की आवश्यकता है ? वधू श्रीमती सौभाग्यवती सुशीला देवी, और वर श्रीयुक् बाबू श्यामनाथ एम० ए० एल-एल० बी, आई० सी० एस० थे । वर-वधू पर पुष्प-वर्षा होरही थी । वेद-पाठ समाप्त होते ही स्वाभीजी ने विवाह-कृत्य प्रारम्भ किया । आपकी व्याख्या, प्रवचन-शैली जिन्होंने देखी, उनके हृदय पर वैदिक विवाह-पद्धति की एक मुहर लग गई । युरोपियन स्त्री-पुरुष मुग्ध होकर सब कृत्य देख रहे थे । दो घण्टे में विवाह-कार्य सम्पन्न हुआ, और वर-वधू ने खड़े होकर सब को प्रणाम किया । फिर एक बार पुष्प-वर्षा के साथ सब ने गम्भीर ध्वनि से दोनों को आशीर्वाद दिया । इसी अवसर पर रायबहादुर साहेब ने १० हजार रु० की रकम विधवा-विवाह-प्रचारक फण्ड में दान दी, और इतनी ही वर पक्ष की ओर से दी गई । आगत सज्जनों का पात-इलायची और इत्र से सत्कार किया गया । सभी लोग प्रसन्न-वदन विदा हुए । समाचारपत्रों में अगले दिन इस महत्वपूर्ण विवाह के सचित्र विवरण निकले ।

तीन दिन बाद बारात विदा हुई । दहेज से भरे हुए सन्दूकोंको देख-देखकर, देखनेवाले 'वाह' कर उठते थे । अवसर पाकर श्याम बाबू प्रकाश को एक तरफ खींच लेगये । उन्होंने प्रकाश को कसकर छाती से लगा लिया, और हठात् उसका मुँह चूम लिया ।

प्रकाश ने उन्हें ढकेलकर कहा—“यह क्या गधापन है ?”

श्यामबाबू की आँखों से भर-भर आँसू बहने लगे । वे बोलने की चेष्टा करके भी न बोल सके । इस बार प्रकाश ने उन्हें अंक में भरकर उन्हें चूम लिया । प्रकाश की आँखें भी भर आईं ।

थोड़ी देर तक दोनों मित्र आनन्द के आँसू बहाते रहे। आवेग कम होने पर श्याम बाबू ने कहा—“प्रकाश, तुम्हारा मैं गुलाम हूँ। शरीर और आत्मा दोनों से तुमने मुझे खरीद लिया—हर लिया। तुम मनुष्य नहीं, देवता हो !”

प्रकाश के नेत्रों में आँसू, और होठों में हास्य था। उन्होंने एक घूँसा श्यामबाबू की पीठ पर जमाकर कहा—“तुम्हें बात करने की तमीज ही नहीं आयगी, चाहे लाख डिण्टी बन जाओ।”

श्यामबाबू मित्र का हाथ पकड़े खड़े रहे। उन्होंने कहा—“प्रकाश मैं तेरे हृदय के शीशे को पार कर गया हूँ, वहाँ जो चीज मुझे दीख रही है, उसी को मुझसे तुम छिपाते हो।”

प्रकाश बोले नहीं। वे मन का उद्वेग दबा रहे थे।

श्याम बाबूने फिर कहा—“प्रकाश सुशीला तुम्हें पाकर कृतार्थ होती, पर तुमने आदर्श के नाम पर उसे बलिदान कर दिया।”

प्रकाश अब खुले। उन्होंने कहा—“श्याम, क्या यह बुरा हुआ ? तुम क्या समझते हो, सुशीला सुखी न होगी ? मैं प्राण देकर भी उसे सुखी करूँगा !”

“पर मैंने थोड़े-ही काल में—जब वह मेरे घर में थी—समझ लिया था, कि वह तुमसे कुछ और भी आशा रखती थी।”

“श्याम, अब इस बात को यहीं छोड़ दो। देखो, उसे तुम सदा क्षमा करना ?”

“प्रकाश, मैं उसकी पूजा करूँगा। मैं उसका लौकिक पति हूँ अवश्य, पर मैं तुम्हारे सामने प्रतिज्ञा करता हूँ, कि मैं उसका आध्यात्मिक गुरु और संरक्षक ही रहूँगा। तुम उसके लौकिक भाई हो। विकार की बात करना भी पाप है। पर प्रकाश, चाहे भी जो-हो, मैं जानता हूँ, दोनों के शरीर में एक-दूसरे की प्यासी आत्मा कैद है। जब मैंने देखा, ये दोनों कभी न मिलेंगी, तभी

मैं बीच में कूदा हूँ। मैं ईश्वर और अपने प्राणों की शपथ खाकर कहता हूँ, कि मैं जीवन-भर उसका आध्यात्मिक गुरु और संरक्षक रहूँगा—पति नहीं।”

प्रकाश ने घबराकर उसके हाथ पकड़ लिये। उसने कहा—
“श्याम, श्याम ! मेरा हृदय तुमसे छिपा नहीं है ? पर देखना, मेरी आत्मा की कमजोरी उसपर प्रकट न करना, और न उसे इस विषय पर विचार करने का अवसर देना।”

श्याम ने आश्वासन दिया, और शपथ खाई। तब दोनों मित्र सारे आनन्दित जन-समूह में मिल गये।

४८

गाँव-भर में इसका हल्ला मच गया। अभाग्य हरगोविन्द बुरी तरह झुलस गया था, और वह थोड़ी-ही देरमें मर गया। मरती बार दूटो-फूटी जबान से जो-कुछ कह गया था, उसे लेकर, सब लोग-आश्चर्य चकित हो इस घटना पर विचार कर रहे थे। सब की जबान पर एक ही बात थी। चारों और चाँव-चाँव मच रही थी। जयनारायण बेटे के साथ, किवाड़ बन्द किये घर में पड़े थे। चौधरीजी आए, और लौट गए। पञ्च आए, और चले गए। जो आया, चला गया, जुलाकात किसी से नहीं हुई। ‘तबीयत अच्छी नहीं है, सो रहे हैं।’—बस, यही एक उत्तर था। लोग तरह-तरह के सबाल करने के इरादे से, नीचा दिखाने, मलामत देने, जन्म में थूकने, हँसी उड़ाने,—गरज जो जिस योग्य था, करने आया था, पर यहाँ तो मामला-न्ही दूसरा था—

सब के लिये द्वार बन्द था। तीन बज गये। दोपहर ढल गया, पर जयनारायण के पट न खुले। अब रामचन्द्र बाबू ने आकर द्वार खटखटाया। भीतर से बिना परिचय पूछे-ही कहा गया—“इस वक्त सोते हैं, जाओ!” रामचन्द्र ने अपना परिचय देकर द्वार खुलवाया। उन्होंने देखा—जयनारायण को अब पहचानना कठिन है, मानों कब्र से मुर्दा उखाड़ लिया गया हो। उन्होंने दुखी स्वर में कहा—“अब तो यह भी हो गया बाबूजी! आगे क्या होगा?”

रामचन्द्र ने उन्हें दिलासा देते हुए कहा—“जो हुआ, सो हुआ—“बीती ताहि विसारिये, आगे की सुधि लेहु।” उठो, काम-धन्धे से लगे, यह सब संसार के करिश्मे हैं। मैं जब आप के पास आया था, तभी यदि आ। मेरी बात पर ध्यान देते, तो यह सब क्यों होता?”

जयनारायण बहुत रो चुके थे। अब उनकी आँखों में आँसू थे ही नहीं। वे गढ़े में धँसो हुई आँखों को उनके चेहरे पर गड़ा-कर, एकटक देखने लगे। रामचन्द्र ने हाथ जोड़कर कहा—“अब बुरा तो मानोगे, पर मैं इतना अवश्य कहूँगा, कि इतना भुगतकर भी आपकी आँखें नहीं खुलीं। सुबह का भटका शाम को भी घर आजाय, तो भी ठीक है। मैं आपसे बिनती करता हूँ, कि आप छोटी का ब्याह कर डालिए। मुझसे वह देखी नहीं जाती है।”

जयनारायण सिर नीचा किए कुछ सोचते रहे।

हरनारायण—जो अब तक चुपचाप पड़ा था, उठकर बैठ गया। उसने कहा—“क्या कोई पात्र तैयार है?”

राम०—“पात्र तैयार होने में क्या देर लगती है? आपकी स्वीकृति की देर है।”

“तो हमें मंजूर है, आप तैयार करें।”

रामचन्द्र जयनारायण की ओर ताकने लगे।

जयनारायण दीर्घ निःश्वास त्यागकर बोले—“मुझे मंजूर है, वर तलाश करिये।”

रामचन्द्र हर्षित होकर बोले—“वर तैयार है। मालूम होता है, कल्याण का समय आ गया।”

दोनों ने उत्कण्ठा से पूछा—“कौन?”

“विठ्ठलदास का लड़का रामेश्वर।”

अब तो दोनों बाप-बेटे मानो आसमान से गिरे। दोनों एक साथ बोल उठे—“क्या आप हँसी करते हैं?”

“क्या यह हँसी का प्रसंग है!”

“क्या विठ्ठलदास का लड़का? उसे क्या पड़ी है, जो मुझ जैसे जाति-व्युत गरीब को विधवा लड़की लेगा? मेरी लड़की के भाग्य में राजरानी बनना कहाँ है? ऐसी-ऐसी तो उसकी सैकड़ों दासियाँ होंगी।”

रामचन्द्र ने आँखों में आँसू भरकर कहा—“दीवानजी! असल में तुम रत्न के पारखी नहीं हो। नारायणी को अभी तुम नहीं जानते, पर मैं जानता हूँ। तुम स्वीकार करोगे, तो वे सर-आँखों पर स्वीकार करेंगे।”

जयनारायण ने कुछ न कहकर रुपया निकालकर रामचन्द्र के हाथ पर धर दिया, और उनके पैर छूकर कहा—“तुम मेरे भाई हो, आज से नारायणी तुम्हारी हुई।”

रामचन्द्र ने रुपया सिर से लगाकर कहा—“मुझे आज बड़ा आनन्द हुआ है। विवाह इसी सप्ताह में होगा।” इसके बाद वे उठकर चल दिए।

जयनारायण कठिनता से, आन्तरिक आनन्द से मुस्कराकर

पीछे फिरकर स्त्री की तरफ देख पाये थे, कि वह दुहत्तड़ मारकर पत्थर पर गिर पड़ी। सिर फट गया, और बेहोश होगई। जयनारायण की खुशी काफूर हो गई, वे उठकर होश में लाने का यत्न करने लगे।

सिर ही की चोट होती, तो कदाचित् आराम हो जाता। पर बेचारी गृहिणी को तो असह्य मानसिक और शारीरिक चिन्ताओं ने खा-डाला था। कुछ ठिकाना है! एक सद्गृहस्थ की स्त्री ने अचानक अपनी अवोध कन्याओं का वैधव्य, लांछना, तिरस्कार, बदनामी, विलगाव और जाने क्या-क्या न सहा! अन्त में उसका एक-मात्र धर्म भी गया! दूर-दूर से सुना करती थी, कि लड़कियों के दूसरे व्याह होने लगे हैं। पर उस पुराने विचार की स्त्री की समझ में किसी तरह उसकी उपयोगिता न बैठती थी। कितनी बार जयनारायण ने सिर दे मारा, लड़ाई-भगड़े किये, पर सब व्यर्थ। अन्त में उन्हें आज यह भी देखना बड़ा था। जिस घोर पाप से दूर रहने के लिए, पुनर्विवाह से बचने के लिए इतनी बदनामी का टोकरा सिर पर रखा, वही अन्त में खुल्लमखुल्ला हँसी खुशी उसका बाप ही कर रहा है। ऐसे दुःख में, ऐसी चिन्ता की आँधी में, यह घोर अरुचिकर प्रसङ्ग, जिसका अभ्यास नहीं, रुचि नहीं, श्रद्धा नहीं, उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे किसी हिन्दू के मुख में जबर्दस्ती गो-मांस ठूस दिया हो। उसने झुँझताकर बिना विचारे-ही, उसी मस्तिष्क की उत्तेजना में हताश होकर वहीं पत्थर पर सिर दे मारा।

यह धक्का वह सह नहीं सकी। अभागिनी वृद्धा अब अपनी दुलारी का सुख-स्वर्ग देखने को जीवित न रही। वह उसके अगले ही दिन इस लोक से प्रस्थान कर गई।

जहाँ इतना हुआ था, यह और भी सही। सब-कुछ जहाँ सहा था, यह भी चुपचाप सह लिया गया। जब एक बार हला-हल पीकर पचा लिया, तो ऐसे छोटे-मोटे विष क्या कर सकते हैं? जयनारायण के पास जो सहानुभूति के लिये आता, उसे यही कहते—“अच्छा हुआ, भाग्यवान् चली गई। अब मेरी भी मिट्टी ठिकाने लगे, तो अच्छा है।

इतना तो हुआ, पर नारायणी का विवाह रुका नहीं। क्रिया-कर्म समाप्त होते ही विवाह की तैयारी होने लगी। तैयारी तो होने लगी, पर उसमें कुछ धूम-धाम नहीं थी। वर सुन्दर, सुशिक्षित रईस घर का था। वर-पक्ष के लोग कुल सम्मान, जाति में सबसे बढ़कर थे। वे चाहते, तो उन्हें एक-से-एक बढ़कर लड़की मिल जाति। पर जयनारायण की मुसीबत ने उनको बहुत सहानुभूति प्राप्त कर ली थी। रामचन्द्र के निरन्तर प्रयत्न करने पर वे प्रतिज्ञा कर चुके थे, कि जब तक नारायणी मिलेगी, अन्यत्र क्या न करेंगे। इतना होने पर भी धूम-धाम नहीं थी। पाठक! धूम-धाम क्या बनावट से हो सकती है? जब दिल चुटीला हो, चोट ताजों हो, तो धूम-धाम कहाँ हो सकती है? निदान, उसी ठण्डे प्रबन्ध में, अत्यन्त सादगी के साथ उस प्रसिद्ध रईस की बारात नियत तिथि पर जयनारायण के द्वार पर आ पहुँची। बारात में वर, उसके पिता, भाई, सम्बन्धी, और दो पण्डित थे। इतनी छोटी, और बे-धूम-धाम की बारात होने पर भी गाँव में यहाँ तक कि आस-पास के गाँवों तक में लोग दिल खोलकर मनमानी कह रहे थे। पुराने खुर्राट, गालियों पर

गालियाँ बक रहे थे। कलियुग की तो खैर नहीं थी। स्त्रियाँ ठोड़ी पर उँगली रखकर अपना कौतूहल प्रकट कर रही थीं। पर कुछ ऐसे भी थे, जो उस विवाह को बहुत अच्छा कहकर इन उपद्रव-कारियों का तिरस्कार कर रहे थे।

इधर तो यह हो रहा था, उधर ब्राह्मण-मण्डली में अजब गुल खिल रहा था। पास-पड़ोस के सभी ब्राह्मण बिना-ही बुलाये छज्जू मिस्सर के घर धरना दिये बैठे थे। सलाह यह हो रही थी, कि यदि जयनारायण बुलावे, तो भोजन को जाना चाहिये या नहीं, इस मण्डली में प्रायः सभी भोजन-भट्ट थे। सब चुपचाप बैठे, एक दूसरे का मुँह ताक रहे थे; क्योंकि ऐसी-ऐसी उन्मा-तैयारियाँ—लड्डू, कचौड़ी, मिठाई, पकवान, रायता छोड़ना क्या-साधारण बात है? पर ऐसे अधर्मी के घर क्या भोजन किया जा सकता है, जिसने बेटी का पुनर्व्याह करके लोक ही को उलट दिया। जिसकी एक बेटी बदनाम हो चुकी, जो जात से गिर गया, उसके यहाँ ये पवित्र अग्नि-मुख शर्मा कैसे भोजन करें? पर लड्डू, कचौड़ी, खुर्मा, हलुआ यह सब क्या छोड़ने की चीजें हैं? साँप, छछुन्दर की-सी गति थी—न छोड़ते बनता था, न खाते। एक तरफ, कुँआ एक तरफ खाई, बेचारे ब्राह्मण किधर जायें? तिसपर तुरा यह, कि घृत की लपट चली आ रही थी, और भूख पद-पद पर बढ़ रही थी। एक ओर आफत थी, कि चार-छः कोस चलकर आये हैं। अब घर लौटेंगे, तो ब्राह्मणी कहेगी कि क्या लाये? वह एक तो बिना पेद्दास कहे बात ही न करती थी, अब की तो चूल्हे की लकड़ी का ही प्रयोग करेगी; क्योंकि महाराज कई विवाहों से सूखे घर लौट गये हैं। हर बार एक-से-एक बढ़कर बीती थी। सो अब की बार मामला चौपट ही होगा। बड़ी देर फालतू बातों में बीतने पर एक ने कहा—“लो भाई जो

निश्चय करना है, जल्दी करो। भोजन का तो समय हो गया है, अब कोई-न-कोई बुलाने आता ही होगा। इससे पहले ही अपना कर्तव्य तय हो जाना चाहिये।”

उनमें कुछ पढ़-पत्थर थे। वे अटक-अटककर कुछ अक्षर उखाड़ लिया करते थे। संकल्प समूचा याद था, और वक्त-वे वक्त सत्यनारायण की कथा भी कह लिया करते थे। सब ने उन्हीं को घेरा। सब बोले—“अब और कौन बोले, पण्डितजी हैं ही, जो वे करें सो होय।” पण्डितजी एकदम गम्भीरता की कीचड़ में लतपत हो गये—मानों कोई घर का मर गया हो। इस तरह धीरे-धीरे बोले—“शासत्र की जो है सो, आज्ञा ऐसी है, इस पापी के घर भोजन नहीं करना चाहिए जो है सो।”

सब चुपचाप सुनते रहे। पण्डितजी फिर बोले—“इसमें हम जो है सो अपना श्वार्थ नहीं देखते, मर्यादा की बात है।”

कुछ देर पीछे एक महाराज बोले,—इनके दो दाँत आगे के निकल गये थे, उनमें से हवा निकल जाती थी।

आप कहने लगे—“पर मुस्कल तो ये है, जो कोई उधर से बुलाने आया पण्डितजी, हम जो है सो, नहीं जायेंगे।”

महाराज ने कहा—“हाँ, इस बात पर सब सोच लो। ऐसा न हो, सब चले जायँ, और हम रह जायँ।”

सबने कहा—“हम तो साहब, सबके साथ हैं। सब जावेंगे तो हम भी जावेंगे, नहीं तो नहीं।

इतने में एक बोले—“क्यों गुरु ! इसका पराछत्र कुछ नहीं ?”

पण्डितजी बोले—“पराछत्र तो है। जो है सो, शासत्र में है क्या नहीं ?—गंगा-स्नान और सौ ब्राह्मण-भोजन, और दक्षिणा।”

“चाँदी की दच्छना में तो क्या सन्देह है—विट्ठलदासजी क्या ऐसे-वैसे आदमी हैं ? और गंगा-स्नान में भी कुछ बाधा नहीं । रही सौ ब्राह्मणों की, सो इतने तो हम हैं ही, बाकी क्या नहीं मिल सकते ?”

“मिल क्यों नहीं सकते, पर वे लोग चाहें, तभी तो हो सकता है ।”

इसपर महाराज बोले—“तो एक काम न करें, उधर खबर भेज दें, कि तुम यह सब पराछत करो, तो हम भेज सकते हैं ।”

भोंदू शर्मा फौरन् उठ खड़े हुए । बोले—“इसमें क्या देर लगती है ? हम अभी कहे आते हैं । देखते भी आवेंगे, कि भोजन में क्या देर है ?”

परिडतजी कहने लगे—“नहीं-नहीं, ऐसा जो है सो, नहीं; वे हमें खुद बुलावें, तो जाना चाहिए ।”

“जैसी पंचों की राय ।” कहकर देवता बैठ गये ।

अब समय की प्रतीक्षा होने लगी । कोई तो अँगोछा बिछा वहीं लुढ़क गये, कोई भीत के सहारे पीनक लेने लगे, कोई तम्बाकू मलने लगे, कोई निठल्ले माला ही ले बैठे । गरज, छज्जू मिस्सर के घर मजे की चहल-पहल हो गई ।

घण्टे-पर-घण्टे बीत गये, पर कोई न आया । क्या भोजन हो चुका ? क्या ब्राह्मण नहीं बुलाये गए ? कोई-कोई, जो सो गये थे आँख खोलकर पूछ लेते थे—“कोई आया तो नहीं ?” और ‘नहीं’ का उत्तर पाकर फिर सो रहते । अन्त में उनकी बेचैनी बढ़ी । धैर्य सीमा को पार कर गया । उन्होंने देखा—बारात बाजा बजाती भोजन को गयी । ब्राह्मण बैठे ही रहे । तभी एक और घटना घटी—छजिया नाइन हँसती हुई उधर आ निकली । ब्राह्मणों की मजलिस को सुस्ती से बैठी देखकर आँख मटकाकर

थ हिलाकर कहा—“ऐ दादा ! तुम यहाँ क्यों बैठे हो ? जाओ , जनवासे में रुपया बिखर रहा है। यह लो, मैं तो चिढ़ा ना लाई।” यह कहकर उसने टन-से शशि-वर्ण चतुर्भुज को जा दिया।

अब भोंदू मिस्सर से न रहा गया। वे अपना सोटा उठाकर लो—“यह लो भाई ! हमारे रामजी तो चले।”

रिस्सू बोले—“और हम क्या यहाँ ऐसी-तैसी करावेंगे ? म भी चले।”

तिवाड़ीजी बोले—“चलो, फिर हम भी चलें।”

अब तो एक-के-बाद-एक लपका। पण्डितजी कहने लगे—भाई, बिना बुलाये जाना क्या ठीक है ?”

छद्ममी बोले—“हम कोई खाने को जाते हैं, जो बुलाने की ाट देखें ? सैर-तमाशे को सभी जाते हैं, उसमें बुलाना क्यों ? लो भाई भोंदूजी !”

पण्डितजी बोले—हाँ, तमाशे में क्या हर्ज है ? चलो देखें, किस तरह व्याह होता है ?

गरज, धीरे-धीरे सभी चल दिये। यह अभाग्य ब्राह्मण-एडल अपनी कुल-कान, बड़प्पन, सब पर लात मारकर टुकड़ों ; लालच से भस्म मारता चल खड़ा हुआ।

सहृदय पाठक ! इस सुदृश्य को देखकर आपको दुःख तो आ होगा। जिन्हें ऋषि-सन्तान होने का दावा है, जो कहते कि उनके द्वार पर चक्रवती शक्तियाँ ठोकें खाया करती हैं, जिनके वचन में अमोघ शक्ति थी, जो तेजपूर्ण यशस्वी, अपनी भृकुटी-विलास में अष्ट-सिद्ध, नव-सिद्ध रखते थे, उनके कुलाँगार आज टुकड़ों के लिये भिखारी से भी निर्लज्ज बने,

बिना बुलाये उसी द्वार पर आ रहे हैं, जिसे ये हृदय से पतित, अधमी, पातकी और अस्पृश्य समझते थे। छिः ! पाठक शायद हमपर नाराज हों, पर हम क्षमा माँगते हैं, क्योंकि हम सत्य कहने में विवश हैं। हम शपथपूर्वक कह सकते हैं, इस वर्णन में हमने नमक-मिर्च बिल्कुल नहीं लगाया है।

अस्तु, जिस समय यह दुकड़खोर-मण्डल वहाँ पहुँचा, तब विवाह प्रारम्भ हो गया था। हवन-कुण्ड और मण्डप सजे हुए थे। उच्चस्वर से वेद-पाठ हो रहा था। सब क्रिया धीरे-धीरे सम्पूर्ण हुई, और क्षण-भर में वही अभागिनी, कुलच्छनी, खसमखानी असहाय बालिका, जिसने अपमान, तिरस्कार में कितने दिन काटे थे—सुहागिन हो गई, दुलदिन बन गई। वह पीत-वर्ण सुख, वह अस्थि-पिञ्जर, अन्त में सुहाग के शुभ-मुहूर्त में रंगीन, नवीन वस्त्रों के आवरण में सुरक्षित हो गया। यह सामाजिक संगठन, उस नैतिक बल का तिलस्म था, जो लोगों के सामने था, जिसने भाग्य को, प्रारब्ध को विपत्ति के दुर्दैव को लात मारकर भगा दिया था, और उसके स्थान पर सौभाग्य, आशा, सुख, उन्नाह की वर्षा कर दी थी। एक बालिका की गोद, जो अन्धकार और निराशा से दूटी पड़ती थी, प्रकाश और आशा से भर दी गई थी।

यह पुण्य, उदारता की प्रति-भूर्ति विठ्ठलदास ने लूटा। जब देश में ऐसे दीन-दयाल, पर-दुःख दुखी पुरुष पैदा हों, तो एक क्या, ढाई करोड़ कलपती हुई आत्मा बात-की-बात में शान्ति और पवित्रता का जीवन प्राप्त कर सकती हैं। पर जीवन-दाता बनना हर-किसी का काम नहीं। विठ्ठलदास जैसे वीर ही सच्चे जीवन-दाता कहे जा सकते हैं।

विवाह-सम्पादन हो गया, और उपरोक्त ब्राह्मण-मण्डल अप-

ही-आप 'वाह वाह—बहुत अच्छा' की ध्वनि से समय-समय पर अपनी तुच्छता का परिचय देता रहा ।

अन्त में विट्ठलदास ने सबको सत्कार-सम्मान से भोजन कराया, और एक-एक रुपया दक्षिणा देकर विदा किया ।

नारायणी बड़े घर की दुःहिन बनकर चली ।

पाठक ! एक दृश्य हम छिपाये डालते हैं । हममें उसके वर्णन करने की शक्ति नहीं है । उस दग्ध-हृदय पिता की, विदा के समय पुत्री से भेंट बिल्कुल अलौकिक थी । उस समय दोनों पक्ष में कोई ऐसा न था; जो रो न रहा हो । पर यह रोना जैसे सुखका था—उसके लिये सब तरसते हैं ! इन आँसुओं के साथ वर्षों के तित्त दुःख धुल रहे थे ।

५६

माणिकगंगा-घाट पर एक शुभ्र-वसना महिला एक पञ्चवर्षीय बालक की उँगली पकड़े, गीली धोती निचोड़कर, हाथ में लिये धीरे-धीरे सीढ़ियों की ओर आ रही थी । उसका मुख गम्भीरता, तेज और तप के प्रभाव से देदीप्यमान था । वह न इधर देखती थी, न उधर ! बच्चा कुछ बोल रहा था, और वह उसकी बातों का धीरे-धीरे उत्तर देती जा रही थी ।

सीढ़ी पर एक भिखारिण अर्द्धनग्न और विक्षिप्त अवस्था में पड़ी भोख माँग रही थी, उसके समस्त अङ्गों में कुछ फूट पड़ा था, आँखें और होठ गल गये थे, नाक बैठ गई थी । उसका स्वर नाक से निकलता था । रोग और दुर्बलता के कारण वह बैठ भी न सकती थी । उसके सन्मुख एक कपड़ा पड़ा था, उसपर आती-जाती स्त्रियाँ कुछ भुने हुए अनाज के दाने डाल जाती थीं ।

यह महिला जब सीढ़ी तक पहुँचो, तो उसने इससे भी कुछ माँगा। उसकी दयनीय दशा देखकर महिला को करुणा आगई। उसने पूछा—“तुम कौन हो ? और इस तरह क्यों पड़ी हो ?”

भिखारिणी ने क्रुद्ध होकर कहा—“कुछ देती हो, तो देदो; पञ्चायत मत करो ?”

महिला उसके क्रोध से स्तम्भित होगई। उसने कहा—“बहन, नाराज न हो। तुम्हारा कष्ट देखकर मेरी छाती फटती है। कहो तो, तुम्हारी ऐसी दशा कैसे हुई ?”

भिखारिणी ने कुछ दबंगता से कहा—“छाती फटती है, तो यह अपनी धोती मुझे दे डालो।”

भिखारिणी का ऐसा विचित्र स्वभाव और जवाब सुनकर वह कुछ सोच रही थी, कि एकाएक भिखारिणी की दृष्टि दूसरी तरफ जाकर अटक गई। महिला ने देखा—कोई भद्र पुरुष अपनी स्त्री और गोद के शिशु के साथ स्नान करने के लिये आये हैं—वे मोटर से उतर रहे हैं।

भिखारिणी क्षणभर बड़बड़ाती रही, और इसके बाद एक बड़ा-सा पत्थर उठाकर भद्र पुरुष पर दे मारा।

पत्थर मारकर वह घृणास्पद गालियाँ देने लगी। पत्थर भद्र-पुरुष के पैर में लगा। अकचकाकर देखने लगे। देखते-देखते बहुत-से आदमी इकट्ठा होगये। पुलिस-कान्स्टेबल भी आ गया।

भद्र पुरुष श्यामबाबू थे। उन्होंने भी पहचान लिया, भिखारिणी वही स्त्री है, जिसे उन्होंने दो वर्ष की सजा दी थी। वह अब भी गालियाँ बक रही थी। श्याम बाबू के साथ सुशीला थी, और उनकी गोद में छः मास का शिशु था। वह अवाकू सब देख रही थी।

भिखारिणी की दृष्टि सुशीला पर पड़ी। वह आँखें गड़ा-गड़ा-कर उसे देखने लगी। इसके बाद वह हठात् उठ खड़ी हुई, और सुशीला की ओर देखकर जोर से बोली—“अरे ! दर्जी की छोकरी—तेरे ये ठाठ !”

सुशीला पहले तो डर गई, पीछे पहचान लिया—यह भाग्य-हीना वह स्त्री है, जिसने एक बार उसे फुसलाना चाहा था।

पुलिस-कान्स्टेबल ने भद्र पुरुष को पहिचान और संकेत पाकर भिखारिणी को पकड़ लिया। मीड़ और बढ़ गई थी।

महिला ने श्यामबाबू के पास आकर पूछा—“आपने इसे कभी कुछ कष्ट दिया था ?”

“मैं मैजिस्ट्रेट हूँ। कन्या चुराने और उनको बुरे रास्ते पर लगाने के अपराध में, मैंने इसे दो वर्षका दण्ड दिया था।”

“अब इसे क्षमा कर दीजिए, इससे अधिक इसकी क्या दुर्दशा हो सकती है ?”

सुशीला ने कहा—“मैं इसे जानती हूँ, यह भले घर की लड़की है। आह ! इसका सुन्दर रूप अब भी मेरी आँखों में है। प्रकाश भाई.....”

महिला ने कहा—“क्या कहा ? प्रकाश ? आप कौन-से प्रकाश का नाम ले रही हैं ? क्या वही, जिन्होंने राजा.....का खून किया था ?”

“जी हाँ।”

“वे आपके कौन हैं ?”

“भाई।”

“कैसे भाई।”

सुशीला घबरा गई। अब इसका क्या जवाब दें ?

महिला ने दो कदम आगे बढ़कर कहा—“आप सुशीला तो नहीं ?”

“मैं सुशीला ही हूँ।”

“ओह !” महिला ने सुशीला को छाती से लगा लिया, और उसके बच्चे को गोद में लेकर बार बार पुचकारने लगी।

सुशीला ने कहा—“क्षमा कीजिए ! आप मुझपर इतनी सदय हैं, और मैं आपको पहचानती भी नहीं। क्या यह मेरा दुर्भाग्य नहीं ?”

“नहीं, बहन, प्रकाश मेरे ममेरे भाई हैं। तुम्हारे लिये राजा साहब की हत्या करने, छः वर्ष का दण्ड पाने, और स्त्रियों के डेपुटेशन में प्रभावित होकर उनको गवर्नर द्वारा क्षमादान मिलने की कथा मुझे मालूम है। प्रकाश मेरा बड़ा मान करते हैं। श्याम बाबू से तुम्हारे विवाह होने की बात स्वयं उन्होंने मुझे लिखी थी। मैं अभागिनी सब से अलग रहने को विवश हूँ, इसलिये मैं तुम्हारे विवाह में भी नहीं आई थी। प्रकाश स्वयं मुझे लेने आये थे।”

श्याम बाबू ने आगे बढ़कर कहा—“आप कुमुद देवी तो नहीं ?”

“मैं कुमुद ही हूँ।”

“ओह !” उन्होंने लपककर बच्चे को गोद में उठा लिया। बोले—“प्रकाश बारम्बार लिखता रहा, पर आप ऐसी छिपीं, कि पता ही नहीं लगा। आज ही प्रकाश आ रहा है। अब आप छूटेगीं नहीं। घर पर चलना-ही होगा।

कुमुद की एक भी नहीं चली। श्यामबाबू बिना स्नान किये, मोटर में बैठकर घर लौट आए। भिखारिणी को पुलिस ले गई। पीछे उसकी व्यवस्था पागलखाने में कर दी गई।

चाँदनी छिटक रही थी, एक साफ चबूतरे पर सीतलपाटी बिछी थी, उसपर छः स्त्री-पुरुष बैठे थे। स्त्रियों में, सुशीला, मालती और कुमुद, और पुरुषों में—श्याम बाबू, प्रकाश और एक व्यक्ति, जिनका परिचय आगे मिलेगा।

प्रकाश ने कहा—“कुमुद, मैंने बड़ी-बड़ी चेष्टा की—भाई से पूछा, पर तुम्हारा पता न लगा।”

“मैंने उन्हें शपथ दी थी।”

“तुमने बड़ा दुःख भोगा।”

“दुःख-सुख तो मन के विकार हैं। मैंने सुख भी भोगा और दुःख भी।”

“पर तुम्हारा दुःख तो अब भी वैसा ही है। कुमुद, क्या इसका अन्त न होगा?”

“अब मुझे दुःख क्या है!”

“ओह, तुम संसार के सभी भोगों से दूर हो!”

“भोगों की इच्छा रहने पर उनके न मिलने से दुःख होता है, मेरी उनसे तृप्ति हो गई है।”

“यह तृप्ति कैसे हुई?”

“अन्तरात्मा की सूक्ष्म भावना से।”

“मैं तो उसका मतलब नहीं समझा।”

“सब के समझने की यह बातें नहीं। मेरा बच्चा जब सोता है, तब मैं निश्चय काम करती रहती हूँ। यदि तुम्हारी रकम बैंक में जमा है, तो तुम बे-फिक्र हो।”

“इस उदाहरण से अभिप्राय ?”

“यही, कि तुम कहते हो कि स्वामी के बिना स्त्री सब दुःखों को सहता है, पर मैं स्वामी को सदैव पास पाती हूँ ।”

“सिर्फ कल्पना से ?”

“कल्पना को इतना तुच्छ क्यों समझते हो ? कल्पना ही से भाई-बहन, पति-पत्नी का रिश्ता होता है ।”

“परन्तु उसमें इन्द्रिय-वासना भी तो है ।”

“उसे मैंने जीत लिया है, और यही मेरी तृप्ति का विषय है ।”

“परन्तु पुनर्विवाह तो शास्त्र से सिद्ध है ।”

“मैं इसपर विचार ही नहीं किया चाहती । जिनके हृदय हों, जिनकी वासना प्रबल हो, वे उस शास्त्र-वचन से काम लें ।”

“परन्तु पुष्प का अस्तित्व किसलिये है ?”

“वह विलास की सजावट में भी काम आते हैं, और देव-पूजा में भी ।”

“परन्तु कुमुद, क्या तुम उसी प्रकार पति को निकट देखती हो, जैसे जीवित अवस्था में देखती थीं ?

“बिल्कुल उसी प्रकार ।”

“इन्हीं चर्म-चलुओं से ?”

“ईश्वर क्या चर्म-चलुओं से देखा जाता है ?”

“वह आत्मा का विषय है ।”

“जो ज्ञान का प्रकरण है, वह सदा ही आत्मा का विषय है । उसमें जितनी वासना कम हो उतना उत्तम ।”

“तब विधवा शब्द क्या हिन्दू-जाति पर शाप नहीं ?”

“वह हिन्दू-जाति का भूषण है, और संसार की किसी जाति

में ऐसी पवित्रता और त्याग के गम्भीर अर्थों से परिपूर्ण शब्द ही नहीं ।”

“परन्तु बलात्कार से त्याग.....!”

“यह बुरा है, अबोध बालिकाओं को विधवा बनाना और उनपर निष्ठुर विधान का प्रहार करना बुरा है ।”

“तब तुम उनके लिये विधवा-विवाह उचित समझती हो ?”

“अवश्य; जिसका हृदय शून्य हो, या वासन प्रबल हो ।”

“यह नियम क्या स्त्रियों के लिये है ?”

“स्त्री-पुरुष दोनों के ही लिये ।”

“पर क्या यह भयङ्कर नहीं है, कि कुछ स्त्री-पुरुष अकेले जीवन व्यतीत करें ?”

“उसी दशा में, जब कि दो बातें हों, जिनका मैं वर्णन कर चुकी हूँ ।”

“श्याम बाबू बोले—“परन्तु इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल हैं । सम्भव है वे कुमार्ग में जायँ, और गुप्त पापों की सृष्टि हो ।”

“मैं तो उत्तर दे चुकी । सारे पाप शून्य-हृदय करते हैं । जिनको लगन लगी है, वे न वासना में गिरते हैं, और न पाप उन्हें छू सकता है ।”

सुशीला बोली—“आपकी जीवनचर्या क्या है ?”

“मैं सदा श्वेत वस्त्र पहनती हूँ । चार घड़ी भोर में उठती हूँ । सूर्योदय से प्रथम स्नान, और सन्ध्या-चन्दन से निपट लेती हूँ । चटाई पर सोती हूँ । शृङ्गार नहीं करती, एक समय रोटी और तरकारी खाती हूँ । प्रति मास ४ उपवास करती हूँ । सिर्फ चार घण्टे सोती हूँ । आठ घण्टे पढ़ती हूँ, और बच्चे को पढ़ाती हूँ, और बारह घण्टे इधर-उधर सेवा-कार्य में व्यतीत

करती हूँ। मैं दुखी नहीं हूँ। मेरी आत्मा सन्तुष्ट है, और मैं अब सब तरह से निर्भय हूँ।”

तपस्विनी महिला की उपरोक्त बातें सुन, सब स्तब्ध रह गये। तीसरे व्यक्ति वही उसके जेठ थे। उन्होंने कहा—“बहू, मेरे अपराधों को क्षमा करना, मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया।”

कुमुद ने कहा—“आप वैसे ही हमारे पूज्य और बड़े हैं, और मेरे मन में आपके प्रति कोई द्वेष-भाव नहीं।”

थोड़ी देर चुप रहकर उसने फिर कहा—“प्रकाश भाई, विलास और वासना का साधारण जीवन सभी व्यतीत करते हैं। पर मैं अपना अनुभव कहती हूँ, कि त्याग और तप का जीवन उससे कहीं अधिक सरल है। जो लोग उसे कठिन बताते हैं, उन्होंने उसका अनुभव नहीं उठाया। जगत के भोगों में तो गृहस्थ को भी उतना न फँसना चाहिए; क्योंकि वे शरीर और आत्मा दोनों ही का नाश करनेवाले हैं।”

प्रकाश ने कहा—“बहिन, मैं तुम्हारे जीवन का अनुसरण करूँगा।”

“तुम ? प्रकाश, तुम ?”

“हाँ, मैं शून्य-हृदय नहीं—वासनायुक्त भी नहीं।”

प्रकाश उठकर चलने लगे।

श्याम बाबू मर्माहत हुए। उन्होंने उनका हाथ पकड़ कर कहा—“प्रकाश भाई, अगर तुम्हारी यही इच्छा है कि हम लोगों का जीवन दुःखद हो, तो बात ही दूसरी है।”

कुमुद ने कहा—“प्रकाश जरा बैठो। मैं तुमसे कुछ कहना चाहती हूँ।”

प्रकाश बैठ गये। कुमुद ने कहा—“तुम इतने साहसी,

पण्डित और विद्वान् होकर दूसरों के अनुकरण की चेष्टा क्यों किया चाहते हो ?”

“महान् आत्माओं का अनुकरण करना ही चाहिये ।”

वह साधारण लोगों के लिये है—तुम्हारे-जैसों के लिये नहीं । तुम्हें अपना जीवन और ऊँचा करना पड़ेगा । तुम समाज से छिपकर नहीं रह सकते ।

“तुम चाहती क्या हो कुमुद ?”

“तुम्हें विवाह करके सद्गृहस्थ बनना चाहिए ।”

“ओह, कुमुद यह बहुत कठिन है ।”

“तुम्हें कठिन ही काम करना चाहिए । तुम्हें विवाह करना होगा—अपने लिये नहीं, आदर्श और मर्यादा की रक्षा के लिये !”

सुशीला बीच में बोली—“यदि आप विवाह न करेंगे, तो मैं प्राण त्याग दूँगी ।”

प्रकाश हँस पड़े । उन्होंने श्याम बाबू की ओर देखा—उनकी आँखों में आँसू थे । प्रकाश की आँखें भी भर आईं । उन्होंने कहा—“कुमुद, क्या तुमने कोई पात्री ठीक कर रखी है ?”

“नहीं तो क्या ?” यह कहकर उसने मालती की ओर देखा ।

श्याम ने कहा—“मालती-जैसी लड़की के जीवन का यथार्थ मूल्य तुम्हारा शरीर है । प्रकाश, तुम अपना शरीर मालती को प्रदान कर दो । इससे अधिक मालती स्वयं प्राप्त कर लेगी ।”

कुमुद ने कहा—“मालती की इच्छा हमें मालूम है । सुशीला ने उसे सब बातें कह दी हैं ।”

प्रकाश ने कहा—“कुमुद, क्या तुम मेरा विधान अपने से बिल्कुल विपरीत किया चाहती हो ?”

“हाँ, प्रत्येक पुरुष का विवाह पृथक् पृथक् ही होता है ।”

कुछ देर चुप रहकर प्रकाश ने श्याम बाबू की ओर देखा, फिर कुमुद से कहा—“कुमुद, मुझे मालती की सेवा करना स्वीकार है। मैंने मालती को अपना शरीर दिया। पर एक शर्त है। इस विवाह में कुछ भी धूम-धाम न होगी।”

“कुछ भी नहीं, यह विवाह आज ही सम्पन्न हो जायगा।”

“आज ही कैसे?”

“ठहरो, सब ठीक हुआ जाता है। कुमुद ने श्याम बाबू से परामर्श किया। मालती वहाँ से उठकर भागना चाहती थी, पर सुशीला उसे रोक डेरी थी। थोड़ी ही देर में सब मंगल-पदार्थ एकत्रित कर दिये गये। मालती और प्रकाश दोनों ने स्नान किया, यज्ञ की वेदी पर बैठे, स्वयं ही धर्म को साक्षी देकर अपने को पाति-पत्नी रूप में स्थापित कर दिया।

उस आनन्द की बाढ़ में सुशीला की आँसुओं की धारा को कोई भी न देख सका।

— — —

उपसंहार

नगर अवसन्न था। रात यद्यपि चाँदनी थी, पर मौसम सर्दी का था। यद्यपि अभी नौ ही बजे थे, परन्तु सड़कों पर सन्नाटा था। ऐसे ही समय पागलखाने के अस्पताल में एक गन्दो और दुर्गन्धपूर्ण कोठरी में एक हृ.यद्रावक करुण दृश्य हो रहा था।

उस कोठरी में उसीके अनुरूप खटिया पर, वैसे ही वस्त्र ओढ़े अर्मागिनी भगवती अपनी अन्तिम यात्रा की तैयारी कर रही थी। यात्रा बहुत बड़ी थी, और वह इस लोक से परलोक

तक थी। इसलिये उसकी तैयारियाँ भी वैसी ही थीं। वह कितनी भारी थी, कितनी भीषण थी इसके देखने का कोई साधन प्रत्यक्ष तो था नहीं—हाँ, मनके उद्वेग, बेहोशी की बकवाद, हृदय की घड़कन और सर्वाङ्ग-कम्प को देखकर उस भीषण तैयारी का कुछ अनुमान हो सकता था। रह-रहकर उसके हाथ अकड़ जाते थे, आँखें निकल पड़ती थीं, मुँह में भाग आ जाते थे, और गले की नम्रें तनकर रस्सी बन जाती थीं वह चीखती थी, उछलती थी, काँपती थी, बकती थी, और छटपटाती थी—इतना, जितना कि वह अपने भाई की अमानुषी मार, माता के विषाक्त तिरस्कार, और हृदय के भारी-मे-भारी अपमान में भी न रोई थी, न चिल्लाई-उछली थी। यह उसकी अन्तिम घड़ियाँ थीं, और वह मानो संसार की रही-सही यन्त्रणाओं की बची-बूची भूटन को चलते-चलाते भोगे जाती थी। कदाचित् इसलिये कि फिर कोई इस विष को खाकर न मरे !!!

ऐसी ही दशा थी, बल्कि इससे भी करुण थी। दो-दो धायें उसे पकड़ रही थीं। बार-बार एञ्जेक्शन दिया जा रहा था, पर वह दोनों धायों को दाँतों से काट-काटकर उन्हें विह्वल कर रही थी। ऐसे समय में नौकर ने इत्तला दी—

“मेम साहब, इसका बाप आया है।”

साथ ही जयनारायण ने कमरे में प्रवेश किया। वह कुछ देर स्तब्ध होकर मुमूषे बेटी को ताकता रहा रोगिणी ने उसकी तरफ देखा। फिर दोनों हाथ फैलाकर बोली—“लाये हो ? लाओ, उसे मुझे दो।” इतना कहकर वह हठात् उठ खड़ी हुई।

जयनारायण ने निकट आकर कहा—

“किसको बेटी ?”

दाइयों ने पकड़कर बलपूर्वक सुला दिया।

भगवती ने आँखें फाड़कर विद्रूप से कहा—“मेरी बच्ची को जिसे आँखों से एक बार भी नहीं देखा, नहीं प्यार किया ! अरे, कौन माँ इस तरह बच्चे को हलाल करती है । अरे राम ! वह खून में नहा रही थी । बाप रे ! यदि मेरी माँ भी इसी तरह करती, तो मैं इतनी बड़ी कैसे होती ? लाओ, लाओ उसे मुझ दो, मैं उसे गोद में लूँगी । वह फिर उठ चली ।

जयनारायण बिलखकर रो उठे । उन्होंने कहा—

“मेरी बच्ची, शान्त हो जा । दुःख की बात सोचने से दुःख बढ़ता है, फायदा कुछ नहीं होता । इस बड़ी बेटी, तू भगवान् की याद कर, वे ही तेरी व्याधा हरेँगे । हाय..... इस स्थान पर इस तरह मरना मेरी लाडली बेटी को नसीब हुआ—!!” जयनारायण ने दुहत्थड़ सिर में मार ली, और सिर पकड़कर धरती पर बैठ गये ।

रोगेणो पर उसका असर न पड़ा । वह फिर एक झटका देकर उठ खड़ी हुई । उसने कहा—“तुम पापी हो, न-लाये—न-लाए । मैं खुद चलती हूँ—उसे लेकर आऊँगी । ओह, वह वहाँ गीली मिट्टी में रखी है, उसकी नस-नस में सर्दो घुस गई होगी ।”

भगवती उठकर चली ही थी, कि नर्सों ने दौड़कर उसे पकड़, लिया । पर वह स्वयं चक्कर खाकर गिर पड़ी । दुर्भाग्य की बात-खाट के पास रखी हुई पिता की छतरी को लांहे की तीली उसको आँख में घुस गई । उसके निकालते ही रक्त की धारा बह चली । वह धारा थी, या नदी का प्रवाह ! तत्काल डॉक्टर ने । आकर उपचार किये, पर वह धारा न रुकी ।

धीरे-धीरे भगवती की संज्ञा जाने लगी । वह सफेद पड़ गई और उसके प्रलाप की गति भी धीमी पड़ गई ।

अन्तिम क्षण समीप है, यह सभी ने समझ लिया ।

डाक्टर ने हताश होकर कहा—“उसे लिटा दो। अब कुछ नहीं हो सकता !”

जयनारायण उठ-खड़े हुए और आँख फाड़-फाड़कर बेटी को देखने लगे।

आँख से रक्त की धारा जाती थी। चेहरा खून में सन गया था। वह रह-रहकर काँपती थी, और दोनों हाथ ऊपर को नठाए मानो कुछ टटोल रही थी, और मुख से कुछ अस्पष्ट शब्द बड़बड़ा रही थी। धीरे-धीरे उसके हाथ शिथिल होकर गिर पड़े, और उसकी चेष्टा शान्त होने लगी।

टन-टन करके ग्यारह बजे, और भगवती की उध्वंशवाँस चलने लगी जयनारायण कहाँ तक रोते। वे उठे, और उन्होंने उसके सिरहाने बैठकर उसका सिर अपनी गोद में लिया। फिर बड़े प्यार से अपने अँगोछे से उसका रक्त पोंछा, और झुककर उसका माथा चूम लिया।

भगवती ने आँखें खोल दीं। वह कुछ क्षण फटी-फटी आँखों से पिता को देखती रही। बोलने की चेष्टा की, पर न बोल सकी। अन्त में उसने आँख बन्द कर ली, और कुछ-ही मिनट बाद उसने अन्तिम श्वास छोड़ दी।

सन्नाटा हो गया। परन्तु कहीं से एक विषादपूर्ण गीत के गाने की धीमी ध्वनि सुनाई दी।

जयनारायण ने सिर उठाकर देखा—भावुक लेडी-डाक्टर करुणाद्रस्वर में एक विषादपूर्ण अंग्रेजी गीत गाकर, अभागिनी भगवती की आत्मा को, स्वर्ग के बन्द द्वार पर मानो निराश भाव से खड़ी देख रही है।

आचार्यें जो
की
नवीनतम
कृति
'देवांगना'
मूल्य २।।)

